



# प्रवचन-प्रभा

(प्रथम तथा द्वितीय भाग संयुक्त)

साध्वी मणिप्रभाश्री

श्री अष्टांगध्वीय ज्ञान मन्दिर, जयपुर

प्रवचन-प्रभा/साध्वी मणिप्रभाश्री

इन्दौर-चातुर्मास १९८१, १९८२ में हुए  
वारह चुने हुए प्रवचन तथा प्रवचनाश

प्रकाशन

श्री विचक्षण प्रकाशन,  
नईदुनिया परिसर,  
वावू लाभचन्द छजलानी मार्ग  
इन्दौर-४५२ ००९, मध्यप्रदेश

प्राप्ति-स्थान

- १ श्री विचक्षण प्रकाशन, इन्दौर
- २ श्री प्रेम डूंगरवाल,  
'इन्डो अःक्मीजन', कल्याण विश्रान्ति गृह,  
२, साउथ तुकोगज,  
इन्दौर-४५२ ००१, मध्यप्रदेश

प्रथम संस्करण-४२००

द्वितीय संस्करण-३१००

तृतीय संस्करण-५१००

जुलाई १९८३

मूल्य पाच रुपये

मुद्रण :

नईदुनिया प्रिण्टरी,  
वावू लाभचन्द छजलानी मार्ग,  
इन्दौर-४५२ ००९, मध्यप्रदेश

*Pravachan Prabha*  
Sadhvi Maniप्रभाश्री,  
Religion-1983

परमपूज्या, श्रद्धास्पदा, परमतपस्विनी, विदुषी-श्रेष्ठा,  
प्रधान-पद विभारिता श्री अत्रिचनश्रीजी महाराज के  
वर-रमनो में

-मणिप्रभा ११



जनधर्म से सम्बन्धित साहित्य व प्रकाशन में डा. नमोचन्द्र का योग स्मरणाय रहेगा। तायकर भासिक का प्रकाशन अपने आप में एक साधना है, जो नियमित रूप में धर्म और परम्परा का वाचक बनाने का सद्प्रयास माना जाएगा। भासिक के अतिरिक्त भा. उ. हों जनधर्म से सम्बन्धित विषयों पर महत्वपूर्ण निबंध पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इसी पुण्य प्रयास में मेरे पाँच प्रवचन तथा मेरा गुरु प्रातः स्मरणाय श्री विचक्षणश्रीजी म. की सूक्तियों का यह सफल अच्छा रूप में धर्मप्रमी लोगों के सामने रखा है। मैं स्वयं अपने प्रवचनों के बारे में क्या लिखूँ? जो भाई-बहन द्वारा के कारण नहीं आ सकें हैं उनके लिए यह लघुचयनिवा सहायक होगा। स्व. गुरुवर्याश्री का प्रत्येक वाक्य एक सूक्ति का रूप रखता था इन लघु पत्रिकाओं में इतना गम्भीर अनुभव तथा चिन्तन भरा है कि हम घण्टा उन पर मनन कर सकते हैं। इन सूक्तियों के साथ मेरे प्रवचनों का प्रकाशन इसी तरह है जैसे सच्चे हारों के साथ चाँच के कुछ टुकड़े रख दिये गये हों। (प्रथम/द्वितीय संस्करण प्रथम भाग)

○ ○

गत वर्ष इसी शायक से प्रवचनों का प्रथम सफल प्रकाशित हुआ था, जिसे जन जनतर सभा लोगों ने रुचिपूर्वक पढ़ा और जीवन के लिए उपयोगी पाया। इससे यह भी अनुभव हुआ कि लोकजाति में सत्साहित्य और सत्संग के लिए अनुग्रह प्राप्त और उल्लेखनीय बहुमान है। वह अपने विचारों का आध्यात्मिक सम्पन्न देना चाहता है।

मुझ विश्वास है ये विचार जन-जीवन को जपन जीवन लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायता करेंगे और हिंसा परिग्रह तथा स्वार्थविधता के अन्त में भी प्राणिमात्र के प्रति उनके मन में एक शुभाकांक्षा का जन्म देंगे।

प्रस्तुत प्रवचनों में जो विनम्र चिन्तन है वह मर, परमपूज्या स्व. गुरुवर्याश्री का प्रणाम का ही सुफल है। वे मेरे बोल हुए शब्दवाक्य का पृष्ठभूमि पर शुभाशापक। स्वस्तिप्रद मुद्रा में प्रतिक्षण उपस्थित रहेंगे। मुझ आशा है कि इनमें से उन्हें भी पाया जा सकता है क्योंकि विचार-रूप में वे आज हैं बल की बल रहेंगे, स्पष्ट विचार मृत्युञ्जय है जन्मका कर्म देहात नहीं जाता वह हर हालत में अज-अमर है।

प्रवचनों का सफल करने में साधवा श्री विद्यतप्रभाश्रीजी का प्रयास, न. हम प्रनार्थीजी ने तथा व्यवस्थित करने में तायकर व सनातन डॉ. नमोचन्द्रजी जनन-सन्धनाय श्रम किया है।

आशा है पाठक इससे लाभान्वित होंगे। मेरा शुभकामना प्रतिफल उनके साथ है। (प्रथम/द्वितीय संस्करण द्वितीय भाग नवम्बर १९८२)

## संपादकीय

‘प्रवचन-प्रभा’ साध्वीश्री मणिप्रभाजी के इन्दौर-चातुर्मास की एक जनोपयोगी फलश्रुति है। इसमें साध्वीश्री के पाँच चुने हुए प्रवचन सकलित हैं। प्रवचनों के प्रतिपाद्य को कुछ इस तरह सयोजित करने का प्रयत्न किया गया है कि पाठक को अनायास ही एक सम्पूर्ण जीवन-दृष्टि मिल सके। प्रथम प्रवचन ‘सस्कार का प्रश्न’ है। सब जानते हैं कि इन दिनों सस्कार की समस्या कितनी पेचीदा है। पूर्व-पश्चिम के जीवन-मूल्य लगभग अपनी अन्तिम लड़ाई पर हैं, इसीलिए हमारी वर्तमान और आगामी पीढ़ी के सस्कार कैसे हों, इस विषय पर साध्वीश्री के साफ-सुथरे, लोकोपयोगी विचार बहुत महत्त्व के हैं। द्वितीय प्रवचन का सम्बन्ध श्रावक की भूमिका से है। ज्वलन्त प्रश्न है कि इन दिनों जब कि उसके चारों ओर पार्थिव उलझनों का जाल विछा हुआ है वह इनसे कैसे निपटे, स्वयं को किस तरह से समायोजित करे? इस प्रवचन में भी साध्वीश्री ने एक औसत गृहस्थ को समीचीन दिशा-दृष्टि प्रदान की है।

तीसरे प्रवचन में हमारे सुनने/मनन करने/सोचने की प्रक्रिया की रचनात्मक समीक्षा है और हमारी भागमभाग की इस जिन्दगी में उसका क्या स्वरूप हो इस पर आत्मदृष्टि-सम्पन्न प्रकाश डाला गया है। चौथे में आत्मदृष्टि-जैसे गहन विषय को विचार के पटल पर लिया गया है। हम कई-कई झूठे तर्क देते हैं, किन्तु स्वयं को कभी नहीं खोजते। इस प्रवचन में वाग्मी साध्वीश्री ने हमारी आँखों को आँजा है और उन्हें भीतर के आँगन में खोल दिया है। पाँचवें प्रवचन की विषय-वस्तु आपोआप विगत चार प्रवचनों का साराण बन गयी है। हमें विश्वास है इन्हें ध्यान से पटा जाएगा और इनमें जीवन को, जो बहुत अस्वच्छ/अशुभ्र हो गया है, स्वच्छ/शुभ्र बनाने का प्रयत्न किया जाएगा।

हम कृतज्ञ हैं पूज्या साध्वीश्री के, जिन्होंने इन्दौर की जिज्ञासु जनता को अपने प्राज्ञ/प्रिरक विचारों से उपकृत किया है, और साधुवाद देते हैं भाईश्री माणकचन्दजी डूंगरवाल को जिन्होंने इन प्रवचनों को इस रूप में उपलब्ध कराया है। नईदुनिया प्रिन्टरी के श्री हीरालालजी/श्री अजय छजलानी के भी हम आभारी हैं, जिन्होंने बहुत कम समय में इतनी अच्छी किताब छाप कर हमें दी है।

(प्रथम/द्वितीय सस्करण, प्रथम भाग, १८ मार्च, १९८२)

प्रवचन प्रभा' का द्वितीय भाग प्रथम भाग का सातत्य है प्रत्यक्ष में, पराशर  
 म। प्रत्यक्षत इम दृष्टि से कि यह प्रथम भाग के बाद तथा इन्हीं चतुर्मास १९८१  
 की निरन्तरता में प्रकाशित हो रहा है और परोक्षत इस अर्थ में कि इसमें जिन  
 विषयों पर माध्वीश्री ने अपन विचार व्यक्त किये हैं, वे उत्तरात्तर अधिव आध्यात्मिक  
 और अन्तर्मुख हात गये हैं। प्रवचन प्रभा २' में सकलित प्रवचना की विषय-वस्तु  
 ग्रमश व्यक्ति का मनोमयन करती है और उस महज ही आत्मा का अनन्त शक्तिपयो  
 की ओर न जाती है। वस्तुतः चुम्बक की तरह का कोई आकर्षण साध्वीश्री की  
 वाणी में है, जो श्रोता को अन्दर में तगाता है और बाहर से समेटता है आत्मो  
 त्याग के लिए एक स्वस्थ वायु-मण्डल की रचना करता है और लोबहित की धरती  
 पर उसे आत्मादय के लिए तत्पर करता है। ये प्रवचन श्रोता का (अब पाठक का)  
 आहिस्ता-आहिस्ता एक रचनात्मक चिन्तन की ओर ले जाते हैं और जीवन के यथाय  
 का बहुत बोधगम्य रूप में प्रतिपादित करते हैं। जिन बातों/तथ्यों का हम लगातार  
 अपन हित में मानते आ रहे हैं वे किस तरह हमारे आत्मिक विकास के आड़े आने  
 हैं, इसका स्पष्ट सूचन इन प्रवचना में हुआ है। इनमें माध्वीश्री की वाणी-बदली  
 पूरी ताकत से प्ररम गयी है अब यह श्रोता/पाठक की मन धरती पर निरम करेगा  
 कि वह कितना भागती है और कितनी उग्र बनती है। मेघ-नीर ईख-नाम दाना में  
 गिरता है किन्तु एक में वह मीठा और दूसरे में कटु आ हो जाता है। वहाँ इन  
 प्रवचना में है। वाणी-वर्षा तो हुई है, किन्तु जिनकी जितनी पात्रता और भव्यता  
 जनी है उतना वह भावित/प्रभावित हुआ है।

माध्वीश्री का स्वच्छ निश्चल, निर्निप्त ममस्पर्शिनो शला है, जो पाठक को  
 स्वस्थ चिन्तन के लिए यातती है और उसके हृदय पर एक म्दायी प्रभाव अवित  
 करती है। भाषा और दृष्टांत इतने सरल सुवाद्य हैं कि इन्हें समझन में पाठक के  
 चित्त पर अलग से कोई दबाव नहीं पड़ता। भाषा सरल गला सरल विचार सरल-  
 मय रतन और म कदर सरल हैं कि जीवन का सरल आपोआप घुटन टक गया है  
 और मत्यु में अमलत्व तथा तम में ज्याति का महज ही सूत्रपात हुआ है।

स्मरणीय है कि माध्वीश्री मणिप्रभाश्री खरतरगच्छ परम्परा के परम पूज्य  
 श्रीनि उदयमांगर मृगीश्वरजी महाराज तथा परमपूज्य श्रीजिन कान्तिमांगर मृगाश्वर  
 जी महाराज के अनुशामन में पुण्यमणि श्रीपुण्यश्रीजा महाराज के ममुत्पाय में समतामति  
 स्व श्री चित्तमणश्रीजा महाराज का शिष्या है जो अपनी अमृत वाग्मिता में जन तत्त्वज्ञान  
 का जन-जन तक पहुंचान का परम पुण्याय धर रही हैं। प्रस्तुत प्रवचन-मदल्य उनकी  
 स्त्री प्रयत्न श्रुतना की मह-यपूर्ण कडा है।

इस सफलन में ७ प्रवचन तथा कतिपय प्रवचनाश समाहित हैं। प्रथम प्रवचन  
 है शरीर में शरीर में पर जो व्यक्ति का शरीर-स्तर पर जान का मीमात्रा का



स्पष्ट करता है और आत्मा के स्तर पर आनन्द का जो अतल भिन्धु लहरा रहा है उम ओर सहज सकेत करता है, दूसरा प्रवचन 'जिन्दगी एक मुसाफिरखाना' अपने-आप में काफी स्पष्ट है। इस जग में सब कुछ कितना क्षणभंगुर है, उम्र अजलि के जल की तरह किस तेजी से चुक रही है, आदि तथ्यों को पूरे बल के साथ प्रतिपादित करता है, तीसरा प्रवचन 'आत्मा नहीं बदलती', जैन तत्त्व-दर्शन को मरल शब्दों में समझाता है। द्रव्य/पर्याय का जो दर्शन है, उमें नाना उदाहरणों में संजो कर साध्वीश्री ने श्रोताओं को जैन दर्शन की गूहताओं और जटिलताओं को आसान/सुबोध स्वल्प शब्दों में दिया है, चौथे प्रवचन में 'धर्मलाम' के परम्परित अर्थ को नवार्थ की ऊँचाई दे कर उन्होंने मन्त्रमुग्ध किया है, पाँचवें प्रवचन में, जो 'जययात्रा' के शीर्षक से सपादित है, उन्होंने हमें आत्मानुशासन की ओर उन्मुख किया है, छठा प्रवचन हमें शब्द-सयम की ओर आकर्षित करता है। 'तोले, फिर बोलें' का विषय-वस्तु है हमें कितना नपातुला/निष्कपट/सुमित बोलना चाहिये, सातवाँ प्रवचन हमें सीधे 'स्वरूप' की ओर ले जाता है। यही, असल में, हमारी अन्तिम मजिल है, यानी हम शरीर से उठ कर स्व-रूप तक इन प्रवचनों में अपनी 'जययात्रा' मपन्न कर सकते हैं। चुने हुए प्रवचनांश प्रभावी हैं और हमें किश्तो में आध्यात्मिक जीवन की निर्मलताओं को पूर्णतया सौंपते हैं।

जहाँ तक इन प्रवचनों के सपादन/व्यवस्थापन का प्रश्न है, मैंने इन्हें मात्र श्रव्य से पाठ्य बनाया है, इस प्रक्रिया के अतिरिक्त जो भी है वह मव नाध्वीजी का है, कहूँ, मैं मात्र निमित्त हूँ, वे आत्मा और अस्थि-मस्थान दोनों हैं।

आशा है इन्हे 'प्रवचन-प्रभा-१' के प्रवचनों की तरह ही पूरे उल्लास से पढा जाएगा तथा उससे आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त की जाएगी।

(प्रथम/द्वितीय सस्करण, द्वितीय भाग, दीपावली १९८२)

यह 'प्रवचन-प्रभा' का सयुक्त सस्करण है, जिसे साध्वी श्री मणिप्रभाश्रीजी के बालाघाट-चातुर्मास-प्रवेश की मगल बेला में प्रकाशित किया जा रहा है। 'प्रवचन-प्रभा' के प्रथम/द्वितीय खण्डों की बहुत कम समय में हजारों प्रतियाँ छपी हैं, जो इस तथ्य की प्रतीक हैं कि लोगों में आत्मानुसंधान और आत्मालोचन की वृत्ति तो है, किन्तु उनका कोई सुयोग्य मार्गदर्शक नहीं है। साध्वीश्री के ये प्रवचन जिन्दगी के तमाम अँधेरो में मशाल ले कर चलने का अपूर्व सामर्थ्य रखते हैं। इन्हें जैन-जैनेतर समाज ने बड़ी उत्कण्ठा के साथ पढा/समझा/सराहा है। इस सबसे ऐसा लगता है कि विचार का न तो कोई सप्रदाय होता है, न कोई वर्ग, विचार-तो-विचार-होता-है, प्रतिक्षण, सर्वोपरि। हमें विश्वास है प्रस्तुत सस्करण, जिसे बिलकुल त्रुटि-रहित बना दिया गया है, अधिकाधिक पढा जाएगा। इस आवृत्ति में कतिपय

उपयोगी और सुखद परिवर्तन भी कर दिए गए हैं। आवरण बन्द दिया गया है। इस बार इसे सतार जड़िया न तैयार किया है। यह प्रतिरालम्ब है। प्रवचन-याठ है, जिसके पुष्ठभाग में आभामण्डन है, आगे ठवनी है, जो आगम का प्रताप है। माधु का आगम चम्पु बहा गया है, क्या बहा गया है यह मिड हाता है इन प्रवचना के रसास्वाद में। मणिप्रभाश्रीजी प्रवचन-याठ पर विराजमान हैं किन्तु वे शायद वहाँ दिखायी नहीं दे रही हैं, वैसा समझ भी नहीं है, क्योंकि वे पीठासीन होकर भी पीठासीन नहीं रह पाती हैं? बैठ जाती हैं जम कर आताश के हृदय सिंहासन पर। इस तरह उनकी प्रवचन-समाजों में प्रवचन-याठ-स आना बन्द-हृदय-तरा भक्ति का जो सेतु बन जाना है आवरण की मजबूत मुखद अभिव्यक्ति वहाँ है। पूरा प्रवचन-अवधि में हम स्पष्टतः महसूस करते हैं कि साक्षात् मणिप्रभा श्रीजी हमें नितनया प्रभा-भणिया से अभिमणित करती हैं और रचनात्मक उत्थान की नयी प्रेरणा देती हैं। हम पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत सम्स्करण विगत ग्रन्थ-सम्स्करण की अपेक्षा अधिक पढ़ा जाएगा, तथा इसकी पगडटी पर जल्दा ही आताशट चातुर्मास के प्रवचना के बाद अभिनव सन्तान हमारे समक्ष आयगा। हम सब माधवी श्री के प्रति गहन वृत्तना का अनुभव करते हैं कि इस मज्जन् जीवन में भी वे हमें/हमारे जीवन को एक विगुड/मार्थर आध्यात्मिक उठान दे रही हैं। (समुक्त सम्स्करण जुलाई १९८३)।

—नमो देवन

साप्ताहिक सावक - दोर

७ जुलाई १९८३

## क्रम

विचक्षण-सूक्तियाँ	९
मस्कार का प्रश्न	१९
श्रावक की भूमिका	३१
श्रवण मनन चिन्तन	४२
आत्मदृष्टि 'मैं कौन हूँ ?'	५४
आत्मशुद्धि . चैतन्य जागृति	६५
शरीर मे, शरीर से परे	७७
तोले, फिर बोले	९०
आत्मा नहीं बदलती	१०५
जिन्दगी एक मुसाफिरखाना	११२
धर्मलाभ	१२५
जययात्रा	१३७
स्वत्पाचरण	१४८
प्रवचनाश	१६१

## विचक्षण-सूक्तियों

१ कुएँ व पानी का चाह लोटम भरा नन म भरा या चडम म भरा पानी व न्यप म काई पक् नहीं आयगा। सभा भिन्न भिन्न भावना स तिरस्त्रन वाता जल एक न्यप, रग और स्वात् का हागा। हमार हृत्प भा कुएँ व समान ह। भापा नेवन आत्ति साधन \*। यत्ति हमार हृत्प म त्रिशातता हे, प्रेम हे रम ह ता हमारा वाणा हमारी खनी, और हमारी भापा रसीली हागा परतु अगर हृत्प म कटुता ह सर्कीणता है तिरस्कार का भाव है ता हमारा वाणी म, हमारी भापा में, हमारा व्यवहार म भी वहा कटुता सर्कीणता और तिरस्कार का भावना चत्रवगा।

२ मुदा काम भत वता जित्ता कौम वना आर दग समान राष्ट्र तथा धर्म की सवा करा। एकता व मून म वेंघ जाजा। फूट फजात का वदू ढर करा, और सकुञ्चित साम्प्रदायिक दल्लिकाण का त्याग कर मवका भाद भाई समवा।

३ तिमक जीवन म त्या नहीं, वितय नयी त्याग भावना नहीं परोपकार की भावना नहीं, समय नहीं ब्रह्मचय नहीं यह कराडपति हात हुप भा भहा दरिद्रा ह।

४ आप यत्ति वास्तविक मुख चाहत ह शाश्वत मुख चाहत ह ता उम माहर नहा भीतर खोजिय। मच्चा मुख भाग म नहा त्याग म ह, पुण्यन म नग आत्मा म है कम मे नहीं वम म है।

५ दा के नवनिमाण की वम पत्रिन त्रेता म समेन-अक कपडे पट्टन वाला क स्थान पर मिट्टा-म मन हाथ वाता का ज्यादा प्रतिल्ला ह ज्यादा समान ह। आप थम स शर्मयि नहीं वकि उम पुण्यचित्त जाभूषण समचकर धारण करें।

६ एक एक शवाम का मूत्य समझ कर उमका मनुपयाग करा।

७ धन्तु म भेद नहा है दष्टि म भन् है, इम पर गभीरता म त्रिचार करना मानव-मात्र का वतव्य ह।

८ हिमा का संकल्प करना हा भावहिमा है। भावहिमा स दूमरा का हिमा हा या न हा अपना स्वय का हनन ता हा हा जाता है। जम दियाभनाइ रगड खा कर स्वय जल जाती है फिर भन हा घट दूमर का जनाय या नहा।

९ तिमवा भाजन बाह्य न्यप म नारम हाता है उमका अंतरग पीछिक, सरम और स्वास्थ्यवद्धक हाता है आत्मव्यापा हाता है।

१० दूमरा की सवा करना करावा का दुख दूर करना, तडपत दृशा के जीमू पोछता अहिंसा का दूमरा पहलू है।

११ जीवन के कटु क्षणों को 'सहना' सीखो, 'कहना' नहीं ।

१२ अहिंसा, सयम और तप को ही धर्म समझना चाहिये । डम कर्मीटी पर खरा उतरे वही श्रेष्ठ धर्म है ।

१३ समाज की सेवा करना, मानव की सेवा करना अहिंसा देवी के चरणों की पूजा करना है ।

१४ जीवन को पवित्र करने के लिए अहिंसा गंगा के समान है, उसमें स्नान करने से मनुष्य मानवता की पूर्णता को प्राप्त करता है ।

१५ विचारों की अहिंसा का नाम अनेकान्तवाद है । अनेकान्तवाद वह जस्त्र है, जिसके द्वारा हम आपसी कलह, साम्प्रदायिक द्वेष और बलेश को मिटा कर प्रेम और सद्भावना की नदी बहा सकते हैं ।

१६ जो दुर्गति की ओर ले जाए वही अपना दुश्मन है, जो उसमें बचाये और सही दिशा-निर्देश दे वही अपना मित्र है ।

१७ श्रेष्ठ धर्म की खोज के चक्कर में न पड़ कर आप अपने जीवन को अहिंसामय, सयममय बनाने की कोशिश करें ।

१८ अहिंसा, सयम और तप को एक शब्द में समझना चाहे तो वह शब्द होगा— 'त्याग', क्योंकि हिंसा के त्याग को अहिंसा, इन्द्रियासक्ति के त्याग को सयम और तृष्णा के त्याग को तप कहते हैं ।

१९ जब बरसात के दिनों में नदी पूर आती है तब वह किनारे का सारा कूड़ा-करकट बहा कर ले जाती है । हमारे अन्दर भी स्नेह की धारा सूख गयी है, जिससे हममें निन्दा का, आलोचना का, द्वेष का, घृणा का, एक-दूसरे को पराया समझने का कचरा इकट्ठा हो गया है । आप प्रेम की ऐसी गंगा बहायेंगे तो यह सब कचरा धुल जाएगा ।

२० मानव-वैह का लाभ उठा कर हम अपने जीवन की भूले सुधारे, शूल निकालें; धीरे जो काँटे हमसे विछ गये हैं, उन्हें चुन-चुन कर अलग कर दें, और जीवन में परोपकार की सुगंध प्रवाहित कर दें ।

२१ जिस प्रकार पीतल के पात्रों को यदि प्रति दिन स्वच्छ नहीं किया जाए तो वे अपनी चमक खो बैठते हैं, उसी प्रकार यदि साधक नित्य साधना नहीं करते तो उसका हृदय अपवित्र हुए बिना नहीं रहेगा ।

२२ पुरुषार्थ मद् होता है, वहाँ सफलता भी मद् होती है । स्वाध्याय करते रहना आत्मशत्रुओं को खदेड़ते रहना है ।

२२ हमारा यह शरीर सोन के पान के समान है इसमें विलामिता का मदिरा भरन के स्थान पर मवा का मद्विचार का अमृत भर दा ।

२४ अगर बाहरी विनाम करना हुआ बिना का निवालें ताड़ा और आत्मिक विनाम करना है तो बर्मा का दावालें ताड़ा ।

२५ इस जिन्गी का कोई भराता नहीं है न मालूम यह चिराग कब गुल हो जाए, यह मफर न जान कब खत्म हुआ जाए ? यह धन-दौलत, यह महल यह भाग विलास के मार साधन यही रह जाएंगे, खाली हाथ आय वे और खाली हाथ जाएंगे । इसलिए जितनी भी भलाई कर सकन हा, करा, कपाया का जितना पतला कर सकत हो, करा गग-द्वेष जितना त्याग सकते हो त्यागा जिसस भविष्य अत्रकारमय न हो ।

२६ नीवा जन म रहत हुए पार कर सकता है परन्तु नीवा में जल आत ही उमरी पार करन की क्षमता नष्ट हो जाती है, इसलिए भावधान रहना चाहिये कि वही नीवा में जल न आन पाये । वसा प्रकार साधक समार म भल ही रह किन्तु समार का भाया माह साधक के मन म नहा रहना चाहिये ।

२७ जन शामन तो तप का अक्षय काप ह इसमें तप व बिना कोई काय नहीं होना ।

२८ सकट महापुरुषो के जीवन म आते हैं कायरा के नहीं । देखा न, ग्रहण सूय और चन्द्र का हा नयता है, ताराजा का नहा ।

२९ जा मनुष्य कतव्य का ध्यान रखता है वह कर्मा च्युत नहीं होगा और जो सत्ता का ध्यान रखेगा वह कतव्य म च्युत हो जाएगा इसलिये सत्ता की अपक्षा कतव्य का ध्यान रखा ।

३० धम समता के साथ ही सुशाभित हाता है, ममता के माय नहा । ममता धम को शुद्ध बनाये रखती ह पर ममता उस अशुद्ध बना देती है ।

३१ अपन पराये का भेद ममता का परिणाम है । समझदार व्यक्ति जानता ह कि पात्र भेद हान पर भी पाना म भेद नहीं है । पानी सान चादा के कलश म भरा हा तो क्या और मिट्टा के घडे म भरा हा ता क्या । पानी पानी समान है ।

३२ जहिना समय और तप जधवा त्याग रूप जो धम है, वह निता व्यक्ति विशेष की कपीता नहीं है । धम पर मव का समान अधिकार है ।

३३ सुत्र का निवाम शान्ति म है—शान्ति का निवाम समता म, इसलिये धर्मत्मा बाना हा तो ममता छाडिये, समता अपनाइये और अपना तावन मगनमय बाइये ।

३४ जो व्यक्ति धर्म में, नीति में, त्याग में, तप में, मानव-सर्वादाओं में मदा स्थिर रहता है, मजबूत रहता है, मकटकाल में भी विचलित नहीं होता है, अनीति के मार्ग में कदम नहीं भरता है, उस व्यक्ति के चरणों में देवता भी नमन करते हैं ।

३५ हम सब एक हैं, हम सब सर्वधर्म-गमन्वय का पाठ पढ़ें और दूसरों को पढाये । क्यो जैन-वैष्णव द्वेष करे, क्यो हिन्दू-मुरिनाम द्वेष करे क्यो ब्रह्मरक्षक वाले द्वेष करे, क्यो मन्दिर-स्थानक वाले द्वेष करे, क्यो श्वेताम्बर-दिगम्बर में द्वेष हो और क्यो मानव-मानव में द्वेष हो ? नहीं-नहीं, यह जीवन, यह मानव-जीवन द्वेष करने के लिए नहीं है ।

३६ सच्चा मानव वही है जो ममार के कड़वे-मीठे अनुभव होने पर भी कर्तव्य-रूपी सुगन्ध को चारों तरफ फैलाता है ।

३७ जिस मानव को अपने कर्तव्य का ज्ञान नहीं है, वह जीते-जी मृतक के समान है । राष्ट्र-पिता गाँधीजी का जीवन हमें कर्तव्य-पालन की बेजोड शिक्षा देता है ।

३८ पुरुषार्थ करना हमारा प्रथम कर्तव्य है । जो पुरुषार्थ नहीं करता, वह पुरुष कहलाने योग्य नहीं है ।

३९ समय को पहिचान कर दूसरों से सबक ले कर जो चेत जाता है, वही चतुर है ।

४० मेहमान कितने भी शानदार मकान में ठहरे, उसकी उस मकान के प्रति आसक्ति नहीं होगी, क्योकि वह समझता रहता है कि मैं यहाँ कुछ दिनों के लिए ही ठहरने वाला हूँ—आगे या पीछे मुझे यह स्थान छोडना ही पडेगा । ठीक इसी प्रकार हमें भी सोचना चाहिए कि हम इस दुनिया में एक मेहमान की भाँति आये हैं और मेहमान की तरह ही इसे छोड जाने वाले हैं, जाना न चाहे तो भी हमें जाना पडेगा ।

४१ अच्छा मेहमान कौन है ? वही, जो अपने मेजवान को तकलीफ न दे । ठीक वही गुण हमें भी अपने जीवन में उतारना चाहिये । हम भी दुनिया के किसी प्राणी को कोई कष्ट न दे, और इस तरह दुनिया के एक अच्छे मेहमान बनने की कोशिश करे ।

४२ विषय-मिश्रित प्रेम अशुद्ध है और विषय-रहित प्रेम शुद्ध है, क्योकि इसका सीधा सम्बन्ध प्रभु से होता है ।

१३ जो मनुष्य बन कर चम चक्षुओं में दृश्यता है, तानी उस जघा बहते हैं। मच्चा दृष्टा वही हाता है जो आत्मापी चक्षु स देखना है। यनी गान-रुष्टि आत्म वरमाण करन धाला होनी है।

१४ आत्मा व भूपण है - पान और म्वाध्याय। पान और म्वाध्याय व आभूषणा से आत्मा का जलवृत्त करन म ही 'रास्त्रिविब' शोभा है।

१५ हम अपन जीवन व त्रिवार का एक तथ्य बना लें और उन मन्तिल तब पहुँचन वे त्रिए निरंतर प्रयाम करते जाएँ। जमफरता स वनी नही घत्रायें। अमफरता ही मफरता की वृजा है।

१६ साधक का तथ्य होता है वाय का सिद्धि परम ज्याति म विमान हाना परमा मा राना। साधक म न हा हिंदू हा या मुस्लिम न हा या वणव लक्ष्य मव का एक है-श्वर बनना नारायण बनना खुदा का पा लना। इस लक्ष्य तब पहुँचन के माग अनव हा सकत है साधन अनव हा सकते हैं। साधक अपना आत्मशक्ति और स्वसाधक अनमार माग और साधन चुनता ह और वाक जल्दी और वाक दर स लक्ष्य तब पहुँचता है।

४७ अपना आत्मा का उज्ज्वल करके मनुष्य मोक्ष तब जा सकता ह।

४८ शरीर तशर है अनित्य है और आत्मा अनश्वर ह नित्य है। क्षण नगुर शरीर को शण नगुर मानना सम्यक् है। आत्मा का शाश्वत मानना भी सम्यक् ह। इससे विपरीत मानना मिथ्यात्व ह।

४९ पहनन का वस्त्र यदि मैला हो जाए तो आप लाग क्या करल ह? मानुन और जल में धा कर उस स्वच्छ बना तत हैं। भेदविज्ञान भी एक ऐसा हा मानुन है ममतान्पा तल व माय आध्यात्मिक बुद्धि म उपयोग बनता ह।

५० आत्मा का यानी दर व त्रिण सठ मान लिया जाए ता शरार का मुनाम मानना पडेगा। यदि मुनीम का गदनी स स्वाधार म घाणा हा जाता है ता उसका पूति कौन करेगा? मठ करेगा मुनाम नही। शरीर पाप करेगा ता फल आत्मा भागगा। शरार तो यही रह जाएगा।

५१ तप्या की तपि न बना हड है न हाता है, न हागा। वह मनुष्य का पागल बना देती ह जघा बना देती =।

२ प्रगुना दूध म मिन दूध पावा को पा जाता है पर हम एगा नहा करता। वह पानी स दूध का अलग करव ग्रहण करता है। विवका आत्माएँ भी शरार और शरारी का भेन नमनकर दाला वा जनव शाय्य हा आदर करता हैं।



५३ गरीर के लिए कोई पाप नहीं करना चाहिये, गरीर अलग है और आत्मा अलग ।

५४ विवेकी मनुष्य आँखे बन्द होने में पहले ही त्रुपि-महर्षियों के प्रवचनों अथवा धर्मशास्त्रों के स्वाध्याय में यह जान लेते हैं कि जीवन अपने के समान है, क्षण-भंगुर है ।

५५ आप खरबूजा भी खाते हैं और नारंगी भी खाते हैं । खरबूजे के बाहर के छिलके पर तो फाँके दिखती हैं, पर काटने पर वह अन्दर में मारा एक होता है । नारंगी बाहर में एक दिखती है, पर अन्दर उसकी अनेक फाँके होंती हैं । हम जीवन में खरबूजा बने, नारंगी नहीं ।

५६ अनामवत ही सच्चा समत्व पा सकता है । समत्व पाने वाला ही योगी कहलाता है ।

५७ जो विद्वान् है, समझदार है, ज्ञानी है, वे प्रत्येक कार्य को करने में पहले उसके फल का विचार कर लेते हैं और इन प्रकार अनेक पापों से बच जाते हैं ।

५८ जो मनुष्य सब इच्छाओं को त्याग देता है और लालसाओं में शून्य हो कर कार्य करता है, जिसे किसी भी वस्तु के साथ समत्व नहीं होता और जिनमें अहंकार की भावना नहीं होती, उसे शान्ति प्राप्त होती है ।

५९ बुरे भाव मनुष्य को विनाश की ओर ले जाते हैं और भले भाव विज्ञान की ओर । बुरे भाव विकार कहलाते हैं और भले भाव विचार ।

६० दानवता के सींग-पूँछ नहीं होते, न रंग-आकार होते हैं । विकारों से मानव दानव बन जाता है और विचारों से दानव मानव बन जाता है ।

६१ विकार द्वेष पैदा करते हैं, विचार प्रेम । विकार नरक में ले जाते हैं और विचार स्वर्ग में ।

६२ लोभ एक इतना बड़ा विशाल समुद्र है कि जिसके भँवर में पड़ कर निकलना अत्यन्त ही कठिन है । लोभ से क्रोध आता है, लोभ से कामनाएँ बढ़ती हैं, लोभ से अज्ञान बढ़ता है, और लोभ से विनाश होता है ।

६३ जिस प्रकार चन्दन अपने काटने वाले कुल्हाड़े को सुगन्धित कर देता है, उसी प्रकार अपने विरोधी को भी जो समभाव रूपी सुगन्ध अर्पित करता है, वही महा-पुरुष की सामायिक है ।

६४ सामायिक हृदय को विशाल बनाती है । जीवन में समभाव/समता को बृद्ध करने के लिए मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ भावनाओं को अपनाना चाहिये ।

६५ विचारों की शक्ति जितना प्रबल होता है विचारों की शक्ति भी उतनी ही प्रबल होती है ।

६६ जा कम करने में प्रबल पराक्रम दिखा सकने हूँ व धर्मक्षेत्र में भी प्रबल पराक्रम दिखा सकने हूँ । एक रास्ता बिनाग का है और दूसरा विनाम का ।

६७ मनुष्य बित्तना भी विद्वान् हो, बुद्धिमान हो, सम्पत्तिवान् हो परन्तु यदि वह जाचरवान नहीं है तो जगत में वह प्रतिष्ठा नहीं पा सकता ।

६८ कमल में दुग्ध नहीं है वह जहरी है परन्तु जलमें दुग्ध है वह और भी अधिक जहरी है । आचार जावन की गुण्य है ।

६९ निःस्वार्थ भाव से दूसरों का भला करना ही मन्त्राचार है ।

७० यदि हम सबके समय अपना मित्र का सहायता न करें तो हमारा मित्रता कैसी ? महानुभूति सदा और महयाग द्वारा ही मित्रता प्रकट की जाती है ।

७१ मित्रता ही वह माध्यम है जो हमें दुराचार से मन्त्राचार तक ले जाता है ।

७२ मित्रता में माना ठिपा ही तब तक वह मित्रता के भाव विवका, मित्रता से अलग करने पर ही माना का अमना मूल्य मिन सकेगा । बुद्धिमानी यह है कि मित्रता में मान को अलग कर दिया जाए । हमारा मन मन धन और जावन भी भ्रम भ्रमुर हान में लुच्छ है मित्रता है । परापवार ही हमें मित्रता में ठिपा माना है ।

७३ यदि प्रत्येक मनुष्य में मानवता का निवास ही जाए तो मार लड़ाई-झगड़े खत्म हो जायेंगे । राष्ट्र राष्ट्र के समय मिट जायेंगे । विश्वान्ति प्रस्थापित हो पाएगा ।

७४ अगर हम अपनी आत्मशक्ति का जागत करें तो अमताप के स्थान पर सदाय अशांति के स्थान शांति और भय के स्थान पर अभय का वातावरण बना सकेंगे । एम वातावरण में विश्व के सभी देशों का सभी प्राणियों का मनीयाण विनाम ही सकेगा ।

७५ जिस प्रकार मूय विना वह आप ही कमना का विनाता है चन्द्रमा विना वह बुधुनि का प्रफुलित करता है मधु विना याचना के जन बरमाता है जमा प्रकार महापुरुष ही विना याचना के पराई भलाइ करन हैं ।

७६ धामत तिजारीयों भरन जा रहें हैं परन्तु इन तिजारीयों का पूरा कौड़ी भी साथ नहीं जान वाला है । अथवा साथ ले जाता है तो कन्य धन मवा-धन दया-धन और परापवार धन से अपनी तिजारीयों भरता । मन्त्र धन साथ जान वाला है दयावा रला आर मुहुरा मभरा तिजारीयों साथ जान वाला तरी है ।

७७ अच्छे साहित्य का म्वाध्याय भी हमारा कर्तव्य है। अपना चरित्र पवित्र बनाने के लिए हमें महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़ने चाहिये।

७८ आप दर्पण में अपना मुँह देखते हैं। यदि वही कोई दाग हो तो गीले तौलिये में पीछे डालते हैं। ठीक उसी प्रकार महापुरुषों के जीवन-चरित्र भी दर्पण हैं, जिनकी ओर देखने में हमें अपने जीवन के विकार, कलक, दोष नाक-नाक दीप्य पड़ेगे। उम परिस्थिति में हमारा कर्तव्य हो जाएगा कि हम ज्ञान-रूपी तौलिये को भावना के जल में भिगो कर उमने अपने जीवन के दुर्गुण-रूपी दाग मिटा डालें।

७९ एक दीपक की तौ में हजारों दीपक जलाये जा सकते हैं। ठीक इसी प्रकार एक महामानव का चरित्र हजारों महामानव पैदा कर सकता है। जन्म है दीपक-में-दीपक का संयोग करने की।

८० जब तक मन कच्चा है, तब तक मारी दाँड-धूप व्यर्थ है। मन मन्चा ही तभी राम प्रमन्न हो सकते हैं।

८१ मन्दिर या स्थानक में, मस्जिद या गिरजे में ही नहीं, अपने घर और बाजार में भी सदाचार माय रखिये।

८२ मिठाई का नाम जपने से नहीं, उमने खाने में ही पेट भरेगा। ठीक उसी प्रकार महापुरुषों के स्मरण-मात्र से नहीं, उनके जीवन का अनुसरण करने में ही आत्म-कल्याण होगा। सदाचार में ही उद्धार होगा।

८३ राग छूटने पर द्वेष तो अपने-आप छूट जाता है, द्वेष होता ही इमलिये है कि हम किसी पर राग रखते हैं।

८४ आमकित छूटती है—सम्यक्त्व से, विवेक से। अजीव को जीव समझना मिथ्यात्व है। जीव को अजीव समझना भी मिथ्यात्व है। जीव को जीव और अजीव को अजीव समझना सम्यक्त्व है।

८५ शिक्षा केवल पेट-पूर्ति के लिए ही नहीं है, उमक महान् उद्देश्य जीवन-विकास है। जीवन में दो ही रास्ते हैं—विकास का या विनाश का। इन दोनों शब्दों में केवल व्यजक “क” और “न” का ही अन्तर है, परन्तु दोनों शब्द ३६ के अक के समान एक-दूसरे से भिन्न हैं।

८६ मानव को बाँधने के लिए माँकलों की आवश्यकता नहीं होती। मानव के लिए कोई बन्धन है तो मर्यादाएँ हैं।

८७ आप एक डायरी रखिये तथा उसमें जीवन का मुन्तर, आश्रय और मयमी बनाने के लिए कुछ नियम लिखिये। फिर प्रतिदिन उन नियमों का पालन करने का पूरी कोशिश कीजिये। अभ्यास सब अपना स्वभाव बन जाएगा। फिर नियमों का पालन करने के लिए आपका प्रयत्न नष्ट करना पड़ेगा।

८८ यदि एक अणु में सूर्य के समान शक्ति है तो आत्मा में अनन्त सूर्यों के सराबर शक्ति है। सभी तो आत्मा को अनन्त ज्ञान अनन्त ध्यान अनन्त चारित्र्य और अनन्त वीर्य का धारण करने वाली माना जाता है।

८९, जैसे हम मिट्टी के मकान में रहते हैं वैसे ही धरार रूपी मकान में हमारी आत्मा रहना है। बिनाय के मकान में विरायतार का काम आसक्ति नहीं रहती। यदि इन तत्त्व शरीर के प्रति अनासक्ति पना है जाण तो हम मृत्यु का कोई भय नहीं रहे।

९० ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं ही शकता ज्ञानवित्त में दुष्टकारा नष्ट मिल सकता।

९१ ज्ञान का उपयोग हमारा के दाप दूहन में छिद्रावपण करके ममता काजिये, आत्मनिराक्षण में काजिये।

९२ जड़ का अपना चेतना का महत्व अधिक् है। हम इस जड़ सत्ता में डूबना नहीं करना चाहिये। जहाज डूबता नहीं है तरता है इसलिये वह हमारा का तरान में ममता प्रगता है। जहाज पानी में रहे कर भी पानी के ऊपर रहता है। तीर्थकरा की उपमा जहाज मदी जाती है।

९३ समाज में ममता का गीलापन हमारी आत्मा को उमसे चिपकाय रखता है। ममता छोड़ कर हम अनासक्ति बन सकते हैं।

९४ भावा की उत्पत्ति मन से होती है इसलिए यदि चारा का न पकड़ कर चारा की माँ का पकड़न की तरह यदि मन का वग म कर लिया जाए तो अनासक्ति की माधन में मफनता मिल सकती है।

९५ किसी मगठन में कोई व्यक्ति के चा बनने की काशिश न कर मुझे उन सबे तो अच्छा है परंतु न बन मके ता कम म-कम वचा न बन।

९६ दो मकिलियाँ ग। एक चाशनी पर उठी दूसरी शक्कर पर। पहली चिपक गयी दूसरी कुछ खाकर उड़ गयी। मगठन के लिए नि स्वाय बनना हागा। सध के हित के लिए मुटुम्य के हित का त्याग करने का शक्कर पर बलन वाली मक्का की तरह तयार रहना हागा।

१७ अनुभव अमृत के समान मधुर होता है, उममे द्वेष आदि ना जहर नहीं होता ।

१८ सोना यदि अपवित्र स्थान में, कीचड़ में, या गटर में पड़ा हो तो भी कोई उसे नहीं छोड़ेगा । शत्रु में भी अच्छे गुण हैं, तो उन्हें मत छोड़िये, आनाने को तैयार रहिये ।

१९ मूले वस्त्र को फाटने में मूल नष्ट नहीं होता, तरीके में उमका मूल निकालना होता है । वैसे ही पापी को मार डालने से वह मुघर नहीं जाता । तरीके में उमका हृदय-परिवर्तन करना पड़ता है ।

१०० धर्म की, कर्तव्य की, शुद्ध भावनाओं की बातें कहनेवालों की भी कमी नहीं है और सुनने वालों की भी कमी नहीं है, कमी है केवल करने वालों की ।

१०१ प्रकृति ने तो सब को मानवाकार में एक ही स्नेह-नदी का पानी पीने वाला बनाया है, पर हम लोग अपनी सकुचित दृष्टि के द्वारा एक-दूसरे में नाम-भेद में हृदय-भेद करते हैं ।

१०२ जो मुक्त बनाता है, विषयो से रहित करता है, मायावी प्रवृत्तियों में रहित करता है, कषायो में रहित करता है, वह धर्म है । इन्द्रियों की गुलामी जिसने खत्म करायी, भौतिकता की गुलामी से जिसने छुटकारा दिलाया, माया के जालों को तोटने की ताकत जिसने दी, परिवार में रहते हुए भी जिसने 'एकोऽह, ब्रह्मोऽह, निरजनोंऽह' का पाठ पढाया, वह ज्ञान है ।

१०३ सीपी में चाँदी की आँति हो रही है । इस भ्रान्ति को मिटाने का वाम ज्ञान करता है । हमारे हृदय में राग-द्वेष की जो ग्रन्थि, गाँठ है वह कब खुलेगी ? जब ज्ञान का प्रकाश होगा ।

१०४ हमें गुणानुरागी, गुणदृष्टा बनना है, छिद्रान्वेषी नहीं । जगत् में गुण ही-गुण देखते जाओ और गुण-ही-गुण ग्रहण करते जाओ, फिर देखो कि अपने अन्दर कितना आनन्द होता है, कितनी शान्ति का अनुभव अपन करते हैं ?

१०५ झाड़ू तो हाथ में उठा ली, लेकिन जब तक रोशनी नहीं होगी, अँधेरे में कचरा कैसे निकालोगे ? ज्ञान प्रकाश है, क्रिया बूहारी । जब ज्ञान का दीप प्रज्वलित हो जाता है, तब आत्मा अपने विकारों की ओर, अपनी विभाव-दशा की ओर दृष्टिपात करती है । इन दोषों को देख लेने पर क्रिया-रूपी बूहारी विकार-रूपी कचरे को बाहर निकाल फेंकती है । ज्ञान के साथ क्रिया तो स्वयं आ जाती है, अतः क्रिया से पूर्व ज्ञान-दशा को जगाओ ।

हम सब दो दिनों में मस्य की चचा कर रहे हैं मुन रह हैं। यदि मन से मुना हा, यदि मस म मुना हा यदि एनाप्रता म मुना हा और यदि मुनन व भावा म मुना हा ता अभी-अभी जा पन गाया गया है वह आत्मा का झण्डा देन वाता है पर प्रश्न है क्या हमारा मन ऐसा चचा मुनन म लगता है? जा कर बठना वह भी अच्छा बात है शत्रु का मुनना वह भा अच्छा बात है पर जिम आशय म बात की जा रहा है क्या उम आशय का मुनन म हम रम आ रहा है?

मगर म प्रिय ता बहुत है। अनुकूल वस्त्र प्रिय हैं मम्बध भा प्रिय हैं, मवान प्रिय ह दुष्मन प्रिय है। 'प्रिय' का जय क्या है (यह न कि) जा हम प्रिय है। निश्चयतम मम्बधा म भी प्रियता है। जहाँ दष्टि भिना, चार भिन नहीं और चौमठ खिल नहीं। चार आँखें जम ह, मिलता ह चहगा प्रमनता म घूम उठता है और दष्टि, चेहर का जावृति प्रता दता है कि सामन वात व्यक्ति का इम व्यक्ति व मन म कितना महत्व है। गया वस्त्र भा यदि जा जाए ता मन बनता अधिव प्रमन हाता है कि चहगा चमकन लगता है (जर्वात) जहाँ व्यक्ति का विनी भा प्रकार का रम हाता है वहाँ उम आनन्द भिनता है।

देव गुरु धम के प्रति भी राग भाव हाता है। यद्यपि कहन व लिए हम कहत = कि राग भाव ह विनकुन राग भाव है तथापि हम पहन समार व रागा का त्याग करग ता यह राग फिन जापाजप छूट जागगा। एक जात्म विनाग का निमित्त है जात्मवल्याण व। निमित्त है शास्त्र-श्रवण जिन-मुद्रा व दर्शन तार्यों व। वलना पंचपरमेश्वर व स्मरण राग-वृष्ण आदि जिन व जा जागधम हा मन यदि उनका स्मरण करत है ता म स्मरण व विचारा म परिवरता जात है। वात राग मुद्रा व प्रति मन्मग व प्रति भी यदि हमार मन म प्रिय भाव है ता वह भा बटन अच्छा बात है। जम जम इस पद म हम शत्रु दिया जा रहा था-प्यार।

प्याग' किस वहे? अपना हा आत्मा का अपना ही आत्मा व प्रति हमार हृदय म प्रिय भाव जो। पर ता प्रिय भाव नहीं जागे वहाँ तब तब बात

श्रवण में प्रीति भी नहीं होगी, मन भी नहीं लगेगा, उल्लास भी नहीं उठेगा, आनन्द भी नहीं आयेगा तो उसे कहेंगे मात्र सुनने-के-लिए-सुनना । आनन्द और उल्लास वही आता है, जहाँ लगाव होता है । किसी-किसी व्यक्ति से बात करते हुए ऐसा लगता है कि बात कब पूरी हो ? आनन्द ही नहीं आता । किन्हीं पदार्थों को देख कर ही लगता है कि वे आँखों के सामने में दूर हो, आनन्द ही नहीं आता, क्योंकि वहाँ 'प्रियता' नहीं है । इस चेतन ने जगत् के दृश्यों में खूब प्रिय भाव प्रकट किया । जगत् के सम्बन्धों में खूब प्रिय सम्बन्ध जोड़े । आज में नहीं अनन्तकाल से इस जीवात्मा ने पर-पदार्थों से सम्बन्ध जोड़ रखा है । दृश्यमान् जगत् में इमकी मति प्रतिपल, प्रतिक्षण भटक रही है । इस जगत् में राग और द्वेष की बुद्धि में जीवात्मा हर ममय अपने आत्मा को भूल बैठता है । किसी और को नहीं भूला स्वयं, स्वयं को ही भूल बैठा है । स्वयं-ने-स्वयं को ही याद नहीं किया, अनन्तकाल में याद नहीं किया, अपने-आपको याद नहीं किया । याद नहीं किया और यदि कोई याद कराने वाला भी मिल जाए तो याद कराने की वाद भी अच्छी नहीं लगती । यह तो मैं नहीं कह सकता कि यहाँ बैठने वालों को अच्छी नहीं लगती है । यदि अच्छे न लगे तो सात बाग घर के छोड़ कर सर्दी में इतनी दूर कान दौड़े ? काफी वहिने कहती है, हमारा सवेरे का समय तो मर्दान की तरह होता है । नजर घड़ों पर रहती है, हाथ चलते रहते हैं ।

आखिर 'प्रिय भाव' कुछ है । यदि ओर गम्भीरता में जाना हो, गहराई में जाना हो, स्वयं की बात को प्रीति-पूर्वक सुनना हो, ओर स्वयं की बात सुनने का लालग जाए, तो आनन्द आ जाए । जैसे करोड़पति को करोड़ रुपयों की सूचना से आनन्द मिलता है, जैसे लखपति यदि हजार रुपये कमा ले, लाख रुपये कमा ले, तो आनन्द मिलता है । नये वस्त्र मिल जाएँ वहिनो को तो आनन्द आता है, कोई नया सूट मिल कर आ जाए तो बन्धुओं को आनन्द आता है । उससे कई गुना अधिक आत्म-चर्चा में आनन्द आना चाहिये, सत्सग की बात में आनन्द आना चाहिये । जहाँ आत्मा की बात सुनने को मिले वही मन भाव-विभोर हो जाना चाहिये । ऐसा लगना चाहिये कि आत्मकल्याण का एक-एक शब्द मुझे सम्हाल कर रखना है । किसे सम्हाल कर रखेगा ? जिसे महत्त्वपूर्ण समझेगा, उसे ही न ? जो महत्त्वपूर्ण नहीं है, उसे भला कौन सम्हालेगा ?

जितने पदार्थ महत्त्वपूर्ण हैं, उन सबको आप ताला-कुर्जी ने बन्द करके आये होंगे, पर कुछ ऐसे भी पदार्थ होंगे जो घर के बाहर यों ही पड़े होंगे ? जिन्हें आपने मूल्यवान समझा उन्हें सदा सम्हाला । सत्सग में आत्म-कल्याण के लिए जो शब्द मिलते हैं, उदाहरण मिलते हैं, उन्हें मुमुक्षु, साधक या जिज्ञासु बटोरेंगा, बाँध कर रखेगा, नोट करेगा, दिमाग में दस बार धुमायेगा कि आज यह वाक्य

आत्म वत्याण के लिए वस्तु अच्छा है जो यह वाक्य मरी प्रकृति का सुधारने के लिए वस्तु अच्छा है । पूरे एक घंटे के चर्चान में । कुछ वाक्य वह निम्न में न कर जायगा, जो कि मैं में दम कर उन्हें पाहोगया । दाहरायन तभी ता उम कुछ उमका प्रतिफल मिलगा । दाहरायन, नहीं याद करगा नहीं जोर विविध मन्त्रों में अपन। प्रकृति का मनुलित रखने के। काशिश करगा नहीं ता उम अनन्द वम जायग ? जानद आयग किंतु याद रखेगा, काग वही जा मुनत समय जागन्त रहगा, जा मुनन के समय में एकाग्रतः में मुनगा उपयोगपूर्वक मुनगा । यदि उपयोगपूर्वक मुनगा नहीं ता याद रखने का प्रश्न ही नहीं उठेगा । यान् वहा रहता है किम श्रवण के क्षणा में हमने एकग्रतः में मुना हा ।

यदि ऐसा श्रवण रुचि हागा, ता हमारे मता में ता साफ-साफ वह लिया है कि तुम्हारी पात्रता के यही में प्रारम्भ हा गया । पात्रता का यही स मूल्याका हा गया । आनन्दधनज, महाराज न किर्स, एक जिनामु न प्रश्न किया कि ह प्रभा महज शान्ति मिन महज जनन मिन सहज प्रसन्नत, में रहें विपमता में भः समता का अनुभूति हा विविधता में भी गन्त, का अनुभव हा मुख ऐसे लट्टि दाजिय । आनन्दधनज, महाराज न कहः महज शान्ति महज शान्ति प्राप्त करन के। तुझे ऐमः भावना, उत्तरत नई एमः विचार तुझे आया ऐसा विषय तुझे आया यह। अपन जाप में तुझे धन्यता दिलाने वाला भाव है । कौन-सा भाव ? महज शान्त । जन दशन यः आध्यात्मिक साहित्य का जोप पढ कर लखे ल उन मार हैं, सता न उन मुख का मुख नहीं बडा जो दूसरापर निभर हा जा क्षणिक हा जा बालजया न हा जो, जो हम अनुम न करें अनुभव करें चित्तन करें मनन कर हम जितना भी मुख मिलता है जिनमें भा वह मिलता है स्थाया नहीं हाता क्षणिक हाता ह । यह मदा रहने वाला नहीं हाता जो कर केन जाने ला हाता है । जानिया न कह लिया कि जिममें दूसरे के अपक्षा है वह जानन नहीं हा सपता, वह क्षणिक सुख हा हो गयता ह । मनिए उन मुमुक्षु में वहा कि तुममें महज जानद प्राप्त करन के। भावना, जगः । सहज जनन और वही नहीं है स्वयं में हा है । तरी जत्मा में हा है । तर में ही है । यदि तू प्रयत्न कर ता वही दूसरे जगह जान के। जन्मत नहीं है । तुझमें यह शक्ति है यह जानन है जो मिद्धा में है । जिम जानन का समता न पाय किम मत्य के दशन उन्हांन किय तू भः उम मत्य के दशन कर मयतः है । पर दशन करने का रुचि हा दान करन के। भावना हा दान करन के। जानना हा और प्रयत्न हा ता परिणाम आता है । प्रयत्न कर हागा ? अब रुचि हागा । रुचि कर हागी ? जोर बार-बार प्राति-पूर्वक उस विषय का मुना ।



कल स्वाध्याय मे मने पढा, उमास्वाति-कृत 'प्रथमर्गति प्रकरण' मे हरिभद्रसूरि ने जिमकी टीका की है, ममुक्षु ने प्रश्न किया कि बात तो एक ही है। कुछ ही जव्दो मे मारे धर्म-ग्रन्थो का मार निकल आता है। मूल मे तो बात यही है, राग को छोडो, द्वेष को छोडो। मारे धर्म-ग्रन्थो का मार तो इतना ही है। मारे मन्तो की वाणी महती तो इतना ही है। तो केवल दो ही जव्द है और दो ही जव्दो का छोडना है तो फिर उत्तरी रामायण क्यो, इतनी चर्चा क्यो, इतना साहित्य क्यो, इतना उपदेश क्यो, उपदेश का इतना शोर क्यो ? नयी बात तो कुछ है नही। उत्तर मे कहा गया कि यद्यपि वान न्य है, न्य तो इतना ही है। आचरण मे तो यही लाना है। पर उवह न्य उत्तरी मररत मे आत्मसात् हो जाए ऐसा होता तो इतना प्रयत्न शायद नही करना पडता।

रोज-रोज श्रवण करने से, त्याग और वैराग्य की बात मुनने मे, त्याग और वैराग्य मे मन दृढ होगा वैसे ही जैसे रोज-रोज भोजन करने मे शरीर पुष्ट होता है, नित्यप्रति निद्रा लेने से शरीर मे प्रात काल पुन ताजगी आ जाती है, स्फूर्ति आ जाती है, थकावट मिट जाती है। नित्यप्रति पदार्थो का सेवन करने मे जैसे शरीर मे गति आती है, प्रति दिन के स्नान मे जैसे शरीर स्वच्छ रहता है, प्रति दिन धोने से जैसे वस्त्र पवित्र रहते है, वैसे ही त्याग और तप की बात प्रति दिन श्रवण करने मे आत्मा मे त्याग और तप के प्रति भाव मजबूत होते है और वैराग्य-भाव दृढ होते है।

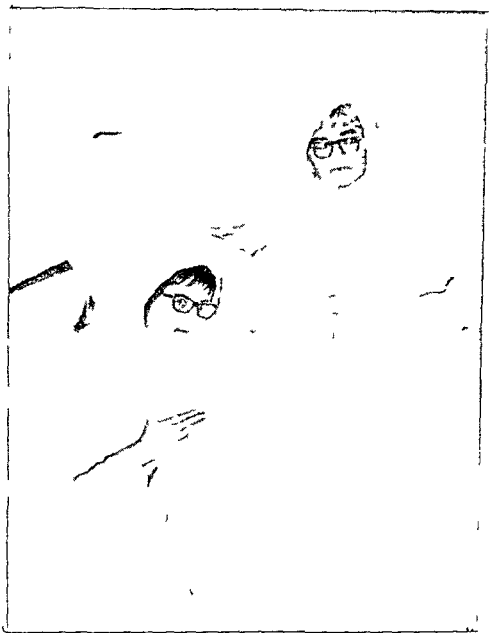
यदि एक दिन सुन कर दस या दो महीने उस बात को नही मुनोगे तो मुनी-मुनायी बात भी गगाजी चली जाएगी। नित्य प्रति श्रवण करने से उमका दिन मे दस बार विचार आता है, इसलिए हरिभद्र सूरि ने कहा कि मत्सग और मत् चर्चा प्रति दिन जरूरी है, इसलिए जरूरी है कि प्रति दिन श्रवण करते-करते त्याग और वैराग्य के सस्कार मजबूत बनेगे। मित्रता भी मजबूत होती है, कव ? जब प्रति दिन मिलते रहो। प्रति दिन मिलते रहो, प्रति दिन बात करते रहो तो मन्वन्धो मे घनिष्ठता आ जाती है। आत्मीयता बढ जाती है। कव ? जब आये दिन मिलो। यदि माँ-बेटे भी, भाई-भाई भी दस-पाँच महीनो मे एक बार मिलते है, एक-दो वर्षो मे एक-दो बार मिलते है तो दुनिया की दृष्टि मे तो सम्बन्ध है माँ और बेटे का, किन्तु चौबीसो घटे रहने वालो मे एक दूसरे के प्रति जो आत्मीयता, जो सहानुभूति, जो लगाव होता है, वह दो-तीन वर्ष मे आने वालो के मन मे नही होता, क्योकि सम्पर्क नही है चौबीसो घण्टो का। हर समय साथ रहने से आत्मीयता बढती है। एक-दूसरे के सुख-दु ख मे काम आने की भावना ज्यादा रहती है यदि आत्मीयतापूर्ण व्यवहार हो, किन्तु यदि बहुत दूर रहने वाले हो तो जैसे मेहमान आते है वैसे ही वे आते है और जैसे मेहमान जाते है, वैसे ही वे चले जाते है, क्योकि बहुत वर्षो से दूर रहते है, बहुत लम्बे समय से अलग रहते है, इसलिए कोई अधिक आत्मीयता नही है।

ठीक इसी प्रकार आत्म-कल्याण की वचा भी ह जा वष म एक चार मुनता है या केवल पयुषण म मुनता ह उसक सस्वार गट्टरे नही हा सकत । उमक सस्वार गम्भार नही हो सकत । नित्यप्रति सुनन वाले के सस्वारो म दबता आती है । एक गाय भा जब गे-तान बर्षों तक एक घर म बाँध दी जाती है जब दो-तीन बर्षों म एक ही घर उस प्रति दिन जाना पडता है और जाती है ता उस घर म जान क सस्वार उमके मजबूत हो जाले हैं, सस्वार इतन मजबूत हो जाते हैं कि कभी मालिन बेच भी दे या किसी दूसर को द भी दे, ता भी दा चार दम पाँच दिन तो उमका मुह उसी तरफ जाता है । उसा पुरानी मवान की तरफ जाता ह, उसी गला म घुसन का काशिश वह करता ह क्याकि उसके सस्वार मजबूत हैं ।

सस्वार मजबूत कम हाते हैं ? नित्यप्रति मम्पक रखन स । चार का सगत वाल के सस्वार चार क बन जात हैं । जुआ खेने वाले का यदि प्रति दिन का सम्पक हा ता जुआ खेनन का आदत हा जाता है । शराबी का सम्पक हा ता शराब पीन की आदत हा जाती है । पहल दिन इच्छा नही हाती दूसर दिन नही हाता, दा चार दिन भी नहा हाती, किन्तु नित्य प्रति ऐसे बायुमण्डल म जब यकित रहता है ऐसा मामायटी म रहता ह ऐसे व्यक्तिया के बीच रहता है तो कितन लोग ऐस मुन गय ह जा कहन लगे कि महाराज यह आदत बन स बनी, सोमायटी स बनी, मित्रा क सम्पक स बना, आय दिन उनके निवट बठन स बनी, जाय दिन हाटल म उनके साथ जाने स बना । एक दिन म नही बना, दो दिन म नही बनी दम-भाच ग्निा म भी नहा बनी किन्तु दो चार महोना का नित्य प्रति का जो सम्पक है उम सम्पक न उस प्रभावित किया । जब प्रभावित किया तो वही न-कहा जा कर व्यसनी के साथ रहन वाला स्वय भा व्यसनी बन जाता है । इमलिए गीति ने स्पष्ट शब्दा म कहा है कि यदि अपन जीवन को पवित्र रखना है, यदि विचारा को स्वच्छ रखना है यदि अपनी ससृति और सस्वारा के अनुहप जावन जीना है ता ऐसे मम्पकों का त्याग करें जिनस तुम्हारे मुसस्वार शिथिल न हो जाणें तुम्हारी ससृति धूमिल न हो जाए, तुम्हारा बायुमण्डल अपवित्र न बन जाए । ऐसे कितन लोग हैं जा यह अनुभव करते हैं कि यह मम्पक का परिणाम है । इसीलिए माता पिता का कतत्य होता है कि सतान के जीवन की सुरक्षा के लिए, उनकी जिदगी मुसस्वारा म बीत इमलिए बहुत पहले स उन्हें सतक रहना चाहिए सावधान रहना चाहिय । बाए-नेरह बष की उम्र से लेकर बीम बष तक, चाह नडकी हा चाहे लडका उमकी प्रत्यक क्रिया का अवेषण करना चाहिये, धाज बरनी चाहिय जानकारी रखनी चाहिय । मैन कई बार पहन भी कहा है कि बच आत हैं कहा स आत हैं किनव माय आत हैं बच जात ह वहाँ नात हैं और कितनी बजे आत ह, इसकी पूरी-पूरी जानकारी रखनी चाहिए, पहरेगारा बरनी चाहिय कपोनि जिम्मेवारी है । जम ग्निा है ता अच्छा जीवन ग्निायें, इसम भी आपका उत्तर दायित्व है । इस आप नकार नहा सतत इमलिए बहुत जम्रा है कि आप उनकी पहर दारी करें उनकी चौकसी करें, उनकी धाज-खबर रखें ।

किसी एक पिता ने अपने बेटे से कहा कि बेटे ! मैं कितने दिनों में तुझे देख रहा हूँ कि जहाँ तू खटा रहता है, जिनके बीच तू दो-तीन घण्टे व्यतीत करता है; दूसरे लोगों ने भी मुझे कहा है कि उन पाँच-सात व्यक्तियों का, जिनके साथ तेरा नम्र व्यतीत होता है, आचरण ठीक नहीं है। उनके सम्कार ठीक नहीं हैं। उनमें कोई जुआरी है, कोई जराबी है। ऐसे व्यक्तियों का सम्पर्क तेरे जीवन को किसी-न-किसी खतरे में ले जाएगा। कहीं-कहीं तू सम्स्कृति से टूट जाएगा। कहीं-न-कहीं तेरी प्रकृति परिवार के लिए परेशानी का कारण बन जाएगी। एक दिन, दो दिन, कितनी ही बार मना किया वह नहीं माना। पिता ने सोचा कैसे समझाऊँ, क्योंकि सोलह-मन्त्रह वर्ष की उम्र के बाद अधिक ताडना-तर्जना भी उचित नहीं होती।

कहीं-कहीं तो हमारी प्रकृति हमें ही अज्ञानि में डाल देती है। पञ्चात्ताप करने का मौका देती है। नीति कहती है कि पन्द्रह वर्ष के बाद, सोलह वर्ष के बाद, यदि बेटा भी है तो उसके साथ भी वाणी में मित्रता का व्यवहार करना चाहिये। नीति ने इतना ही कहा है कि दस वर्ष तक ताडना-तर्जना करे। दस वर्ष की उम्र तक आप जैसा भी उचित हो वैसे शब्दों का प्रयोग करे तब भी बहुत बड़े अपराधी नहीं है, किन्तु सोलह वर्ष की उम्र के बाद यदि आप लडके को रेकारा देते हैं, तुकारा देते हैं, दो थप्पड़ देते हैं तो हो सकता है कि उम्रमें प्रतिकार की भावना चेत जाए, हो सकता है आपके प्रति उम्रकी गलत भावना बन जाए। हो सकता है भविष्य में वह आपकी कदर भी न करे। आपके प्रति उम्रका जो कर्तव्य है उसे भी न निभाये। नीति ने कहा है कि सोलह वर्ष के बाद बेटे के साथ भी व्यवहार मित्र जैसा होना चाहिये अर्थात् शब्दों का बहुत ही उचित, बहुत ही सीमित, बहुत ही सतुलित प्रयोग करना चाहिये अन्यथा एक बार जुवान खुली-तो-खुली। कहीं-कहीं तो बाप और बेटे के बीच भी इस प्रकार की भाषा की व्यवस्था होती है कि सामने वाला सोच ही नहीं पाता कि ये पिता-पुत्र हैं क्या? क्योंकि जिह्वा जब एक बार खुल जाती है, तब उसके बाद वह बन्द रहे, यह बहुत मुश्किल है। समझदार लोग तो पहले से ही सामने वाले की जिह्वा न खुले ऐसा ही विवेक रखते हैं, कम बोलते हैं। जरूरी-जरूरी टोकते हैं। बाप ने सोचा कि बेटा तो मानने वाला है नहीं। एक दिन जैसे ही बेटा बाहर जाने लगा, पिताजी ने उसे एक कोयला दिया और कहा कि जा उधर जाकर सिगडी में डाल दे। बेटा कहने लगा कि पिताजी मैं इसे हाथ में क्यों लूँ? अरे ले ले, यह कोई जलता हुआ अंगारा थोड़े ही है। तो वह कहने लगा कि पिताजी, इतना तो मैं भी जानता हूँ कि यह अंगारा जलता हुआ नहीं है, पर मेरा हाथ काला तो हो ही जाएगा। मुझे हाथ धोना तो पड़ेगा ही। हाथ जलेगा नहीं, किन्तु काला हो जाएगा, इसके लेने वाले का। पिताजी ने कहा तुझमें इतनी अकल है क्या? इतना होरा है क्या? क्या तुझमें इतना



प्रणाम माधवा मणिप्रभात्रा जन्म जयपुर १९८१ इ दासा-दास १०  
शुभाशीष प्रवर्तिनीत्रा रिच तणथाना जन्म अमरावता १०१०  
दासा पापाड १९०८, निघन जयपुर १९८०



विवेक है? क्या तू यह महसूस करता है कि भले ही कायना तुझे जनायगा नहीं किन्तु हाथ तो काले कर हा दगा। बेटे ठाक कहना हूँ कि भल हा तू एक बार बुरा न भी बन किन्तु बुरा का संगत म रह कर तू बदनाम तो हा हा जाएगा। उसन कहा म अच्छा बदनाम बुरा।

एक प्रकार मस्वृति आर मस्वारो की सुरक्षा करने क लिए निय प्रति एक व्यक्ति का सम्पर्क नहीं होना चाहिये जिनका व्यक्तित्व विवर्धित न हा। तात्पर्य यह है कि प्रति ऐस व्यक्ति का स करे ना लखपति हा कराटपति हा एसा बात नहीं है प्रीति उनम करे जिनके सस्वार अच्छ हा जिनका मस्वृति के प्रति आस्था हा। गरीब जोर अमीर की मित्रता नहीं रही हा ऐसा बात नहा है। इतिहास बताता है। हमारे जाराध्य-मन्वघा म एक प्रकार की मित्रता रहा है। क्या मुत्तमा और श्रीकृष्ण का मित्रता प्रमिद्व नहीं है? मुत्तमा और श्रीकृष्ण का मित्रता आज भी समाज का यह शिक्षा देता है कि मित्रता म अमीरी आर गराबी का भेद नहीं होना चाहिये। मित्रता म ता मित्रता के भाव होना चाहिये। एक-दूसरे के प्रति आमायता का व्यवहार होना चाहिये किन्तु मित्र का वास्तवता क्या करे आज ता स्थिति यह है कि रिश्तदार भा रिश्तदार नहीं समझत यदि उमक पाम पमा न हा। यदि वह गराब ह ता उसके निकट म गुजरत हुए बालगे भी नहा। यदि कोई कराटपति लखपति का टाइटिल पा चुका है ऐसा व्यक्ति दूर भल हा हो, भल हा पडाम म न रहता हा, भल हा किसी गाव म रहता हा यह व्यक्ति सामन मित्र जाए ता लटक-लटक क नमस्कार करने म बडा खुशा का अनुभव हम करत है माया म माया मित्र कर कर लम्ब हाथ निधन पड पहाड स काई न पूछ बात।

अमारी म किसी का साथ निभाना काई बडी बात नहा ह। गराबी म किसी का साथ निभाना बहुत बडा बात है। किसी के दुख-म म काम आना बहुत बडा बात ह। परशानी क क्षणा म किसी का शान्ति क दा शक कहना बहुत बडा बात है।

सकट म हम किसी क काम आये यहा ता मानवता है। यदि हम सकट म काम न जाये, दुख म काम न आये, गरीबी म काम न आये ता फिर हमारा खरूरत हा क्या ह हमारे मन्वघा का महत्व ही क्या है?

श्रीकृष्ण न मित्रता निभाया था। एक समय म जब मुत्तमा फट कपडा म जाय थे तार-तार कन्ना म आय थे, निसका पहल्लार न भा एक बार भातर जान देन म आनावना की था, पर जम हा क श्रीकृष्ण म मित्र जम हा उनक निकट क पहुँचे उनके हृदय म मित्रता क भाव ऐस उमड कि क गन उग कर मित्रन उग। यह विचार नहीं जाया कि मैं राज तिहासन पर बठन वाला हूँ मर कम कन्त्र ह, और एक कस वस्त्र ह?

महापुरुषों की प्रकृति सहज होती है। वे व्यक्ति के ब्राह्म वैभव के आधार पर उसका मूल्यांकन नहीं करते। वे आत्मदृष्टि में आत्मा का मूल्यांकन करते हैं। उनमें जगत् के पदार्थों का महत्त्व नहीं होता, जीव का जो स्वरूप है और जो सम्बन्ध है, उसका महत्त्व होता है। ऐसी भी मित्रता निभी है। वह सान्दीपन आश्रम आज भी याद दिलाता है। उज्जैन के निकट, मुझे मालूम है, जब गुरु विचक्षणश्री महाराज उज्जैन पधारे थे, उन्होंने रामनवमी का प्रवचन वही दिया था और सान्दीपन आश्रम में जा कर मुदामा और श्रीकृष्ण की मित्रता पर ही उनका प्रवचन हुआ था।

प्रतिदिन के सम्पर्क से मित्रता जैसे प्रगाढ बनती है, गलत आदमियों के प्रतिदिन सम्पर्क से जैसे जीवन में गलती आ जाती है, वैसे ही नित्यप्रति त्याग और वैराग्य की बात सुनने से मन में त्याग और वैराग्य के प्रति भावों में दृढता आती है। तात्पर्य यह कि हम चले कहीं से हैं कि प्रतिदिन मत्सग में क्यों जाना, सत्सग के वातावरण में क्यों आ कर बैठना? तो हरिभद्र मूरि ने 'प्रगम-रति प्रकरण' में लिखा है कि प्रतिदिन श्रवण करने से, प्रतिदिन त्याग और वैराग्य की बातें सुनने से, प्रतिदिन आत्मा की चर्चा सुनने से आत्मा से आत्मा के प्रति प्रियता के भाव जागते हैं। आत्मा में आत्मा के प्रति प्रियता के भाव जागेगे। प्रिय की बात सुनने में बड़ी लगन होती है। कोई सन्देश भी आ कर दे दे प्रिय व्यक्ति का तो सुनने में बड़ा मन लगता है। प्रिय व्यक्ति का यदि पत्र भी आये तो पोस्टमैन को देख कर ही मुख पर मुस्कराहट छा जाती है, क्योंकि कोई प्रिय है। जहाँ प्रिय है, वहाँ मन लगता ही है। सुनने में भी मन लगता है। बात करने में भी मन लगता है। देखने में भी मन लगता है। आने में भी मन लगता है। जाने में भी मन लगता है। मन कहीं लगता है, जहाँ प्रिय भाव हो। ज्ञानी कह रहे हैं कि अनन्त-काल से इस जीव के अपनी आत्मा के प्रति प्रिय भाव नहीं रहे और प्रिय भाव नहीं होने से आत्मा की बात अनसुनी यह जीव बराबर करता आया है।

शरीर के प्रति हमारे मन में प्रियता के भाव हैं, जब हमने एक बार यह जान लिया और मान लिया कि अग्नि में हाथ डालने से हाथ जल जाएगा, तब डालने की जरूरत महसूस नहीं करते। किसी का अनुभव सुन कर ही विश्वास जमता है हमारे मन में कि उसका हाथ जला है तो मेरा हाथ जलेगा-ही-जलेगा, इस तरह अनुभव के आधार पर हमारे मन में आस्था आ जाती है, विश्वास आ जाता है। वहाँ यह भाव नहीं आता कि हाथ को अग्नि में डाल कर ही देखें, क्योंकि शरीर के प्रति प्रियता का भाव है। वैसे ही सन्त, ज्ञानी, महात्मा, जिनकी आत्मा उन्नत है, मन में आत्मा के प्रति जिनके प्रियता के भाव हैं वे आत्मा की दुर्गति न हों, आत्मा तिर्यच गति में न जाए, आत्मा नरक गति में न जाए, आत्मा

जन्मी म जन्मा आत्मस्वरूप का समान होगा यत करत हैं क्याकि आत्मा के प्रति तब प्रियता के भाव हान ह सभी आत्मा का अधिक अनुपित कर्मन मान तपाय और प्रियता के प्रति उमक मन म प्रीति क भाव नहीं टात। यह इहें बाधक मानता है। आत्मशुद्धि म कपाय प्रवृत्ति बाधक प्रवृत्ति ह। यह म बाधक मान कर उमक यत्ना है। निमग यत्ना ह जस शरीर क तिम जगि का प्रत्येक सम्पक बाधक है कम ही आत्मा के तिम कपाय का सम्पक बाधक ह।

शुद्ध कर्मन शुद्ध नहीं रहत उनक माय प्रयन हाता ह। प्रयन र माय परिणाम आता ह। परिणाम कय मिलता है? जब आत्मा का हम प्रिय मति। कय कर्मन रगीन है या श्वत नया है महेगा है किन्तु उमके प्रति प्रति प्रियता क भाव जसे = ता हाना के दूमर तिम धुदण्य क तिम उम कर्म पहन कर बाहर नहीं जाता कर्मनिण नया आता ह कि यह शरारत हा चाणगा। मरा कपडा शरारत हा चाणगा। यह मन्त्रायम-यनान मा मा कपया क मूय का जा कर्मन है उम कर्मन क प्रति जा प्रियता का भाव ह उह प्रियता का भाव ही उम नयान रहा है। यह प्रियता का भाव ही उम मना कर ग्या क कि नहीं नती कन कर्मना का पन कर आ। मन तिमन। दूमर का दलि म भी क कर्मन मूयवान है ता परिणाम के मन्म ना कहत हैं कि क्या वेधकूपा कर क हा? क्या आज तिम है एतकामिनी कर्मन पहिन कर निकलन का? और कर्म पन भा ल ता गुनवा द दूमर क्याकि प्रियता का भाव ह। प्रियता का भाव हान म यह ना-यनान कपय का कर्मन भा व्यतिग कय करना नहीं चाहता। जरी आर ता क्या जा धारा क यणी म धन कर आया है उम कर्मन म ना तिम न लग इन भावा क कारण व्यकिन यहा यहा इधर उधर कलि डाकता है। कना कमान दयता ह कि बटू मा कुछ बिछा कर दठं क्याकि वह जा मरुच्छता है, वह कपय की जा स्वच्छता है मरुच्छता क प्रति ता उमक मन म प्रियता का भाव है वह कपय नहीं करता कि कपय म बाह मग लग जाए।

कुछ-कर व्यतिग ता ऐम तिम हागे जा कहत है कि महराज मरा किन्ती का कय कर्मन ह कि कपडा फट जाए भय ह। किन्तु उम पर कभी का कपय लग जाए होगा नहा हा मरता। भक्त उमी क्षण विचार आया कि जग इत आद का शरीर क प्रति कपया क प्रति ममय क थगा हा ममय आत्मा क प्रति जाण जाण और नाव मन म भा जाए कि मरी आत्मा का दाग न मने उमक परिणाम न आ ग्या ता किन्ता अच्छ हा? कपया की कविता आत्म म कय कर हम गुरत ता टार कर ता है किन्तु आत्मा की शिवनि कय ह कि ग्या है उमक प्रति कय जीव क मन म का भाव गरा जात। क्या नहीं जात? कपय जाण क प्रति कय भाव, कभी तिम भाव पना हा कय तिम।



उनकी कीमत उतनी भी नहीं है जितनी कि दो कौटी की है। दो कौटी की कीमत है दो तिनको की कीमत है, झाड़ू की कीमत है। उनको भी वहीं-वही सँभाल कर रखने के भाव है, किन्तु आत्मा को सँभालने के भाव अभी नहीं आये हैं। यह विचार नहीं आया कि क्रोध के भावों में तो मेरी आत्मा की दुर्गति हो जाएगी, अतः उनसे आत्मा को बचाऊँ। उस क्रोध-भाव को हटाऊँ, ऐसा विचार नहीं आता।

किसी व्यक्ति ने मुझे अपने अनुभव के आधार पर कहा कि महाराज, जिन रोज मैंने यह अनुभव किया कि मुझे क्रोध की प्रवृत्ति छोटनी है जब मेरी आस्था हो गयी, जब मेरा विश्वास हो गया, मेरा नकार हो गया तब मैंने पूरी तरह से कोशिश की कि बाधक परिस्थितियों में बचना, विपन्न वातावरण में बचना, उग्र प्रतिकूल क्षण से बचना, उम्र प्रकरण में बचना, उन निमित्तों में न जाना, और इतने पर भी यदि परिस्थिति आकर खड़ी हो जाए तो उस नमस्ते को छोड़ देना, घर से बाहर निकल जाना, बाणी का समय कर लेना, मीन हो जाना। मैंने कई प्रकार के नुस्खे अपनाये। उनमें आगे कहा कि महाराज, एक सरल-में-सरल प्रयोग मैंने किसी पुस्तक में पढ़ा। पढ़ा कि जैसे ही तीव्र क्रोध आये और उस समय यदि बोले बिना न रहा जाए (ऐसा हो नहीं सकता कि क्रोध तीव्र भी आ जाए कोई बोले भी नहीं। कभी कोई लाचारी हो, विवगता हो तो अलग बात है अन्यथा व्यक्ति मुँह खोले बिना रहता नहीं है।) तब ऐसे में मैंने एक प्रयोग किया, सरलतम प्रयोग, ऐसा प्रयोग जो कभी विफल नहीं होता। वैसे ही क्रोध तेज आया, मैं पूरा मुँह खोलता और मुँह खोल कर पानी भर लेता और गिड़ुला करता। अब बताइये कि यह कितना सरल नुस्खा है और कितना अच्छा नुस्खा है? कही जाना भी नहीं पड़ता। दो पैसे भी देने नहीं पड़ते। दो शब्द भी नहीं बोलने पड़ते। पानी तो इतना सहज-सुलभ है कि उसे जीवन ही कह दिया है। हर व्यक्ति के घर में पानी हर परिस्थिति में सुलभ है। अब यदि पानी को पी लिया जाए और मुँह को उससे पूरा भर लिया जाए जैसे गुब्बारे को हवा से भर देते हैं वैसे, तो फिर आवाज निकलेगी क्या? कैसे निकलेगी? नहीं निकलेगी। पर ऐसा करेगा। कौन? वहीं न, जिसे अपनी प्रकृति को बदलना है।

मुनने वाले हजारों-हजार हो सकते हैं, किन्तु उस नुस्खे को अमल में लाने वाले तो वे ही होंगे जिन्हें अपनी प्रकृति को बदलना है। प्रकृति को कौन बदलना चाहेगा, जिसका यह लक्ष्य बन जाएगा, जिसकी धारणा बन जाएगी, जिसमें विवेक आ जाएगा कि नहीं-नहीं मनुष्य-जीवन में मुझे अपनी आत्मा के प्रति 'प्रिय भाव' पैदा करना है। मुझे चेतन के प्रति ही 'प्रिय भाव' जगाना है। यदि चेतन के प्रति हमारे मन में प्रियता के भाव आ जाएँ और उन भावों में यदि घनत्व आ जाए तो 'बाहर में प्रियता' कही रह नहीं जाएगी। बाहर में प्रिय-अप्रिय के भाव समाप्त

हा जायेगा। क्या नहीं मुना नहीं पना उम मीरा का? जिम्मे ससार व प्रति प्रिय अप्रिय के भाव समाप्त हो गया थे? प्रियता का का भाव कहा था ता मात्र आकर्षण व प्रति। उमी छवि को निरखना, उसा छवि का रखना, उसा उमि ना स्मरण करना, और उमी छवि का अपन हृत्प्य निहायन पर बठाना। यह स्थिति हो गयी था उमको। नूनर भाव आयें ता आयें कम और आयें ता निकें कम? यदि उधर उधर सब व विकल्प आने ना लगे और जायका प्रभु स्मरण का आदत है और मनायाग-पुवक स्मरण करन = ता विकल्प टिकेंगे कहा? नने टिक सारत। पर यहाँ टिकान की बात हा वहाँ है? यथा ता उन भावा म नने नूने रहन का आदत इननी ज्यादा हो गया है कि जाव न दश्यमान जगन म अधिन महत्त्व किमी का दिया हा नहीं ह। दश्यमान जगन् म हा वह रचा-गचा है। उम ही पाना और उम ही खाना। उस ही पान म ह्य है उम हा खान में गम। उसा रूप म यह जीव अनतकाल म यात्रा करता जा रहा ह। दुन्य मान् जगन म सब प्रिय-अप्रिय भाव हैं।

पानी कहत हैं, यदि तुझे शाश्वत गति चाहिय, यदि महज रूप चाहिय ता अपनी जात्मा के प्रति प्रियता के भाव जगा। किम्के प्रति जगा? अपनी जात्मा के प्रति, और जगा प्रियता के भाव। क्या कभी जगेंगे? अभी ता बहुत मुश्किल है? काफी राम ता यह कहते ह कि विकल्प हा नगे आता कि आत्मा क्या है? यह विचार हा नहा आता कि आत्मा की शुद्धि करनी है। यह विचार हा नहीं आता कि जात्मा कमी का तबका सिद्धा हा जाएगी। यह विचार ही नहीं आता कि सब कुछ मही रह जाएगा। क्षण भर के लिए आ भी जाता है, परन्तु उम आन की कोई कीमत नहीं हाता। मन्त गार-धार वह रह हैं व पानी महात्मा जिन्होंने आत्म-गहन का अनुभव किया है, वह रण हैं कि जा आन = अपना आत्मा के स्मरण में है वह आनन्द और कहा है ही नहीं।

हमारा स्थिति क्या ह? हमारे लिए ता उनका कपता भा मुश्किल ह। 'गववर के पहाड का चाटा और नमव के पहाड की चाटी दाना पगस्पर मित। नमव व पहाड का चाटा कहते लगी-मर मुर का स्वा = मर जायना-जमा नू साथ भी नहा मवता।' 'गववर व पहाड का चीटा बाबा कि मर गववर व पहाड पर जमा स्वाद है उम स्वाद म जगा मधुरता ह आन = है वह पुन आ हा नहा मउता। यह कहते जगा जा-जा क्या बात करना है? (भौतिकता का जिनका रण ह नातिर पदार्थों व प्रति जिनका आकर्षण है, पौव ईद्रिया व विषया म ना जीव रचा-गचा ह वह कहता है इन जीवन म जा आन = ह अयम क्या रसा है? काफी राम कहते बात मिनत है कि महाराज आपन ना जायन का ममजा हा नहीं, और बिना ममस हा उम माड लिया। जिन्नी का जान =

ही नहीं लिया। ऐसे भी कहने वाले लोग हैं। काफी लोग तो रहते थे, महाराज यह उम्र क्या उन प्रकार के त्याग की है? भेने कहा नहीं भाई, मनुष्य की जिन्दगी त्याग करने की है, विद्वान् करने की मुख्य है, क्योंकि दृष्टि है। हर व्यक्ति की अपनी दृष्टि है।) जक्कर के पहाड की चोटी कहने लगी कि 'स्वाद का अनुभव तुझे नहीं आ सकता'। नमक के पहाड की चोटी कहने लगी, 'तुझे आनन्द नहीं आता। उमने कहा, चल तो नहीं मेरे यहाँ। मेरे साथ तो चल।' जब जक्कर के पहाड की चोटी को ले गयी नमक के पहाड वाली तब वह कहने लगी 'यहाँ रखा ही क्या है? यू-यू, सब कुछ चारा-ही-खारा है।' और नमक के पहाड वाली चोटी जो जक्कर के पहाड पर गयी तो कहने लगी 'मिरा तो मुँह ओर खराब हो गया' क्योंकि नमक की उली तो पहने ही मुँह में है और नमक मुँह में रहते उमने जक्कर का उपयोग किया है। ऐसा रिश्ता में क्या हुआ ?

हम सामारिक आकर्षण को, सामारिक/भौतिक पदार्थों के सुखों को छोड़ने की कल्पना नहीं करते और इन सब को पाते हुए आत्मसुख की बात करते हैं, ऐसी स्थिति में होगा क्या? क्योंकि जब तक उन चेतन के मन में चेतन के प्रति प्रियता के भाव नहीं जगेंगे, तब तक इनके मन में यह मन्त-वार्णा उतर जाए बहुत मुश्किल है। फिर भी हमें प्रयत्न करना है, प्रतिदिन त्याग और वैराग्य की बात सुननी है, इसलिए सुननी है कि हमारे मन में कहीं-न-कहीं यह बात गहरे में पैठ जाए, आपके लिए, मेरे लिए सबके लिए मैं यही मन्त-वार्णा करती हूँ।

(इन्दौर २७-१२-१९८१)

हम उपामय ता है शतगता व और प्रायना वरा है राग वा । हम वह याद्य पदाय पमन् नयी जिमम राग न आय, यह वम पमन् महा जिमसे राग पन महा वह धरती पमन् नयी व कुन्ती पमन् नयी परिवार का वह मदन्य पमन् नयी कि जिमम रागपना हान वा निमित्त नहा । राग भाव जितना ज्यादा म ज्यादा पैना हा उतना ही अपित्त म्भ्वराता ह । जब तर वाई व्म राग भाव वा मोघना भरता रटगा तत्र तत्र वट वातराग भाव वा और अपना आत्मा वा वम भाडेगा ? नही माण मवगा वमनिण नहा माण मवगा वह कयावि उम राग ही पमन् है राग वा हा वह ग्रहण करना चाहता है उमरा नष्टि म राा वा ही म्तिमा है, और राग वा हा मूय है व्मनिण वा मुम्भराता है । किना व मवान वा दधवर व म्भ्वराता है आर नरभा जिमाग म ले नेता ह कि यति म बनाऊंगा तो ऐमा मवान बनाऊंगा । गिमा मवान बनाऊंगा यह मन वा मौन है या शरीर की आवश्यकता । शरीर की आवश्यकता ता माय इतना है कि उस एक उमरा चाहिए या जितना मिन उतना कम है । वम एक वमर म भी व्यक्ति अपना जिन्ती गुजार मवता ह आगम म । एस व्यक्ति न मरान बना निया तीग वमर वा निवृण्ण ।

मवान प्रान म न्तना निरुम्पी न्तना राग न्तना आनन् नि जही वहा याही भी वमा महमूम हू नि तुटाओ । पान वमा महमूम हू नि फिर तुटाओ । जिजाइन पमन् महा आया हा फिर तुटाओ । ताणा गया और नया व्टे तून पत्वर जाणा गया । ताण-ताइन ताइन जाउन मन व अनुमूम जब मरान वन गया, तत्र वम पर मुम्भराह आर ज्याण जा गया । राा भाव ज्याण पुट ना गया । तुगा मन म ममा नहा रहा इमनिण वीम व नाद आ र है । जति मुय आर जतिटु प व्यक्ति अपन ह्मय म भी नही मवता यह मिन पन्त भी रहा है । जति घणा वा भी वीट विना न्ना र्हाण आर अनि टु ग्ग वा भा वीट विना नहा रहगा । वना न-वहा वन्ना राहगा किमा न विना ग मुनाना रागा विना न किमा वा वताता चाणा व्मनिण मवान निमाण व बाण मवान दणन म जो घणा उम हा र्णा थी उम वह सम्मान नहा मवा । उम आनन्द वा व्यक्त निर विना

रह नहीं सका वार-वार मोचा—दिखाऊँ, दिखाऊँ। मव लोगो को दिखाऊँ, क्योंकि जितनी वार कोई देखेगा उतनी वार प्रणमा करेगा और जितनी वार प्रणमा करेगा, उसे उतना ही आनन्द आयेगा।

किमका आनन्द आयेगा ? मकान का आनन्द आयेगा। मकान क्या है ? पाँच स्थावर से कलेवर मे ही तो वह बना है। पृथ्वी का, आग का, पानी का, वायु का, वनस्पति का। क्या लगा है मकान मे ? पाँच के सयोग ने ही मकान बना है। पाँच के सयोग से जो मकान बना है, उममे अनन्त-अनन्त जीवो की हिमा हुई है और हिमात्मक प्रवृत्ति मे जो मन की प्रमत्तता है, वह क्या है ? उमने बड़ा महोत्सव किया। महोत्सव कारके हज्जारो को खिलाया ओर खिलाने के बाद आनन्द मनाया।

वेचारा मेठ हे, पूरे दिन गद्दी पर बैठने वाला। गरीब को परिश्रम भी वदाशित नहीं, किन्तु आज खुर्शी के प्रसंग मे उमे थरावट महसूस नहीं हो रही है। ऊपर मे नीचे जो आ रहा हे उन्नी के साथ घूम रहा है मित्रो के साथ पून रहा है, परिवार के सदस्यो के साथ घूम रहा हे। एक-एक कमरा दिखा रहा है। कमरा दिखाते-दिखाते लेट्रिन-बाथरूम भी दिखा रहा है। मैंने टाङ्गे ऐसी लगायी ह, मैंने मारवल ऐमा लगाया है, मैंने डममे कोटा का स्टोन लगाया है, मैंने डममे वह लगाया है, मैंने इसमे वह लगाया है। दर्शन करा रहा है। ऊपर मे नीचे जितनी वार चक्कर काटता हे।

दिन-भर मव को दिखा कर, दर्शन करा के, खुर्शी मना कर सो गया। रात्रि मे फिर विचार कर रहा है कि अभी तो दिखाना और बाकी हे, क्यों बाकी है ? क्योंकि अभी तो यह बात केवल इसी गहर मे फैली हे। बात बहुत ज्यादा फैली नहीं है। फैलाना चाहता है, इसलिए उमने सोचा किसी घुमक्कड को पकडो। जो घुमक्कड होगा वह प्रणमा को ज्यादा-से-ज्यादा फैला देगा, क्योंकि जो ज्यादा भ्रमण करता हे वह अपने अनुभव कहता रहता है। अनुभव कहता रहता हे तो उम बात का प्रचार होता रहता है। उमने घुमक्कड मे भी एक नाघु को पकड लिया और कहा—'महाराज चलो, चलो आहार के लिए चलो। मेरे घर-आंगन पधारो। मेरे चौके को पवित्र करो। मेरे आहार को पवित्र करो।' मुनिराज खडे हो गये। आहार देना चाहता है, किन्तु दे नहीं रहा है। मुनि मोच रहे हे कि इतनी देर क्यों कर रहा है यह ? उन्होंने मकेत दिया कि आण्की डच्छा-पूर्ति मैंने कर दी, आ गया मैं—आप लाभ लीजिए। महाराज, थोडी-सी, प्रार्थना और हे थोडी-सी प्रार्थना और है। जरा उस कमरे मे पधारिये, उस कमरे मे पधारिये। मैं चाहता हूँ हर कमरे मे आपके पाँव पड जाएँ। हर कमरे मे आपके चरण पड जाएँ, मेरा घर पवित्र हो जाएगा। घर पवित्र हो जाएगा (यानी अहम् पुष्ट हो जाएगा)।

मुनिजी नहीं चाहते थे जाना। मुनिजी ने उसकी मुस्कराहट को भी समझा उसके कहने के लहजे के पीछे छिपे भावो को भी समझा। समझ कर भी कुछ

विशेष बात साच कर घूम गये। हर कमरा घूम कर वापिस चौके की तरफ आकर खड़े हो गये। मठ बार-बार कह रहा है—नाई कभी बत्ता दो कार्क कभी बत्ता दो, कार्क कभी बत्ता दो। आप जरा भी कभी बत्तायेंगे मैं तुरन्त ठीक करा लूंगा।

मुनि साचन तबे कि कितना बेवकूफ जादमा ह, कितना अज्ञानी है ? उसका अमा इतना भी मालूम नहीं ह कि श्रावक की भूमिका क्या और माधव का भूमिका क्या माधु का भूमिका क्या ? एक श्रावक भी आरम्भ ममारम्भ की क्रिया स जयधिय खुशा अनुभव नहा करता, यह श्रावक का लक्षण है। श्रावक श्रावक का भूमिका स रहत हुए आरम्भ-ममारम्भ का क्रिया करा हुए मन स एन प्रकार व भाव रखना ह कि ह प्रमा, कत्र वह त्ति आय कि मैं इम ममार स छट गाऊ ? कत्र वह क्षण आ जाए कि मरा आत्मा स पुरपाय जगत ह ? कत्र मरा सामान्य ह ? कत्र मैं इन पाचा इन्द्रिया के विषया का निवृत्ति के लिए आत्मसाधना स लग जाऊँ ? कब धय त्ति हागा कह जब मरा आत्र ठहरेंगा ता रातराग मुद्रा दय कर मरा जिह्वा गायगा ता वानराग व गुण गायगा मर वान श्रवण करेंग ता वातराग का महिमा श्रवण करेंग। एमस अधिन मरा इन्द्रिया के विषया की काइ स्थिति मेर मन स नश हागा।

श्रावक व मनारय हात हैं। श्रावक की भूमिका हाता है। श्रावक श्रावक की भूमिका स रहत हुए भल ही गहस्थ जात्रन नहीं छाटता, उसका मन का बघन हा या परिस्थिति का बघन हा या ज्य कान हा जा भी हा किन्तु रहत हुए भा वह अपन अगत बलम का चित्तन बार-बार करता है। ऐमा दिन कत्र आयगा, एमा अवसर कत्र आयगा कि मैं मनुष्य जीवन स एन मार प्रपचा स मुचित पा कर आत्म-साधन स लग जाऊँगा। बाहर स उपयोग हटा कर अतर स उपयोग का जात्र लूगा आर पांच इन्द्रिया की दिना का निवृत्ति स आत्मा का आत्म-साधना स लगा दूगा।

यह श्रावक की भूमिका है। ऐसा स्थिति स श्रावक, श्रावक व कतव्या का पाना करन हुए भी स्वल्प बघ करता है।

श्रावक के क्या कतव्य है गानारिक क्रियाण करन हुए ? क्या अन्य बघ हाता ह उम ? यह आमसत नहा हाता। उम रम नहा जाता। उम गानारिक क्रियाजा में प्रहमान नहा जाता। राग हान हुए भी उस राग का राग नहीं हाता। उम भूमिका स रहत हुए भा वह यह साचता है कि मुयें करना पता ह इमलिए करता हूँ किन्तु करना ह ऐस भाव उम नहा आत।

मुनि जा श्रावक की भूमिका स ऊपर है साचन तबे कि यह श्रावक है किन्तु श्रावक व स्वरूप का भाव इन नहा है और श्रावक-धम का आचरण भी

इसमें नहीं है, इसलिए मुनि से प्रार्थना कर रहा है कि 'महाराज प्रशंसा करो प्रशंसा करो, प्रशंसा करो'। मन्त ने कहा—'मुझे तो कुछ भी नहीं कहना है'। 'नहीं महाराज, आप कुछ बता ही दो'। 'अरे! क्या बता दूँ? कैसे बता दूँ?' मुझे कुछ बता दो। कोई कमी रह गयी हो तो मैं तुरन्त सुधरा दूँगा। ठीक करा दूँगा। मुझे बता दो।' मन्त ने बहुत मोक्ष-ममत्त कर कहा—'मुझे तो ऐसा लगता है कि तुमने जो कुछ भी किया है, तुम्हारी दृष्टि से बहुत अच्छा किया है, तुम्हारी दृष्टि से तुमने जिन्दगी की कमाई को भी, उस ईंट, चूने, पत्थर में जोड़ दिया है, जिसकी कल्पना में भी मुस्करा रहे थे, जिसे बना कर भी मुस्करा रहे हो और जिसे दिखा कर भी मुस्करा रहे हो। मुझे ऐसा लगता है, कि यह जो दृश्यमान मकान तुम्हारा है और जिसमें तुम्हारी दृष्टि उलझी हुई है, कभी एक दिन ऐसा आयेगा जब तुम्हें यहाँ से जाना पड़ेगा। मेरी दृष्टि में यदि भूल कोई रही है तो वन एक ही है कि तुमने मकान तो बनाया है, किन्तु दरवाजा क्यों बनाया? यदि दरवाजा तुम नहीं बनाते तो अधिक अच्छा होता? तुम्हें कहीं जाना नहीं पड़ता।' मेठ ने कहा—'यह कैसे हो सकता है? दरवाजा तो रखना ही पड़ता है, नहीं तो आता कैसे, जाता कैसे, कारीगर कैसे आते, कैसे नामान आता, और कैसे मकान बनता?' 'जब जाना निश्चित है तो उसे देख कर मुस्कराना क्या है?'—मन्त ने कहा। तुम जरा विचार करो कि तुम मुझसे प्रशंसा कराना चाहते हो। किसकी प्रशंसा करूँ? पाँच भूतों के पिण्ड से बने इस मकान की। नामालूम कितने जीवों की, वृक्षों की भी, हिमा हुई है, कितने स्थावर जीवों की हिमा हुई है। हिमात्मक प्रवृत्ति का अनुमोदन मुनि की भूमिका में रह कर यदि कोई करता है तो मुनित्व का उसे परिचय नहीं है। मुनि-पद में वह है, किन्तु मुनि-पद की महिमा का उसे बोध नहीं है। मुनित्व उसमें नहीं है और मुनि के आचरण का उसे कोई लक्ष्य नहीं है अन्यथा जीभ चल ही नहीं सकती, कैसे चलेगी?'

मन्त ने समझाने का प्रयत्न किया—'अरे भाई, जरा विचार तो कर। तुने किसको सजाया और किसलिए सजाया? किसको मजाया? क्योंकि घुमाते-घुमाते वह ड्रॉइंगरूम (बैठकखाने) में उन्हे ले आया और वहाँ खड़ा कर दिया। कहीं-कहीं तो ड्रॉइंगरूम में ऐसी व्यवस्था है कि वहाँ वह स्वयं चौबीस घंटों में एक बार भी पाँव नहीं रखता। केवल कोई मेहमान जाये तभी उसका ताला खुलता है या सफाई के लिए ताला खुलता है। उसे देख-देख वह मुस्कराता है। ज्यादा-से-ज्यादा समय देता है उसे व्यवस्थित रखने में। भगवान् के दर्शन करने में तो मन नहीं टिकता, पर ड्रॉइंगरूम को देखने में मन खूब टिकता है। दम-पन्द्रह मिनिटों तक बार-बार देखता रहता है, मुस्कराता रहता है कि इसको कैसे सजाऊँ? इस चीज को





राग पुष्ट क्यों नहीं होता कि जिह्वा इन्द्रिय को मन्तुष्टि नहीं मिलती। जिह्वा इन्द्रिय को मन्तुष्टि मिले इसमें पहले आँख नकार देती है कि उसे रग-रूप ही पसन्द नहीं आया। पेट तो भर गया। यदि किमी के यहाँ ऐसा भोजन करना पड़े कि जिसमें मिर्च-ममाले और अधिक तेल-घी का पुष्ट न हो। यदि उम माग की रीनक न हो और व्यक्ति रोटी खा कर उठ गया तो क्या कहता है—'अजी पेट भरने को भर लिया, पर तृप्ति नहीं हुई'।

अध्यात्म, या ज्ञान-विज्ञान की बातें करना आसान है, किन्तु हम टटोले अपनी मनोभूमि को कि राग के साधनों में राग पुष्ट हो, ऐसे पदार्थों में, ऐसे निमित्तों में, ऐसे सयोगों में हमें कितनी खुशी होती है। जहाँ राग को पुष्टि न मिले, वहाँ तो कहता है ले जाओ, ले जाओ, नहीं चाहिये, नहीं चाहिये। खाने के जितने पदार्थ हैं, जिन पदार्थों में हमारा राग पुष्ट होता है, उनको हम स्वीकारते हैं जिन पदार्थों के प्रति हमारा महत्त्व नहीं है, उन्हें हम नकार देते हैं।

एक थाली में चार चीजे हैं। दो को हम पसन्द करते हैं, दो को पसन्द नहीं करते। यदि उनमें स्वास्थ्य की दृष्टि है या त्याग की दृष्टि है तो बात अलग है। स्वास्थ्य की दृष्टि से यदि किसी पदार्थ के लिए कोई व्यक्ति मना करता है तो यह उसकी आवश्यकता है, यह उनकी अनिवार्य भूमिका है। गारौरिक परिस्थिति है। उसके त्याग है इसलिए वह मना करता है तो भी बात समझ में आती है, किन्तु जब कोई न शारीरिक दृष्टि से मना करता है, न त्याग-दृष्टि में मना करता है, न त्याग-दृष्टि से पदार्थ को निकालता है बल्कि इसलिए निकालता है कि मुझे वह चीज पसन्द नहीं है, पसन्द नहीं है अर्थात् उसकी जिह्वा को उममें तृप्ति नहीं है तो फिर उसका यह फैसला चिन्ता का विषय है।

जिनमें राग न आये, ऐसे पदार्थों को तो यह जीव पसन्द ही नहीं करता और वीतराग धर्म की बातें खूब बढ-चढकर करता है। कितना विरोध है? जिन पदार्थों में इसके राग को पुष्टि नहीं मिलती उन्हें यह स्वीकारता ही नहीं है। मकान इसीलिए तुडवा देता है। जमीन पहले से बनी है, और उम पर इसका कोई नियन्त्रण नहीं है, नहीं तो यह उम भी तुडवा कर फिर में बनवाता।

वीतरागता की चर्चा हम कितनी ही करें, किन्तु क्या हमारा मन जरा भी सँभल पाया है, या सँभलने की तैयारी इसकी कुछ बनी है? जानी कहते हैं कि 'जो सतर्क रहता है, जो सावधान रहता है, जो अप्रमत्त और जागृत रहता है वही यह विचार करता है कि मैं क्रोध की भाषा न बोल बैठूँ, मान की भाषा न बोल जाऊँ, माया की भाषा मेरी जिह्वा पर न आ जाए, ईर्ष्या की भाषा न बोल जाऊँ।

इस तरह जो सावधान/भक्त रहता है हाथियार/चीरम चलता है पानी उस ही 'संभारना' कहते हैं क्योंकि इस भावजगत् में सब भाव उपस्थित न मात्रा है जिन्में म एक न एक हमें दयाय रहता है। जब हर समय कर्म-न-कर्म भाव हमें आये रहता है तो निश्चय यह आत्मा विभाव में ही रहता है इसलिए पानी कहते हैं कि 'मत्तक बन रहना'। किन्तु मत्तक बन कहा? पत्त कमान में ममान बनान में ममान खरीदने में कहा? बम पम का काइ चीज भी यदि हमें लनी जाया तो हम दस टुका घूमेंगे, इसमें खबरदार है, किसी का मह का दन में मत्तक है किसी का नुकसान पहुँचान में मत्तक है। मत्तक कई जगह है। अष्टे बम्प पहिन कर बटन में मत्तक है। ताखा की ज्वररा पहिनन में हमारा मन मत्तक है।

किसी एक रहते न मुख्य कहा में न घण्टे लगाता बाजार घूमो, लेकिन एक मिनट का भी मरा नजर अपना हीर का चूडिया पर न नहा हटा मनी। कितना चीरम है यह बहिन। क्या है? क्या महत्व है इस सावधाना का? क्या मुख्य है 'न मत्तका का? ममज में जा रहा है? मिय हाग का दा चडियाँ। बीम हागर मया की दा चूडिया। यदि इन दा म म का' मय भा गिरी या गुमी ता? बम 'मानिण यह मत्तकता है। जार को बजह नहा है। यह बहिन सब रख रहा है मय का रख रही है मय म वाने कर रहा है 'यामी' रहा है किन्तु तजर उनकी चनिया पर है।

पानी क्या कह रहे हैं व कुछ आग हा कह रहे हैं—बाहर में उपयोग है। भीतर का आर मुड। गत है बाहर में मन । बाव व उम भीतर जानना। उनका यह प्रस्ताव अल्पग लगता है। ममन में हा नहीं जाता कि यह बाहर का उपयोग जार 'भीतर का उपयोग क्या प्रता है? तास्तर में पमचन का कर्म भूमिका हा नया है अत यह बात ममन में ही नया आता कि राग का आधिर ताडना वहाँ में है और उम जानना वहाँ/किमस है?

वीतरागाय नम । वातराग धर्म निग्रह धर्म मय प्ररूपित धर्म य मय परम्परा न हम पमन लिय है आर हमारा स्मृति न 'न' मय का टार न बडा विद्या है 'मर्माण वमन'—हम किमक उपायक है? वातराग व। पर दनमान में यदि मुन काटे पूछ ता एग लगता है कि 'मय राग व उपायक है क्याकि जिमरा पम करे, हम उमा न उपायक है। उपायक किम अथ मयि उमा का चहते हैं, उसी व निवट बडा बाहन है उमी न बोना चाहते न उन्हा पनायी का खाग चाहते है उहा वमना का धरानना चाहते न उमा मवान का बनाना चाहते है उमी गहर में घूमना चाहते है और उमी वर्पात म जाना

चाहते हैं, कहाँ जाना चाहते हैं? जहाँ हमारा राग पुष्ट होता है, जहाँ राग पुष्ट होता है, उमे ही हम पमन्द करते, और जिमको पमन्द करते ह, उमी की उपासना करते ह।

वात बडी वेढव है कि 'उपासना राग की और नाम वातराग का'। वात-राग का उपासक तो राग-भाव को घटाने की उपासना करेगा और राग-भाव को घटाने की उपासना करने के लिए राग-भाव बढे उन निमित्तों को, पदार्थों को, मयोगो को, मम्बन्धों को छोडने का प्रयत्न करेगा, किन्तु यहाँ तो टूट कर भी नहीं टूटते ओर छूट कर भी नहीं छूटते। छूट कर भी नहीं छूटते? छूट तो गये हैं। यहाँ जितने लोग बैठे ह, सब अपना-अपना मकान छोड कर ही यहाँ आये हैं। कोई मकान मिर पर उठा कर नहीं लाया है। मकान का वियोग है, या नहीं उन समय? प्रत्यक्ष सयोग कहाँ है? मकान है, किन्तु मकान मे आप नहीं हैं उस समय। दुकान है, किन्तु दुकान मे आप नहीं है उस समय। परिवार है, किन्तु परिवार के बीच भी नहीं है उस समय। घर मे नामालूम कितना मोना, चाँदी, ताँबा, पीतल, नामानूम कितनी-कितनी धातुएँ ह, किन्तु उन सब का खुद मयोग ह क्या? नहीं है। कहाँ बैठे हैं अभी? बाहर से हम कहाँ बैठे हैं? मार्केट मे बैठे हैं, महावीर चाँक मे बैठे हैं, पण्डाल मे बैठे हैं, दरी पर बैठे हैं, किन्तु मन मे किन्हे बैठा रखा है? मन मे कौन-कौन बैठे हैं, दुकान बैठी है, मकान बैठा है, परिवार बैठा है, धन बैठा है, सम्पत्ति बैठी है। अन्दर सब बैठे हैं। बाहर कोई दिखायी नहीं दे रहा है। अन्तरग मे सब कुछ है। उपयोग मे सब कुछ है। लक्ष्य मे सब कुछ है। बाहर बहुत कम है। बाहर कुछ नहीं है, किन्तु भीतर बहुत है, सब कुछ है। धारणा मे सब कुछ है। किसी चीज को भी भूल कर यहाँ बैठे हुए हममे यदि कोई कह दे कि कमरे मे अमुक चीज कहाँ रखी है, तो उसी समय क्षण-भर मे उपयोग बढता देगा कि वहाँ रखी है, क्योंकि वे यहाँ बैठे है सब। कही गये नहीं है।

एक बार एक राजा ने किसी मन्त से निवेदन किया कि 'आप मेरे यहाँ आये। मैं आपकी भक्ति करना चाहता हूँ। मुझे एक प्रश्न पूछना है।' उसने सोचा प्रश्न पूछने के लिए जाने का अवकाश मिले-न-मिले, तो फिर घर पर ही आमन्त्रण दे दूँ और आमन्त्रण के प्रसंग मे प्रश्न भी पूछ लूँ। मन्त से कहा कि तुम मेरे राज दरवार मे चलो और वहाँ चल कर मुझे कुछ लाभ दो। आहार का लाभ भी देना और सत्सग का लाभ भी। मन्त पहुँच गये। भोजन भी कर लिया। जो भोजन कराया, वही किया। फिर मेजवान ने कहा कि यही एक उपवन के किमी मकान मे आप रह जाइये। वहाँ विश्राम कर लीजिये, किन्तु इस बीच भी राजा को प्रश्न पूछने का अवकाश नहीं मिला। दूसरे दिन फिर प्रार्थना की कि

राज जज मा यन्ती तिरजिय । नामर त्तिन मी जि आज भा यही तिरजिय । तीन त्तिन व चात्र जज मत न कही वि आता ता हम निश्चिन जागेंगे । तत्र वह माचन नगा वि प्रश्न पूछन व । ता मुन अत्राण ही नही मित्त । हम मा राजा व अवराण-जना अवराण नगा है । प्रश्न पूछन वा अवराण नही ह ? अपन-आप म पूछन वा अवराण नगा है जगत् म पूछन वा अवराण है । जगत वा तामन वा अत्राण ह । जगत् वा पुरा बहन वा अवराण है । जगत् वा अच्छा बहन वा अवराण है । जगत व रग रूप की परीसा करन वा अवराण है । किमी व गम्य-गों में बसा बर ह यह बतान वा अवराण ह । पर अपन लिए अत्राण नही है कि स्वय स्वय म बात वर । किम रूप म बरे ? में कीन ? ? वही म आया हूं ? मरा वास्तविय स्वल्प क्या ह ? इन जातमानुसधान व लिए अत्राण नही है समय नहा ह ।

एक दिन व कितन घण्ट ? चौबाम । एक घण्ट वा मिनित्त कितना ? माठ । चौबीस घण्टा व मिनित्त कितन हु ? एत हुआ चार मा चानाम । कितन मिनित्त हुए एत त्तिन व ? कितना समय है हमार पाम ? एक मिनित्त बर पूरा हाता ह ? म यहीं म मावेंट गेट पर पहुँचना ह तत्र बहा एक मिनित्त पूरा हाता है यानी यहीं म-वही पहुँच जाऊँ और वहाँ म उन गला वा भा पार कर दू रतनी दूर पहुँच जाऊ तत्र वही एक मिनित्त पूरा हागा । यह ध्यान म समनिए आया वि मवा आठ बज म मर मन म हलाल हा जाती ह वि बरा जना बरा किम लिए वि एक आत्म वन गया है कि ठीक माडे आठ बज म दो मिनित्त पहुँच पहुँचना । ता न मिनित्त पहुँच पहुँचन व बकर म बर वार पाँच मिनित्त पहुँच म्यान छाह रता ह । म्यान छाह रता हू और समन म पूछता हूं कि अभी ता पाँच हा मिनित्त हुए है यहीं तत्र आन म । जब यहीं तत्र आन म छु-भा मिनित्त लगन ह ता मावेंट गेट पर पहुँचन म कितना बरन लगता ?

कितना समय है हमार पाम !! एक दिन १८६० मिनित्त, २६ घटे पूरा एक दिन और पूरी गर रात । कितना जग्गा बान है हमारी मरती म । यदि पूरा जग्गा वा हिमाव नगायें, कितन बर हम त्तिना बर ? उनना वा हिमाव नगायें ता ज्योग कि कितना पुराण हमार पाम वा और कितनी आग हमार पाम यह ज्ञानी ? क्या स्तन शपताल म एता वाद विबल हमार मन म जाया वि 'मैं जान हूँ' वहाँ म आया हूँ मरा वास्तविय स्वल्प क्या है ? क्या मैं जगार हूँ ? क्या मुनिष का उदर म ता मैं हूँ क्या अमरी मैं हूँ या समय मिय गुठ गीर हूँ ?

मत्र यह है कि मैं कर्म मे आया हूँ ? वहाँ जाऊँ ? तेद प्राना व लिए दग बाव के पाम ता अत्राण ही त्ता है । कितना आश्चर्यचक है कि यह उलता

हुआ है इस या उम में ।। विकल्प-ग्रस्त यह, कभी इसके दुःख को याद करता है, कभी उसके दुःख की फिक्र करता है, कभी इसके आराम की बात मोचता है तो कभी उसके आराम की, कभी इसकी याद करता है, कभी उसकी । कभी मोचता है उनका चेहरा उदास था । आज वे नाराज दिखाई दे रहे हैं । आज मैंने उनकी क्षति-पूर्ति नहीं की । आज वे मुझसे नाराज हो जाएँगे क्योंकि कपड़े धुल कर नहीं आ सके । आज धोबी नहीं आया । कल उसे धमकाना होगा । कभी सोचता है—आज सर्जी नहीं बनी । आज आटा पिम कर नहीं आया है । आज लकड़ी खत्म हो गयी । आज घी मँगाना है । आज तेल मँगाना है । आज रात सो नहीं सका हूँ । आज सोने में देर हुई है । कितने विकल्प घेरते हैं हमें ।। और भी, जैसे आज मुझे उठने में देर हो गयी, आज मुझे उनमें मिलने जाना था, आज मेरी पेशी थी । एक ही दिन में नामालूम कितने विकल्प इस प्राणी को आते हैं—कभी परिवार के, कभी समाज के, कभी राष्ट्र के, कभी अखबार के, कभी पड़ोसी के, कभी घर के, कभी आँगन के, कभी छत के, कभी नल के विल के, कभी विजली के विल के । ऐसे नारे विकल्प/नारे विचार आते हैं इस जीव को । यह जगत् से जुड़ता है, वस्तुओं से जुड़ता है, सत्ता-सम्पत्ति से जुड़ता है, किन्तु 'मैं कौन हूँ' यह विकल्प क्या कभी परिक्रमा देता है उसके इर्द-गिर्द ? यह विचार आता है क्या कभी ? और यदि यह विकल्प नहीं आया तो क्या वह मनुष्य-जन्म पा कर करने योग्य कुछ कर पायेगा ? करने की बात दूर, अभी तो विकल्प आने की बात है । नहीं आ रहा है । कौन-सा विकल्प नहीं आ रहा है ? 'मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? क्या स्वरूप है मेरा ?' (हूँ कौन छँ ? क्या थी थक्यो ? शूँ स्वरूप छे म्हारो खरो ?—देवचन्द्र) यह विकल्प नहीं आ रहा है ।

वर्तमान में मेरा जिनसे सम्पर्क है, जिनसे सम्बन्ध है, जिन पाँच इन्द्रियों के विषयों में मेरी आत्मा रमी हुई है, वह सब बन्धन है । ममत्व का, राग का द्वेष का बन्धन है । कैसा बन्धन है यह ? यह त्याग करने योग्य है, खोने योग्य बन्धन है ?

जब तक यह भाव नहीं आ रहे हैं तब तक देवचन्द्रजी महाराज के भावों के अनुरूप भाषा कैसे बोलेगा ? कौन-सी भाषा ? प्रीति अनन्ती पर थकी जे तोड़े होते जोड़े एह । पर को पर समझा नहीं, निज को निज समझा नहीं । जीव को जीव नहीं समझा, अजीव को अजीव नहीं समझा, सत्य को सत्य नहीं समझा और असत्य को असत्य नहीं समझा, ऐसी स्थिति में यह करेगा क्या ? क्या विवेक आयेगा, क्या सोचेगा, क्या समझेगा, क्योंकि अभी तो अभेद बुद्धि है । अभेद बुद्धि किसमें है ? शरीर में अभेद बुद्धि है । शरीर से जो सम्बन्धित है, उनमें अभेद बुद्धि है । मैं और मेरे विचार उन्हीं के बीच है । अपने-आप से प्रश्न करे, अपने-आप से पूछे । इसके लिए अवकाश नहीं है । अवकाश क्यों नहीं है ? दिमाग में यह बात आयी ही नहीं है ।

राजा न बुला ता लिया मत्त का पूछन व निए अत्रकाग नही है। आप माचेंय राजा न आमत्रण भी द दिया जार आमत्रण दन व बाद पूछन का अत्रकाग भी उम नहा मिला। हौं आपका और हूम भा ता नही मिना ह काइ नया बात है इमम वि राजा का नहा मिना। यति मिना ह ता उमन कितनी बार प्रश्न किया अपना आत्मा स ? उम राजा न साचा वि मुय ममय ता नहा मिना और अत्र मत्त नही रहेंगे ता वम म-मम जत्र य जा रह ह ता इनें छात्र आऊं। जस हा यह छाडन गया मत्त न नही कहा कि तुम यामिम ताया, बहुत दूर आ गय हा। मत्त आगे बढ़ जा रह ह राजा उनक पाछे चला जा रहा है। मन म बार-बार साच रहा है कि व नच कह न कि 'चन जाआ राजा नच कह दें कि चले जाआ गजा। थोडी व्यावहारिकता या थोडा आत्मीयता या राजा म एमलिए उमन माचा रि जब तर मत्त वत्त न दें वि चीट जाआ तर तक नाटूगा नही। लौटन के भाव ता आ रहे हैं किन्तु नाट यह नही रहा है। मन ता चीट रहा है किन्तु शरार नहा लौट रहा है। चलता जा रहा है। इमा निए मन भी यह चाहता है कि जब तर सात न बहें क्या लौटू ? चनत चनत बहुत तर हा गया। इम बीच राजा न प्रश्न भी कर लिया। कर लिया कि बताये कृपया कि आप म और मुझम अन्तर क्या है ? राजा न साचा कि अन्तर ता जान लूगा किन्तु चन बहुत चुका हूँ। गहर रा रास्ता गूट गया है जगन शाडिया व निरट पहुच गया हूँ। उमका मन घबराया। पीछ दष्टि डाना तर दया वि मव कुछ बहुत दूर रह गया है बहुत दूर रह गया है। कहन गगा-मत्त बस अत्र मैं जाता ह क्याकि मत्र कुछ बहुत पीछ छूट गया है। क्या पाछ छट गया है गत्र न सहज ही पूछा। 'अत्र मन्त आपका क्या पता ? मरा आबाम पाछे छूट गया मरी महाराजिणी पीछे रह गया मरा राजकाय बाराबार पीछ रह गया। और-ता-आर अपना सीमा छोट कर ही मैं बाहर आ गया हू।

मन्त न कहा, तुमन मुझम कुछ ममय पदन प्रश्न किया या वि तुमम और मुयम अन्तर क्या है ? अत्र कहा है कि तुम जगन म हा पर मन तुम्हाग भवन म है और मैं भवन म या पर मन मरा भवन म नहा या क्या ' बाहर हा कर भी उपवास तुम्हारा कनी है ? कहा है जहाँ मव कुछ तुम छोट आप हा। उपवास कही है। बाहर बाहर उपवास है। जाता क्या कह रह है-बाहर म उपवास टाआ-आर उम भातर की धार माहा। अत्र मरा बाहर ओर भातर व म्यम्य का गही ममागा, तर एन शरीर म आत्मवृद्धि टा जागी एव एन पर - उपवास का कउ तादगा और वन आत्मा म आत्मा का उपवास तादगा। प्रश्न काउ कहा है यदि हूम चित्त करे ता क्याकि अक्षयर यह म्पूत्र सावन का है हुननकर।

-१९०२ १ वि०२२ १९०१ □ □

एक समय जब किसी मन्त्र से किसी व्यक्ति ने सत्य की चर्चा सुनी तब मुनने के उन स्वर्ण-क्षणों में वह बहुत कुछ भाववान हुआ, जागा और भावचेत हुआ। उसके श्रवण-क्षण चिन्तन में बदल गये और चिन्तन क्रमशः मनन में। मनन ने मन को एक स्वस्थ करवट दी तो मन्त्र के चरणों में नमस्कार करने हुए उसने कहा— महाराज, आज तक मैंने जितना समय व्यतीत किया, मेरी जिन्दगी के जितने वर्ष बीते, उनमें मैंने कभी इस दृष्टि से एक शब्द भी सुना ही, उस पर कोई विचार किया ही, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। धुन तो रही, किन्तु धुन में कभी कोई अध्यात्म दृष्टि नहीं आयी। जिन्होंने आत्मा के स्वरूप को, शुद्धात्म स्वरूप को प्राप्त किया है, उनके प्रति भी मेरे मन में कोई बहुमान नहीं आया। मेरे मन में तो सदैव एक ही धुन चलती रही कि ज्यादा-से-ज्यादा धन कैसे कमाऊँ?—‘भज कलदारम्, भज कलदारम्, भज कलदारम्’ की धुन चलती रही और जिन्होंने अपने आपको इन धुन में आगे बढ़ाया, उठाया उनके प्रति भी मेरी दृष्टि बराबर लगी रही। मैंने ऐसे ही व्यक्तियों को महत्त्वपूर्ण माना, उन्हीं को बड़ा समझा। मेरी नजर में वे ही अपने-आप में बहुत आगे बने रहे। जितना समय मेरा व्यतीत हो गया, अब मुझे लगता है कि मैंने उसे बिना समझे अकारण खो दिया है।

सन्त ने जवाब दिया—‘जितना समय गया, जैसे भी गया, गया। गये के गीत यदि गायेगा तो उससे भला क्या लाभ होगा? गया समय तो कभी हाथ आ नहीं सकता और जिस-जिस समय में हमारी जो-जैसी प्रवृत्ति रही है, उसे ले कर अब इतना ही हो सकता है कि हम उन बुरे कामों का त्याग कर दें, उन प्रसंगों का स्मरण कर उन पर पश्चात्ताप करें, भीगी आँखों से प्रायश्चित्त करें, तो ही पूर्व के बाँधे हुए प्रगाढ़ कर्म शिथिल पड़ सकते हैं। सक्रमण हो सकता है।

सन्त ने आगे कहा—‘जो समय बीत गया, उसके गीत गाने से कोई लाभ नहीं। यदि समझ आयी है, विवेक आया है और तुमने अपनी जिन्दगी के अर्थ को समझा है और

माना है कि अब तब का समय तो व्यय गया अब साक्षात् कि वह मायका क्या है ? व्यय गया सा गया । उम्र अतहीनता में न जाये । अब याजना कर विजा समय हमारी मुठ्ठा है वह विजा न जाए । गलत ढंग से जिन्दगी जान न न जाए । वह रिमा था ठावर जगान न न जाए । वह विमी था दिन दुखान न न जाए । वह विभा था आँखा न आँसू लान न न जाए । वह किमा का घराहूँ दवान न न जाए । वह विसी न अधिवाग छानन न न जाए । वह विसी भी शक्ति वा बलती हुई दख कर जलन न न जाए । जो समय गया सा गया विजु जा समय सामन ह उमरा कम प्रकार व्यतीत करा कि उम समय न मायकता बन । मायकता शक्ति न नहा हागी मायकता बवल मायन न भा नही हागी । मायकता बवल गात गान न भा नही हागी । जहाँ मन करवट नगा वहाँ स हमारी मायकता का यात्रा का आरम्भ हागा ।

मन्त न कहा— जिनामु यदि रुहा न जिनामा पदा दृइ ह ता चन पडा । जिना बलन न आर जिना बलन क लिए अपन भाव बदल दा । भाव बलन क लिए अपन माचन का ढग बलन दा समय का ढग बलन दा । लक्षि म परिवतन कर दा । आर अब दष्टि परिवर्तित हा जाएगी विचारा म परिवतन हा जाणगा ता सोचन-समयन का ढग भी बदल जाणगा । माचन-समयन का ढग बलन जाएगा ता निश्चित रूप से जिम प्रकार अम। तब विचार बनन थ अमी तब जगान म जितना धुन था, वमान के ढग म जितना गनत प्रतियोगी थी उन मय न तुम अपन-आप का वचा नागे ।

यह कहने जगा प्रमा आपका समय ना गत्य है । आपका समय ता ठीक है जेकिन मुझे ता अगता है वि मरा उम आ पचास के निरट है । मरा यह समय व्यय र्चित गया । पचास वय आ मैं प्रारम्भ कर रहा हूँ । सावता है, इतन समय म मैं वितना कर चुका हाता । इतन समय म वितना कर रता, यह साचना भी अपन-आप का मुनावा देना है । बर गया रता, जबकि समय हा हाय न नहा है । मन्त न कहा— मुज एमा जगता है अब भानू करन का बेधन गीत हा गायगा, विजु करा के भाव नही आयेंग । यदि नू करन का गीत गाता रहा, 'बल-बल' करता रहा ता कुछ हा नहा 'गायगा । अधिवाग व्यक्तिया थी वमठारा हाता है कि विसी भी शुभ प्रवृत्ति था, विमी भी अच्छा प्रवृत्ति का करन क लिए डाका मा ता करता है कि बन इस चानू कर दोगे दया-गामादिव चानू करेग, नजवागजी थी पचदान चालू करेगे दान देना तालू करेगे, पूरा करना तालू कर दग एम विचार आत है, विजु ऐ। काम कर टालू यह विचार बढ़त एम मागा ना आत हैं ।

य व्यक्तित्व अच्छे कार्यों का यथा बन पर तहा टाहता, जिनका विषय जागरण है । बल न व्यक्तित्वो का स्थिति ता यह हाती है कि बल बन करत काम आ जगता है, विजु बन यथा आत म तहा बलता । बन क गीत हा मचते हैं, बन हा हा मचता है विजु इनम उमरा जीवन नही बा रचता । जीना बना यथा ता करान-नही स



प्रारम्भ करता है, शुरुआत करता है। जब शुरुआत करता है तो उसे उमका लाभ मिल जाता है।

सन्त ने कहा—'वीती ताहि विमारि दे, आगे की मुघि नैय' फिर भी यह मन इतना सोच कर भी, इतना समझ कर भी बदले यह बहुत मुश्किल है। यदि इस प्रकार विचार करता रहा तो जो बीत गयी वह तो बीत गयी, किन्तु जो है वह भी बीत जाएगी। जो है वह बीत जाएगी, उसके बाद क्या होगा? बहुत गयी, थोड़ी रही और थोड़ी भी अब जाने को हुई। यह दुर्लभ मनुष्य-जीवन-दिवानामपि दुर्लभ' मनुष्य-जन्म। सर्वोच्च यह मनुष्य-जीवन आपको, मुझको, नवको मिला है। मिला ही नहीं है, इमका बहुत कुछ हिस्सा बीत गया है। किसका कितना समय बीत गया, हर व्यक्ति को वह मालूम है, अब कितना बीतेगा, यह किसी को नहीं मालूम, किन्तु कितना बीत गया, यह तो मालूम है। किसी के चालीस बीत गये, किसी के पचास, किसी के साठ, किसी के पेमठ और किसी-किसी के सत्तर भी बीत गये। बहुत गयी थोड़ी रही। बहुत गयी और थोड़ी रही, और जो रही वह नमस्कार कर रही है, प्रति पल, प्रति समय, प्रति खास जिन्दगी जा रही है। वह रुक नहीं सकती। किसी की ताकत नहीं कि उसे रोके। तीन लोक की सम्पत्ति भी रोकने में समर्थ नहीं। जगत् का वैभव उसके चरणों में झुका जाए तो भी मृत्यु कभी एक क्षण-भर के लिए भी इधर-से-उधर होने वाली नहीं है। हम जिन्दगी में कितना भी बटोरे, किन्तु इस बटोरने में वह शक्ति नहीं है कि मृत्यु के क्षणों में किसी को बचा ले। निश्चित रूप से 'हमारी बहुत गयी है' यह मानना चाहिये। यदि मेरी पचास वर्ष की उम्र हो तो मुझे मान कर चलना चाहिये कि चालीस वर्ष आ रहे हैं, तो बहुत गयी। और आज के युग में तो साथ ठ वर्ष की उम्र सोच कर चलना चाहिये, बाकी तो पता नहीं कि किसकी साँस कब रुक जाए? कब किसकी आयु पूरी हो जाए, फिर भी एक सामान्य दृष्टि से हम विचार करे तो साठ-सत्तर वर्ष से अधिक उम्र की आशा हमें नहीं रखनी है। साठ-सत्तर वर्ष की उम्र में यदि चालीस और पचास वर्ष पर आ गये तो निश्चित रूप से बहुत गयी, थोड़ी रही। उस थोड़ी को सम्भालना है। इस थोड़े से समय को सम्भालना है।

यदि व्यक्ति का विवेक जागरूक हो जाए तो थोड़े ही समय में वह काम हो सकता है जो तमाम जिन्दगी में नहीं हो पाया। ऐसा होता है। आप कहेंगे, कैसे? विद्यार्थी-जीवन में से गुजरने वाले या विद्यार्थी-जीवन जीने वाले जानते हैं कि एक वर्ष में सात-आठ महीने वे पढाई करते हैं, आठ-दस महीने पढाई करते हैं, किन्तु परीक्षा के दिनों में ही असली परिश्रम करते हैं, लगन से पढते हैं, एकाग्रता से अध्ययन करते हैं। यदि सही पूछा जाए तो परीक्षा की तैयारी पूरे मनोयोग से केवल दस-पन्द्रह दिनों में ही होती है, पूरी लगन के साथ। जैसे-जैसे समय नजदीक आता है, वैसे-वैसे पढने में मन एकाग्र होता जाता है। सब तरफ से कट जाता है। एक धुन लग जाती है। धुन-पूर्वक

जब वह पढाई हाता है तो हर पाठ का सारांश, मुख्य अंश लिखता म आ जाता है । पराभा के समय वह कहता है कि मैं यह तो पाठ बल ही तयार किया था परसा ही तयार किया था । एवं मफ्ताह पहनता मैंन इम पृष्ठ का कभी खान कर भा नहीं देखा । बहुत प्रमत्न हाता है बहुत पश हाता ह कय ? जब वह यह अनुभव करता है कि पिछन लिना की तयारी मर काम जा गया । काम आ जाता है कय ? जब कम समय म काम अधिक लगन म हाता है तब कम समय म काम अधिक स्फूर्ति स हाता है तब ।

ता हम यह भी क्या माचें कि हमारा कितना कान बात गया और कम बात गया ? जस भी बीतना था बात गया किन्तु अब घाड समय म हम लगनपूर्वक, निष्ठा-पूर्वक धुन पूर्वक यदि आत्म-व्यथाण न माग म आग बढ जात है ता मानिय पूरी जिदगा म जा हम नहा कर पाय, उमम अधिक कर लगे त्रिक उमस ज्यादा कर जेंगे । लकिन कर कब जेंगे ? जब हम धुन लग जाएगी । धुन अनग ही होती ह । धुन म एक लगाव हाता है । धुन म एक आवषण हाता है । हर समय एव ही भाव चलता ह । व्यापारी स पूछा हर समय कमान की धुन चलता है या नहा ? कभी बेचन क भावा का धुन ह कभी खरीदन के भावा का धुन ह । जो भाव है उमम धुन चरती रहती है, उमकी चरता रहती है बीबीसा घण्टा । खाता भी ह पीता भा ह माता भी है बैठता भा है, मित्रा स मित्रता भा है, यावहागिता भी निभाता ह फिर भा वह चरती ह, जिदगा के मार काम करता है किन्तु साजन म व्यापार की धुन उमक मस्तिष्क म चलता ही रहता है हर पन । जा आगा-पाछा भाव कर काय करता है वह नाम-ही-नाम म जाता है क्याकि उमका धुन चरता ह पूरी लगन म पूरी निष्ठा म ।

किन ही नाग हैं जा कहते ह महाराज अभी चाह कर भा हम नहा मुन पान हैं, क्याकि हमार व्यापार का सीजन है । व्यापार के सीजन म व्यक्ति व्यापार का उपमा नहीं करता । मनुष्य जिन्गी आत्म-व्यथाण का सीजन है यह विचार कही जाता है उन । और यह विचार आ जाए ता क्या वह दूररी प्रवृत्तिया म उना जाएगा, भटक जाएगा ? नहीं भटकगा, कितना ही आप कहें उसे ? कपास क व्यापार कहत है कि हमारा सीजन है । खाना भा कममय या मकत हैं ना म कममय से मकत है । मव प्रवृत्तिया छाड सकत हैं । घर भी छाड सकत हैं परिवार भी छाड सकत हैं । मव छाड करव दौडत हैं कि साह्य अभी ता आर कुछ लिखायी नहा गता । अभी ता व्यापार की जा व्यवस्था है उमी म दिमाग धूमता है । बारह एव बजे तक वही-खान व्यवस्थित कर, दा बने भा कर मात आठ बज उठत हैं । व्यापार म बठारह घण्ट द हान क्याकि बहुमान है लगाव है धुन है किग बात की ? कि साजा है ।

मन्त कहते हैं जम पन कमान म सीजन जा अनन्त कान म अनन्त बार आयगी, तय भी जनम हागा आयगी जब भी जीवन मित्रगा तय वह मित्रगी किना-न किता म म, किन्तु आत्म-व्यथाण की 'साजन' मिथाय मनुष्य जिन्गी क किना

दूसरी जिन्दगी में नहीं। पर ये शब्द तो व्यक्ति केवल मुन कर रह जाता है। ये शब्द तो केवल कानो को टकारा कर रह जाने हे। इन शब्दो के पीछे कोई प्रियता नहीं है, कोई भाव नहीं हे। व्यक्ति का यदि उन शब्दो के प्रति आकर्षण हो तो उसकी धुन लगे और धुन लगे तो ऐसी लगे कि ।

वास्तव में जिन्होंने आत्मस्वरूप को समझा या जिनमें आत्म-व्यथा की रचि जागृत हो गयी उनकी धुन तो ऐसी चलती है कि अब जितना समय है, आत्म-कल्याण के लिए ही बटोर लूं। जितना समय है उसको एक ही प्रवृत्ति में लगा लूं। जरूरी-जरूरी कामो को कर के तुरन्त लौटता है, वह इस धुन में। परीक्षा के दिनों में परीक्षार्थी खाना नहीं खाता हे, पानी नहीं पीता है। यद्यपि खाना, पीना, सोना, स्नान सब करता है फिर भी सब तरफ से 'कट' करता हे समय को। सब तरफ से समय को बचाता है। कहीं-कहीं उसकी लगन हे कि 'ज्यादा-से-ज्यादा पढाई मुझे करनी है।' ज्यादा-से-ज्यादा पढाई करनी है। सीजन में ज्यादा-से-ज्यादा पैसा बचाना है, इसलिए हर तरफ से अपने-आप को 'कट' करता है। विवाह-शादी के प्रसंगों में भी वने वहाँ तक परिवार के दूसरे सदस्यो को भेजेगा लेकिन वह नहीं जाएगा। तुम सब जाओगे तो चलेगा पर मेरे जाने से नहीं चलेगा। कितना महत्त्वपूर्ण मानता है खुद को ?

मुझे याद है, कई बार दोहराया होगा कि मैंने भयवर व्याधि में भी स्मरण करते हुए देखा, रात को दो बजे तक जागते हुए देखा, आत्मस्वरूप के चिन्तन में लीन देखा और जैसे-जैसे जिन्दगी की सध्या निकट आती गयी, वैसे-वैसे आत्म-व्यथा में भावोल्लाम बढता गया और भावोल्लाम बढा तो ऐसा बढा कि नींद हराम हो गयी। एक बार नहीं अनेक बार पूछा कि महाराजश्री, यह क्या स्थिति हो गयी आपकी रात-दिन एक ही धुन में लगी है आप। कहने लगी—'अब आराम का समय नहीं है, विश्राम का समय नहीं है, अब डघर-उधर झाँकने का समय भी नहीं है। अब तो मात्र अपने आत्म-कल्याण करने का समय है। अब तो मात्र अपनी शुद्धि का समय है। अब तो जीवन की सध्या है। सध्या के समय डघर-उधर झाँकने से क्या होगा ? अब तो जल्दी-से-जल्दी काम करना है।' 'बहुत गयी, थोडी रही, थोडी हू अब जाय।' थोडी भी अब जाने को है। अब समय बीतने वाला है। अब मौत की घटी बजने वाली है। काल हँस रहा है। काल के एक पद में आया था कि काल कैसे हँसता है। वह एक व्यग्य था। काल हँस रहा है, किस पर हँस रहा है ? हम पर हँस रहा है ? हम पर हँस रहा है। हमारी अज्ञानता पर, हमारी मोहान्धता पर, हमारी आसक्ति पर, हमारी इन्द्रिय-विषयो की प्रकृति पर काल हँस रहा है, इसलिए हँस रहा है कि देखो इसे पता नहीं है कि अन्त में इसे मेरे पास ही आना है। इसे पता नहीं कि इसे सब कुछ छोड़ना है। इसे नहीं मालूम कि इन सब से इसे टूटना है। यह जान कर भी अन-जान बन रहा है। समझ कर भी, नासमझ हो रहा है। यह दुनिया को उस राह पर जाते हुए देख कर भी कि 'मेरी बारी आने वाली है' विचार नहीं कर रहा है, इसलिए काल

मुस्करा रहा है। हमारा उपहाम कर रहा है कि खल कितना भी बूट कितना भा, नाच कितना भी, पांच इंद्रिया के विषया म आमवत वन कितना भी, व्यापार फना कितना भी कितने भा अपन माथ तबिल लगा ने-मट्टे का तबिल, सम्पत्ति का लबिल किन्तु तेरा सारा परिश्रम धूरघानी राखछाना हा जाएगा उम त्तिन जिम त्तिन में तेरे मामन आ जाउंगा। जिम दिन में तेर मामन आउंगा उम त्तिन तर मामन काई नही रहगा। किमा की गक्ति नही रहगी, किसी का माहम नही रहगा कि मने मामन तर स काई बात भा कर मवे। तरी कोई माता पूछ मने। तुझ म कोई यह भी जान न कितून वही प्रन गाडा ता नही ?

मृत्यु आन व वात् एव बार नही दम बार आख का मृ करवे त्ख ता, धडकन का दख ला। काद ताकत नहा। भन ही जान वाता कह न कि पिताजा, मुचे मिफ दा मिनिट का दर हुई आन म। वट जस ही आ कर यडा हाता है परिवार के मत्स्य वहत है अर्भी बाग रह थ अभा बाल रह थ। दा हा मिनिट हुए निश्चत हुए तो हा मिनिट हुए। जीर वह प्रिय बेटा बहता है कि पिताजा दा ही मिनिट की देर हा गया। दा ही मिनिट का दर हा गयी। एव बार जाख खानिय बनन एव बार बाय खानिय। एव बार दशन द दीजिय। मैं कितनी दूर म आया हूँ कितनी तडप म जाया हूँ कितनी परगानो उठा कर आया हूँ। दा मिनिट के तिए आँख खान दीजिय।

काल कहता है अब किमका ताकत है? अब कौन लिखा दगा, कौन दख लगा? अत्र ता जितनी म्वप्न हा चुकी अब तो जिदगी समाप्त हा चुकी। हम सब उमी और जान वात ह लगाकर जा रह ह। हर माम म हमारा हमारा जिदगा हम सब उमा जात जान वाते ह, लगातार जा रहे ह। हर माम म हमारी जिदगी उसी आर जा रहा है। पर याद नही आती। खान की याद आता ह पहिनन का याद आता है रिस्ताररा का याद आती ह वमाइ का याद आता ह व्यापार व भावा का याद आता ह। दुनिया म कहा क्या हा रहा है यह भा याद आता है। मवेर पपर इमनिए देखते ह कि क्या क्या नया खबर है? क्या नय भाव ह? क्या स्थिति है शहर की? सब की याद आता है। सत्र का याद जा कर भा म्वय का यात्रा याद नही जाती। मनुष्य जिदगी एक पडाथ है जहा स आगे फिर स यात्रा करना है। यक्ति वा अपना यात्रा याद नही आती इसनिए नाना कहत हें दुनिया का याद करता है किन्तु याद कर किमका याद कर? याद कर-नर कर उम दिन का याद कि जिम त्तिन चन चन चन हागा। विचार कर कि ह जाव तू त्तना धाखा कर रहा है किन्तु उम क्षण क्या हागा? त्तना विश्वासघात कर रहा है उमका क्या हागा? त्तना मषय कर रहा है त्तना झगडा कर रहा है परिवार म त्तना मषय बना रखा ह पर वता उम समय तरा क्या हागा? दूमरा की धन्ती देख तू कितनी जनन करता ह कितनी ईर्ष्या करता ह। किसा व धन का देख कर तुझे कितनी जनन हाता है? किसी व परिवार का दर कर किसा का मत्ता और





दिया। अभी तक मुझे अनुशासन करने का अधिकार नहीं दिया तो क्या राजकीय अनुशासन का जो उत्तरदायित्व है, सत्ता और सम्पत्ति के अधिकार का जो सुख है, इस जवानी में नहीं भोगूंगा तो क्या बूढ़ापे में भोगूंगा और पिताजी यदि न मरे, उनकी अस्सी वर्ष नब्बे, वर्ष, सौ वर्ष उम्र हुई, तो क्या मैं राजकुमार के रूप में ही बूढ़ा हो जाऊँगा? पिताजी छोड़ने वाले नहीं, देने वाले हैं नहीं, इनके भाव बदलते नहीं। पिताजी, मैंने तो यहाँ तक सोचा था कि कुछ दिनों में मैं आपकी हत्या कर दूँ। जहाँ व्यक्ति का स्वार्थ टूटता है भाई-भाई का नुकसान चाहता है। बाप बेटे का नुकसान चाहता है। एक-दूसरे की जिन्दगी से खेलना चाहते हैं। जहाँ मोह टूटे, जहाँ स्वार्थ टूटे, जहाँ लोभ व्यक्ति का सन्तुष्ट न हो, वहाँ व्यक्ति इम प्रकार के विचार करे तो कोई बड़ी बात नहीं है। दुःख की खान व्यक्ति का मोह हो, स्वार्थ हो, यह अतीत की कहानी नहीं वर्तमान में भी ऐसे उदाहरण हैं। वर्तमान में भी ऐसे किस्से हैं कि पैसे के पीछे व्यक्ति क्या नहीं करता? सम्बन्ध दिमाग में नहीं रहते। स्नेह भी दिमाग में नहीं रहता और कहाँ कौन किसके प्रति क्या सोच ले, कुछ पता नहीं, कब? जब व्यक्ति स्वार्थ में अन्धा हो जाता है, जब लोभ में अन्धा हो जाता है। 'बेटा, तूने यह विचार किया? ओहो मैंने तो यह सोचा कि जब तक मैं बैठा हूँ तब तक बेटे के सिर पर क्यों बोझ डालूँ? उसको स्वतन्त्रता से क्यों न जीने दूँ? उसे क्यों न मनोरंजन की प्रवृत्तियों का आनन्द लेने दूँ? मैंने तो सोचा था कि अधिकार के पीछे लफड़े बहुत हैं। यह सारी जिम्मेदारी तुम्हारे सिर पर आ जाएगी तो अभी से तुम्हारी जिन्दगी का आनन्द किरकिरा हो जाएगा। ओहो, मुझे नहीं पता था यह। आज ही मैं तुम्हारा राज्याभिषेक किये देता हूँ और निवृत्त होता हूँ।'

सोचने-सोचने में कितना अन्तर हो गया। बाप के विचार क्या हैं और बेटे के विचार क्या हैं? गलतफहमी भी बहुत होती है। अर्थ का अनर्थ भी बहुत होता है। कभी-कभी तो दूसरो के शब्द भी गजब ढा देते हैं। बहुत से व्यक्तियों के घर में सर्प का कारण यही होता है कि आमने-सामने बात नहीं करते और इधर-उधर मित्रों के माध्यम से, परिवार के किसी व्यक्ति के माध्यम से वे अपनी बात वहाँ तक पहुँचाते हैं और वहाँ की बात स्वयं सुनते हैं और जब कहने वाला दो-चार शब्द अपनी तरफ से जोड़ देता है, तोड़ देता है तब वही परिवार में अशान्ति छा जाती है।

समझदारी का यह कोई प्रमाण नहीं है। समझदारी उसका नाम है कि जो भी बात हो, साफ-साफ हो, आमने-सामने हो। किसी तीसरे के माध्यम से न्याय कराना कोई बहुत अच्छी बात नहीं है। वह तो स्वयं की कमजोरी है, लाचारी है, विवशता है। जो स्वयं के झगड़ो को स्वयं नहीं सम्हाल सकता, वह दूसरो की शरण लेता है। ले तो ऐसे व्यक्ति की ले जो निरपेक्ष हो, जो तटस्थ हो और जिसमें चिन्तन की शक्ति हो, अन्यथा बहुत अनर्थ हो जाता है। यहाँ पिता के विचारों को बेटा नहीं समझ पाया और बेटे के

त्रिचारो का पिता नहीं ममय पाया। राजा कहन लगे दाम्स्तव म कमाल किया। दस दाह न उदार कर लिया तुम्हारा। आर मरी भा हत्या का डम दाह न धाम लिया।

राजकुमारी स पूछा—'बहा तुम्हें क्या मित्त ? राजकुमारी कहन लगा—  
पिताजा, मरा उम्र चावीस बप हा गया। जमी तक जापन मरे याग्य वर का खानन की कोई काशिश नहीं की। ता मुझे ऐसा लगा कि मैं म घर म ही वृद्धत्व का आर चरी जाऊँगी। क्या तीम चालीस बप दसी घर म गुजर जाएँगे ता फिर अगली जित्ना भा क्या हागा ? मनिण मैंने सोचा पिताजी ऐम मेरी शादी करेगे नहीं क्याकि अभी तक ता बहा खाज नहीं का है। मुझे ता कहीं-न कहीं स्वय अपना तगप म निणय करके चर जाना चायिे। बेटी, तून ऐमा विचार मिया ?' हा पिताजी भर मन म ता ऐमा हा विचार था गया था कि मुझे ता अब स्वय-ही-स्वय-का निणय न तेना ह और निणय नन म पहले डम घर का त्याग कर देना है। राजा कहन लगा—मैं ता तुम लागा का बातें भुन-भुन कर हरान हा गया। मुझे ऐमा लग रहा था कि म एकमात्र बेटा है आर ममुरान जान के बाट ता लाना-बुलाना मर हाय म भी नहीं है। बहा जान क बाट तो वतना राड प्यार मिन जाए बहुत मश्विल ह। मा का जन्त साम पूरा कर दे ऐसा मामें हाती हैं पर हर माम ऐमा हा यह मृत मश्विल है। बेटी का बुरा का ठिपा ने बेटी का बुरा का महन कर न बेटा। ती बुरा का प्रेम म ममला द ऐसा माताएँ ता हज्जार मिनगी किनु बहू का गनता का बेटा का तरह ममया द ऐसा साम वन्त मश्विल है मलिन मैंने ता माचा था कि मैं अपन घर म तुने जितना आनन्द मरू, उतना द जितना खुशा मकू उतनी दू। तू एकमात्र मरी आँख का पुतला थी डमनिण मैंने साचा कि जितना समय मर घर म निवल जाए, मैं अपनी पुत्रा क तशन करना रहूँगा। उसके बाद पता नहीं कब मिनना हा ? मैंने नहीं जाना कि तून एस विचार मिया। अर ता मैं जल्द-ने जन्ता तरा बाय निपटा दगा। आज क युग म भी माँ-बाप चाहत हैं कि जल्दी-म-जल्दी निपटा दें किनु निपटा कमरें बायक परि म्यितियाँ जा हैं। कही किसा प्रवार की कमी आर कही किसा प्रवार का कमा। कही रुप बाधक का जाता है ता कही कमपमा बाधक बन जाता है। कही कम पिता बायक बन जाता ह। और मा-बाप वितना कहन है कि चित्ता ह ता डमा बात का कि बेटा पराड कब हागी ? ममाज ममाज की चित्ता बडा रहा है हन नहीं कर रहा है। समाज समाज का ज्याना कष्ट म डान रहा है ज्यादा अगाति द रहा है ज्याना परशाती म डान रहा ह। मात्रम ह कि ममाज की उड्या ममाज मही जाएगी। मात्रम ह कि जालि-ब्यवस्था म हा हमार मारे मम्बघ हान बाल ह फिर भी छटाई। छटाई की प्रवृत्ति और छटाई क पाछे लाभ-वृत्ति तामात्रम क्या-क्या कर रहा है। मैं क्या कहूँ मुझम अधिक ता जाण मय जानन ह। त्रिन पर गुजरती है क वन्त कुछ जानन है। मता कही-कहा एक-का भल सुन नर शशा क माध्यम म आपका कुछ बह दर्ती हैं जबकि मैं जानती कुछ नहा ह। उदा अर तुम्हें तरा मामना निपटा दूगा—गजा कहता ह।



इधर साधु से पूछा कि 'तुझे क्या मिला ?' साधु ने कहा—'राजन्, मुझे त्याग, तप की माधना करने-करते इतना लम्बा काल बीत गया। अभी तक भी मुझे आत्मदर्शन नहीं हुए। अभी तक भी मुझे उल्लान भाव नहीं आया। आह्लाद नहीं आया। प्रभु के दर्शनो मे, मैं जगत् को खो दूँ, जगत् को भूल जाऊँ, ऐसे भाव नहीं आये। तो मुझे ऐसा लगा कि इतना समय तो मैंने यो ही खो दिया और भगवान भी नहीं मिले। 'न माया मिली न राम' इमने तो अच्छा है कि अब मैं मन्यासी-जीवन छोड कर गृहस्थ-जीवन मे जाऊँ। यह विचार आया, इसलिए मैंने कम्बल फेक दिया। मुझे एकदम विवेक आ गया। तुरन्त ज्ञान-दृष्टि मिली। अरे, इतनी जिन्दगी तो त्याग, तप और वैराग्य मे होम दी अब कहाँ मैं ममार की माया मे जा रहा हूँ ? अब कहाँ मैं पाँच इन्द्रियो के विषयो मे भटकने के लिए जा रहा हूँ ? अब मैं कहाँ भटकने के लिए जा रहा हूँ ? क्योंकि 'बहुन गयी थोडी रही, थोडी हू अब जाय'।

राजकुमार कहने लगा—'पिताजी, मुझे विचार आ गया कि जितना समय निकला है उतना समय तो अब निकलने वाला नहीं है। राजगद्दी कभी-न-कभी मिलेगी इसलिए मैंने फेक दिया।' राजकुमारी ने कहा, 'मैंने सोचा कि जितनी बडी मुझे की है उतनी बडी तो अब पिताजी करेगे नहीं, तो बहुत गयी थोडी रही, इसलिए मैंने कगन फेक दिया।' सन्त कहने लगा कि 'इसलिए कि इतनी जिन्दगी मैंने त्याग, तप मे निकाली तो अब कहाँ भोगो के विषयो के बीच मे जाकर फँसूँ। बहुत गयी थोडी रही, इसलिए मैंने फेक दिया।' थोडी रही, थोडी रही उसे भी वचा लिया। किसने वचाया ? राजकुमार को पिता की हत्या से वचाया, राजकुमारी को भगने से वचाया। उस सन्यासी को गृहस्थ बनने से वचाया। किन भावो ने वचाया ? 'थोडी रही, थोडी रही'। इस 'थोडी रही' ने आपको भी वचा लिया और मुझे भी वचा लिया।

क्रोध से वचा ले, लोभ से वचा ले, मोह से वचा ले, माया से वचा ले, पाँच इन्द्रियो के विषयो से वचा ले, इसलिए वचा ले कि अब थोडी रही, थोडी रही, थोडी रही। वह थोडी कब पूरी हो जाएगी, इसका पता नहीं। अब तो छोडूँ, अब तो छोडूँ, अब तो छोडूँ, किसे छोडूँ ? जहाँ-जहाँ भी मैं चिपका रहा हूँ, उसे छोडूँ। जहाँ-जहाँ भी मैंने पकड रखा है, मत्ता को पकड रखा है, सम्पत्ति को पकड रखा है, अधिकार को पकड रखा है, अब उन्हे छोडूँ, क्योंकि बहुत थोडी रही है। उसको पकडूँ, जिसे आज तक छोड रखा है। आत्मभावो को आज तक नहीं पकडा। सद्गुरु की आज्ञा को आज तक नहीं पकडा। जैन दर्शन के नियमो को आज तक नहीं पकडा। त्याग, तप, व्रत को आज तक नहीं पकडा। उनको तो पकडूँ और जिनको पकड रखा है उनको छोडूँ। घर मे रहते हुए भी सन्यासी बन जाऊँ। घर मे रहते हुए भी उदासीन बन जाऊँ। घर मे रहते हुए भी त्यागी-तपस्वी का जीवन जी लूँ। घर मे रहते हुए भी किसी का अनुशासन नहीं तोडूँ। घर मे रहते हुए भी किसी को कट्टु शब्द न कहूँ। घर मे रहते हुए भी किसी को

कामू आय ऐसी वाणी न बहूँ। क्या दे दू ? अधिकार की चाबी न दू। मव स्वयं जपन  
 कर्मों क अधान ह। स्वयं जम रहना चाहें, रह। जम जाना चाहें, जायें। अतना खचना चाहें  
 खचें। जा करना चाहें करें। मैं माठ वप ना हा गया या म माठ का हा गयी। कव तव  
 अनुगमन करना, कव तव व्यवस्था करना, कव तव दूसरा क मन का दुःखाना, कव तव  
 गलत ढग म कमाना, क्याकि बहुत गयी, याडी रही। जा नाम विगत जिन्गी म नहा  
 हुआ व काम अत्र याडी जिन्दगी म हा मक्ता है, पर कव हा मक्ता है ? जब विचार  
 आ जाए। कालना विचार आय, कौनना विचार आ जाए। 'नर कर उम तिन क। मा  
 ति जिम दिा चन चन चल हागी। यति यद भाव आ जाए यति त्रिवव आ जाए ता  
 याद ममय म बह काम ना मक्ता है जा पूरी जिन्गी म हमन नहा गया। पर यह  
 हाणा कव ? हावना भा कम करें मुनना भी कम करें मूधना भी कम करें म्या र्दिय  
 का रम लना भी कम करें और जिह्वा का रम भी कम करें। पाँच इन्द्रियो के विषया म  
 विराम पायें। इन पाँचा खिडकिया का बन्द करें मन्द करें। बन्द करना मुश्किल है, पहल  
 मन्द करें। वही ऐसा न हा कि माठी-नाठा हा वही ऐसा न हा कि जब भी बहा चमड  
 म चिपकत हा। अब ता प्रभु परमात्मा स चिपका। उमव चरणा म चिपका। आत्म-  
 शुद्धि क भाव गआ। अब कौन-सी जिन्गी बची है, अत्र ता इम जिन्गी ता परमात्मा  
 के चरणो म चढा दा। नस मीरा न श्रोवृष्ण के चरणा म चला दिया इम प्रकार इम  
 जिन्गी का प्रभु-परमात्मा के चरणा म चढ़ान हुए खिदगा का जिन आ  
 जाएगा।

कव आ जाएगा आनन्द ? जब मति पलट जाएगी। मति पलट जाएगा ता गति  
 भी पलट जाएगी। पर कव पलट जाएगी जब व्यक्ति जिन्दगी क महत्त्व का समझ ल  
 आर ममय कम रह गया ह यह भाव आ जाए। ममय कम रह गया है। काम जन्गी  
 है काम जन्गी है, अवनर यही ह ममय पाठा ह, म्हार आ धर ग्यानी करवाना बना  
 आवा। मुझ ता यह पल बहुत ही अच्छा गगा। य पवित्तमो बहुत ही अच्छा गगा।  
 यति भाव आ जाए ता कान्ति म गाला करन म पहन ग्याता करन ग मन हा  
 जाएगा, हा जागा, मर तरफ म यह हट जाएगा।

यह उपाहृष्ण बहुत ठाव था कि विराय का मवान ग्याना करन म पदून  
 विनाय क मरान का आवषण कम हा जाता है। माफ-मरान कम हा जाता है। रग  
 रागा करना भी व्यभिच वर दता है। छउबी शाहू निकानता वर दता है।  
 कव वर दता है, कव मानू है कि अब ता मुझ मरान घानी करता है। ग्याना हम  
 कना है, निरिषय रूप म करना है यह मरान ग्याना करना है। कव करना है ? पना  
 नहा। बहुत गयी पाठा रहा, याडी भा अब जाय। पाठ तिन क वाग्पो मजन म मग  
 न ग्या।

□□□

भाव हिंसा की जो बात है, देखा गया है कि वह प्रायः जब्दो तक ही निमित्त रह जाती है। मानसिक, वाचिक, कायिक जो हिंसाएँ ह, वे किमी चीटी आदि पर पाँव रखना आदि तो हैं ही, किमी को मानसिक अज्ञान्ति/पीडा/स्तेज हों ऐसे जब्दो का प्रयोग भी हिंसा है। यह मानसिक श्रेणी की हिंसा है। मानसिक कण्ट जिमे पहुँच रहा है, हमारी वाचिक प्रवृत्ति उममे निमित्त है। स्व/पर के मदर्म मे भी हमे इम बात को समझना चाहिये। यह जीव स्व-द्रव्यो की तो खूब देख-भाल करता है, किन्तु 'स्व'-भाग की जब तक देख-भाल नहीं होगी, आत्मभाव की जब तक चौकसी नहीं होगी, राग-द्वेष के परिणामो से निवृत्त होने के क्षण जब तक प्राप्त नहीं होंगे, तब तक भाव अहिंसा का परिपालन नहीं होगा।

नव जानते हैं कि द्रव्य की भूमिका मे तो हम अक्सर आगे बढ़ जाते हैं, किन्तु भाव की भूमिका हमारी शून्य रह जाती है। जब तक यह भूमिका सूनी रहेगी तब तक द्रव्य/सपत्ति रख कर भी हम परिग्रहो की सीमा नहीं रख पायेगे। जैसे एक आदमी, जिसके मकान मे आग लग गयी है और जब आग धू-धू करने लगी है तब उन क्षणो मे वह सावधान हो गया है। बहुत मारा सामान, बहुत मारे पदार्थ, बहुत अधिक मूल्यवान् वस्तुएँ उसने जलते हुए मकान मे से सब से पहले निकाल ली है। दो-दस आदमी इसी कोशिश मे हे कि कोई सामान जले इससे पहले उमे बाहर खीच ले। भरसक कोशिश से कई बार मे जितने पदार्थ महत्त्वपूर्ण थे उन्हे बाहर निकाल लिया गया है। अब मकान-मालिक समीक्षा कर रहा है और अपने अनुचर से पूछ रहा है कि 'अभी वक्त है कि तुम जलते हुए मकान मे जा मको अत जाओ और एक बार फिर देख आओ कि कही कोई बहुमूल्य चीज छूट तो नहीं गयी है ?' जैसे ही अनुचर अन्दर गया और उमने कमरे मे पाँव रखा दौड़ कर आ कर बोला—'साहब, गजब हो गया, बडा गजब हो गया। अनर्थ हो गया ।।' मालिक घबरा गया, हडबडा कर बोला—'क्या हुआ ?' नौकर ने कहा—'साहब, सामान सँभल गया, किन्तु मालिक खो गया'। गृहस्वामी ने पूछा—'मालिक खो गया ! कैसे खो गया ? क्या हुआ है ?' नौकर ने कहा—'आपका वह लडका, जो तीन वर्ष का था एक तरफ सोया हुआ था ? उस ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया। उसे किसी

न उठाया हा नहीं। वह जल गया। हम तरह सामान सम्भल गया और मानिक खो गया।

बन्तुत मानिक ह ता हा मामान का काई उपयोगिता है आर मानिक हा नहा है ता फिर मामान महत्त्वहीन ह विनकुल बेमतलब ह। आत्मा है ता गरर का महत्त्व है और आत्मा नहा है ता मना शरीर व हान का फिर क्या अर्थ ?

हमन यहीं भूत की है। आज नहा, अनादि कान न। उन का हमारी जा व्यवस्था है उस व्यवस्था में चतुर्गति रूप जय जब हमें जमा शरीर मिलता है उनमें हमारा अहं बुद्धि बन जाता ह, ममत्व बन जाता है और तदनुसार हम गरर की सुरक्षा, व्यवस्था दख भाल तथा उनसे सम्बन्धित जड-वचन का भार सँवार का हा अपना बतव्य ममपन रगत हैं। अब तब हम सतत गरर र हट कर काई आमदष्टि बान का काम किया नहीं। मैं कान हूँ यह विचार ता कभी आया हा नहा। जितना ममत्व, जितना लगाव जितना अपनापा हमन या उतना सब मात्र झुके म उलना रहा। हम तरह घनिष्ठ/निवृत्तम मपक हम गरर का ह। यह भा बार-बार बन्नता है। हम बन्नते रहा घाल गरर का न कर ही हम में की धारणा उनात हैं। वन एव सदभ आया या कि इस जीव न अनादिकाल से आज तन म्यम का में क रूप म ही म्गवार किया है इन स्वीकृति का काई-नकाई आधार हागा/है। विमान विमान स्वयं से उनन अपना हम मायता का तापा जोर माना है। कान-मा आधार है वह? पसा, गता मुदस्ता नम्बाई चौडाई, ऊँचाई, आधिर क्या? जब भी ऐसी रिमा कगौना पर वह मूल्याका करता ह तब वह कगौटी दश्यमान जगन् की हीं हानी है क्याकि जा दिघाई दता है वह जगत् है अत जागतिय मूल्य हीं इन्की पगौटी ह कुछ भी तय करन का इर्मानिए जगत् का अधि म महत्वपूर्ण कान की हर वासिण इम्का है। प्रान है कि क्या जगत् की दष्टि म महत्वपूर्ण बनो का प्रयत्न आत्मक-याण का भाग हा करता है? क्या मात-भाग की साधना हम तरह समव है ?

देह मिया आत्मा का भगवने का लक्ष्य इन तरह नहीं जम करता, क्याकि जागनिक व्यक्तताआ पवीन उन अनवाण हा यहाँ है मानन का? माय यहाँ है विचार करन का? यदि भा नहा है।

मैंन बन्तुत यात्र उगाहरा गया है आर भी उन देती हूँ कि कगारी का एर भी तिनता यदि का बुरा मन्त्र निरन्तर जाता है ता हम उन मन्त्रो से नै है क्याकि म-मान रचना की शाहू है यदि इसा तरह मप-एर तिनता रउ तिन वता मया ता काम बन करता? एर तिन शाहू हीं तनी रगौरी तिनु हा जीव

ने अनन्तकाल में भी आत्मा की उतनी कीमत नहीं की जितनी यह आज झाड़ू की कर रहा है। सच पूछे तो समार में आत्मा-जैसी मनातन शक्ति के अलावा हमारा कुछ भी नहीं है, क्योंकि आत्मा के दो गुण—ज्ञान और दर्शन—उसके अलावा और कहीं नहीं मिलते, नहीं पाये जाते। ज्ञान गुण, दर्शन गुण यदि किसी का स्वभाव है तो चैतन्य का वह है। वह आत्मा का गुण है, किन्तु हमारा दुर्भाग्य यह है कि हमारा ज्ञान गुण हर समय पर पदार्थों के निरीक्षण-परीक्षण में लगा रहता है। इस गुण के आधार पर वह जो भी इस दृश्यमान जगत् में दिखायी देता है, उसमें ही रागात्मक और द्वेषात्मक परिणामन किया करता है, नये-नये पुद्गलों के ग्रहण में आनन्द का अनुभव करता है। इसी आनन्द का नाम 'पुद्गलानन्द' है।

हो सकता है आप सोचे कि महाराज तो बड़ा खरा बोलती है। भाई, सत्य-तो-सत्य-है और सत्य के निकट अब नहीं जाएँगे तो कब जाएँगे? मात्र यहीं तो विवेक की जिन्दगी है। सुनो! सत्य, सत्य है, यथार्थ, यथार्थ है। केवल कथा-कहानी के माध्यम से या पाप-पुण्य की कहानी सुनते-सुनते यदि हमने कारण को ही कार्य मान लिया है, यदि साधन को ही साध्य मान लिया है, यदि मड़क को ही मकान मान लिया है तो काम कैसे चलेगा, कैसे चलेगा काम?

जब तक जीव शुद्धात्मदृष्टि से चिन्तन नहीं करेगा, तब तक कारण में कार्य की भ्रान्ति होती रहेगी, साधन में ही साध्य की भ्रान्ति होती जाएगी। यही हो भी रहा है आज। व्यवहार और निश्चय दोनों की भेद-व्याख्या को पृथक् तब मानते हुए आस्रव के दो विकल्प कर लिये हैं। आस्रव के दो विकल्प हैं, दो बेटे हैं। एक पुण्य, दूजा पाप। नौ तत्त्वों के नाम हैं—जीव, अजीव, पाप, पुण्य, आस्रव, संवर, वध, निर्जरा, मोक्ष। दिगम्बर परम्परा में सात और ज्वेताम्बर परम्परा में नौ तत्त्वों की चर्चा है। नात कुछ भी नहीं है। दिगम्बर परम्परा में आस्रव में ही पाप-पुण्य का समावेश कर लिया गया है, अलग रहने की जरूरत भी नहीं है। श्वेताम्बर परम्परा के आचार्यों ने बात को अधिक खोलने के लिए आस्रव के दो भेद कर दिये हैं—पापरूप, पुण्यरूप। जो पापरूप आस्रव है वह जगत् के प्रतिकूल रूप से जोड़ेगा और जो पुण्यरूप है वह अनुकूल जगत् से जोड़ेगा। आज इस शरीर को जो पचेन्द्रिय-रूप पर्याय मिली है, वह आत्मा को मिली है। यह पुण्य-योग से मिली है। आर्य सस्कृति, आर्य कुल, आर्य विचार, ये सब पुण्य-प्रकृति से ही मिलते हैं/मिले। व्यावहारिक सुख-सुविधा जो भी मिली है, वह सब भी पुण्य-प्रकृति के उदय की फलश्रुति है। पाँचों इन्द्रियों को जो स्वस्थ स्थिति है, वह भी पुण्य-प्रकृति का उदय है। पुण्य-प्रकृति के उदय से बहुत कुछ मिल गया पर पुण्य को भी आस्रव का ही एक भेद प्रतिपादित किया गया है, इसीलिए आगम-वचन है कि पाप लोहे की और पुण्य सोने की वेडियाँ हैं; वेडियाँ हैं, वेड़ी दोनों हैं—

एक स्वर्गादि स जोड़ता है—एक नव आदि स । एक त्रियच स एक मनुष्य गति स । तीव्र पुण्य का फल भागन व लिए यह जाव त्वगति स जाणगा और उसस कम स्थिति का फल भागन व लिए मनुष्य-गति स तीव्र पाप के फल स नव स जाणगा और उससे कम के लिए त्रियच-गति स । मास वर हागा ? जत्र चारा गति स विराम हागा तत्र । कब हागा ? जब यह जाव चारा गति व श्रम्य को समझेगा और मानगा कि पुण्य व जितन निमित्त ह व नार जात्मनान का समझने के लिए है जात्मबुद्धि व मकानन व लिए ह । द्रव्य भावशुद्धि के लिए है किन्तु भाव पर हमारा दृष्टि न पडे भाव हमार नश्य स न जाय आत्मा का जार हमारी रवान न दोडे और मात्र निमित्ता का कारण का हम मान लें धरम ता सताप ता हा जाणगा किन्तु मर्य का समवन का रचि जम नही लगी ।

पुण्य और पाप दोनों आसव व विवल्प ह । यवहार-दृष्टि स पुण्य उपान्य है इस अर्थ स कि पुण्य प्रवृत्ति व उदय स जावन मुख के आंगन स आ खडा हुआ है देव गुरु धर्म के निमित्त जुट गय शास्त्र-श्रवण मिल गया । देव-गुरु की आराधना का मुयाग मिल गया । पर एम मत्र वा बहु उपयोग न कर ता ? याग तो मिल गया व निमित्त भी नार मानन पडे हैं जिनम आत्मा का आत्मा ता पान हा मवता है किन्तु उपयोग न कर तो इस पचम वान स छठे गुण स्थान की म्याना जीव कर मवता है किन्तु कत्र ? जत्र इसका जात्म-गणन वा नश्य हो तत्र । आत्मगणन का वात ता इस जीव का कभी अच्छी लगती नही । धर्ममभावा स भा हम पाप पुण्य का क्या मुन कर सोच लन है कि हा गया काम महज ही और मस्ते स हा गया काम । क्या आसव का चचा हा हमारा उद्देश्य है ? पुण्य स आमक्ति यदि है ता पाप स घुणा हागी ही । पाप स घुणा हागी ता पुण्य की आमक्ति समूह हागी हा । इस जाव न जितना भी जानन लिया है पुण्य की उन जवम्या स लिया है जा वण एव रम, गध म्यश वा अनुकूलता कहा गाली है ।

नये नय पुद्गल-गयाग पावर जाव मुन्वराना है । पुद्गल प्रल पर सारों । जा पूण है जनता है विगडता है वदनता है उमना मना पुद्गल है । क्या है पुद्गल ? पुद्गल बहु द्रव्य है जिनका आवार ह जा लिघायी द मवता है । पुद्गल यह द्रव्य है जिनम वण गध रम पयार्ये है किन्तु इतना सब हा कर ता पुद्गल स पान गुण नही है गणन गुण नहा है । उदाहरणत नया चम्र पहिनना मात्र पुद्गल-ध्वन्या है । एक ग्या अनंत परमाणुओं वा समजाय है । रसा स तन्तु और तत्तु स वस्त्र है मयाग-सत्र है । इस तरह स्वघ बनता है । स्वघ बन कर पुद्गल इन्द्रिया वा विषय बनता है । पुद्गल व भी दा भद हैं—अणु स्वघ । अणु कभी स्थूल दृष्टि वा विषय नहा हाता । यही तर कि कई

स्कन्ध भी आँखों से देखे नहीं जा सकते। स्कन्ध किसे कहेंगे—ममूह को। जैसे इन सभा में इस समय भी कई परमाणु उधर-से-उधर दौड़ रहे हैं, किन्तु वे ज्ञानियों की दृष्टि में स्कन्ध है। धूप है, छाया है, छाया के बीच में कोई धूप की टुकड़ी है तो लगता है कुछ छोटे-छोटे अस्तित्व उठ रहे हैं। वे जो उड़ते दीर्घ पड़ रहे हैं, वे भी अनन्त परमाणुओं के समवाय पुद्गल हैं। जो यह तन्तु है, और इन तन्तु से जो वस्त्र बना है, वह पुद्गल-पर्याय है, किन्तु इन पुद्गल-पर्याय की प्राप्ति में मुस्कराने यानी राग करने का जो कार्य कर रहा है, वह जीव कर रहा है, क्योंकि राग-भाव जीव में ही है, भले ही यह उसकी अज्ञान परिणति है। राग करने की शक्ति वस्त्र में नहीं है। वह निर्जीव है। अजीव है। उसमें चेतना नहीं है। अनुभूति नहीं है। ज्ञान गुण नहीं है। ज्ञान गुण आत्मा में ही है।

आपने हजार का सूट पहिन लिया, किन्तु पहिन कर आप ही मुस्करायेगे, सूट नहीं मुस्करायेगा। उसे कोई खुशी नहीं होगी। मिल को देखकर मिल मालिक को खुशी होगी कि 'ओह, मेरी कितनी बड़ी मिल है।' किन्तु इतनी/यह विजाल मिल कभी मालिक को याद करके मुस्करायेगी नहीं, क्योंकि मिल में चेतना नहीं है, मिल में अनुभूति नहीं है। वह तो मात्र एक पिण्ड है, पुद्गल-पिण्ड। ईंट, चूने, पत्थर से बनी एक निर्जीव इमारत। इस इमारत को देखकर वही मुस्करायेगा, जिसका इस बिल्डिंग से सबन्ध है, ममत्त्व है, अपनपा है, मोह है, किन्तु बिल्डिंग में मुस्कराने की ताकत नहीं है। पुद्गल है। जड़ है। अनात्म है। आत्मा नहीं है।

आपने हीरे की एक पचास हजार की बडिया अँगूठी पहिन ली। अब आप मुस्करायेगे, किन्तु क्या अँगूठी मुस्करा पायेगी कि धन्य हुई मैं एकेन्द्रिय कि पचेन्द्रिय हो उठी? कदापि नहीं।

सोने की एक फाँस यदि गिर जाए, एक तोला नहीं, एक चौथाई तोला सोना यदि गिर जाए तो आपके आँसू गिरने लगेंगे, किन्तु दूसरी ओर मृत्यु के क्षणों में हजार-पाँच सौ तोला सोना छोड़ कर जाने वाला नहीं रोता। जाने के क्षणों में तो वही रोयेगा, जिसमें मोह होगा, आमकित होगी, किन्तु शव होने के बाद, जड़ होने के बाद, अनुभूति-शून्य होने के बाद, धड़कने बन्द होने के बाद—जो पिण्ड है, वह क्या इन क्षणों में उफ़ भी कर पायेगा? यूँ कि मेरा हजार तोला सोना बहुत मुश्किल से जुटा-दवा कर रखा है, किसी का अधिकार छीन कर रखा है, हिस्सा-बाँट करके गलत ढंग से हथिया कर रखा है—वह मेरे साथ इस क्षण नहीं जा रहा है। नाना पापकर्म करके कमाया होगा इसे और कमाई के उन क्षणों में बड़ा मुस्कराया होगा। बहुत मुस्कराया होगा सिर्फ देख कर, पहिनने का तो मीका ही नहीं आया। कई लोग तो यहाँ तक कहते हैं—'महाराज, रोज पहिनने से अँगूठी घिस जाती है, इसलिए इसे नहीं पहिना है, नहीं पहिनते है। घिस

जाएगा सोना, इसलिए मात्र उसके दशन किये हैं मात्र उसे सग्रह में घोष कर रक्खा है, किंतु सुनो, जत्र शरीर स आत्मा निकल गयी, अनुभूति की शक्ति निकल गया चान दशन-गुणा स जा सपन्न था वह निकल गया, पछी पिंजरा छोड़ कर निकल गया तब क्या कोई कह पाया कि मरी राखा का यह जा विरिडय खडी है इमगा ठीक म रग रोगन करा देना ? क्या ऐस क्षणा स कोई कह सका कि कितना सामान मीन इकट्ठा किया, कितनी खुशी स इमे खरीदा-बसाया कितना बार बाजार से इस लीया-लाया ।।

वस्त्र है । वस वस्त्र की जरूरत नहीं है पर क्या करें नहीं डिजाइन पसन्द आ गया । रंग पसन्द आ गया । जरूरत स अधिक मरा पडा है । पत्रह-बाम, पन्चीस-तीस जाडें हागा । यो ही मरा पडी हैं । पर नहीं डिजाइन आ गयी । उम ता लना ही है । आज के युग स ता वस्त्रा की ऐसी क्वालिटियां चन निकली हैं कि ३४ वस्त्रा स मन मले टी फट जाए, किंतु बंधन न फटगा न घटेगा । वह बन्दल जाणगा । समय स प्रहार उस पर हागे किंतु जब उस खरीदा था, जब वह कर्जी के यहाँ स मिल कर आया था तब ता उस पुद्गल स प्रति आकषण था किंतु आकषण घटत घटात जब उस दा-तीन बरस पहिन किया तो मन ऊन गया, ता क्त्ता है 'दिने कितनी को । ख दा कहा अथत्र । उम समय उस पुद्गल स उस प्रमन्नता हुई थी अब जुगुप्सा हा रहो है । पहिने की इच्छा नहीं है । वह रहा है—'फैर दो इम' । भय के प्रति आकषण है, इसलिए पुरान के प्रति घृणा है । जरूरत तो नहीं है किंतु इस जाव को नय-नय पुदगता स जो आकषण है वह बार-बार तमाग करता है कि य खरीद ता वह खरीद ला मत्र खरीद ता क्यापि ऐगा करा स उस मुख मिलता है तथापि उम इमका पता नहा है कि इम तरह प्राप्त मुख की उम कितनी है वह दिनना दर के लिए भिन्नता है ? कुछ क्षणा स बाद कोई भी मुख प्राय दुःख या ऊन स बदल जाता है । ह्य विपाद स बदल जाता है । संयोग विभाग स बन जाता है । समृद्धि स या ता वेचना खती है या आँसू घुगी खती है पर जाने हम इस धून भत्य का कि राग-द्वेष स परिणामा स आना स क्या हा रहा है—स्व हिमा ।

हमारी सारी बातें स्व हिमा पर चन रहा है । बढ़या स इम सूत्रम स्व हिमा का गमन बिना पर हिमा स बचन के भाव आय, किंतु स्व हिमा स बचन स भाव/उपमान नहीं आया । स्व-द्रव्य हिमा स बचन स भावता आन है किंतु पर भाव हिमा स बचन स भाव रहा जात । जब तत्र भाव अहिमा स जीवन स उन्म नटा हागा तब तत्र नवर भाव का प्रयन ही नहा है । मात्र पुण्य क्रिया है और इम पुण्य क्रिया स भी यदि परिणामा स शुभता/पुभता है, परिणामा स यदि आत्म-द्रव्य है परिणामों स यदि अभिमान सहिन स्थित है ता वह पुण्य-बध है



अन्यथा पुण्य सजा हो कर भी मामान्य-मे-मामान्य पुण्य-बन्ध होगा। कभी-कभी तो पुण्य-प्रवृत्ति में भी पाप-बन्ध हो सकता है, यथा, जब अभिमान का पुट होता है, जब दिखावे का भाव होता है, तब किसी में प्रगल्भा पाने का भाव होता है।

प्रगल्भा पाने के क्षणों में की गयी शुभ क्रिया भी एकान्त मुख का बन्ध नहीं है, पाप का ही अशुभकारी बन्ध है। इस जीव ने किया बहुत है धर्म; किन्तु धर्म का मरम ममज्ञे विना किये गये धर्म से कल्याण नहीं होगा। बहुत किया है इस जीव ने, कम नहीं किया है। कई प्रकार की साधनाएँ की हैं। कई तरह से शरीर को सुखाया है। कई प्रकार की तपश्चर्याओं ने काया को कृष्ण किया है। अपने प्राणों को ब्रह्माण्ड में स्थिर किया है। आसन जमाया है। हठयोग किया है, किन्तु आत्मलक्ष्य के विना साधना अधूरी-की-अधूरी ही रही, क्योंकि वह लक्ष्य नहीं आया, जहाँ भाव की प्रधानता है। भाव से जो पुण्य-क्रिया है, वह मोक्षार्थ नहीं है, आत्मकल्याणार्थ नहीं है। आत्मकल्याण के लिए पहले तो जीव के स्वरूप को समझना होगा, फिर पुद्गल का स्वरूप जानना होगा। जब जीव और पुद्गल के स्वरूप अलग-अलग समझ में आ जाएँगे, तब मन में विवेक आयेगा. 'ओ हो, मैं अनादि काल से स्वयं अपने ही परिणामों से अपने आत्मस्वभाव का घात कर रहा हूँ, अपने ही परिणामों से अपने ही स्वभाव का घात कर रहा हूँ। किसी ओर का नहीं, अपना क्षय, यह किन्तु निमित्तों में कर रहा हूँ?' निमित्त क्या है—सोना, चाँदी, धरती, धन, कुटुम्ब, सतान, पत्नी? ममार में निमित्त जितने भी हैं, उन सब में यह जीव राग-द्वेष के परिणाम करता ही रहता है। राग-द्वेष के परिणाम हर-हमेस ज चलते रहते हैं।

राग-द्वेष के जो परिणाम हैं, उनमें ही आत्मस्वभाव का घात होता है। इसी से घातिया कर्मों का बन्ध है। घाती कर्मों का यह बन्ध जीव निरन्तर करता आ रहा है; ऐसी स्थिति में आत्मा का जो सहज स्वभाव है, वह प्राप्त कैसे होगा? प्राप्त कैसे हो, प्राप्त होने का प्रयत्न ही नहीं है, क्योंकि उसे अभी तक समझा ही नहीं है, समझने का कोई पुरुषार्थ ही नहीं है।

यद्यपि पानी का स्वभाव शीतलता है, किन्तु अग्नि के सयोग से उसे अलग करे ही न तो फिर उस शीतलता का अनुभव कैसे होगा? क्रोध, मान, माया, मोह, लोभ—ये आत्मा के स्वभाव नहीं हैं, विभाव हैं, उनके धर्म नहीं हैं, अधर्म हैं। परन्तु जीव ने इसे कभी समझने का पुरुषार्थ ही नहीं किया। सूत्र कण्ठस्थ कर लिये। सूत्रों का शब्दार्थ समझ लिया, और कहने लगा मुझे इतने सूत्र याद हैं, मुझे इतने थोकड़े याद हैं, मुझे इतना याद है, मुझे उतना याद है। मस्तिष्क को पुस्तकों का सग्रहालय बना लेना कोई बड़ा करिश्मा नहीं है। शब्दों को रट कर 'मैं पण्डित हूँ', ऐसा अहम् करना भी लाभकारी नहीं है। जानियो उन पण्डितों

को जाननी नहीं कहा है जिसे आत्मा का ज्ञान नहीं है। आत्मज्ञान के बिना वाह्य ज्ञान अज्ञान ही है, क्योंकि वह अहम् का कारण है। व्यक्ति जितना पण्डित बनगा जितनी विद्वत्ता उमम आयेगा, जितना अधिकार उम मित्रगा, सत्ता-सम्पत्ति स जितना वह जुबान उतना हा यदि आत्मज्ञान उम नहा आयगा ता य मव सिफ अहम् के कारण बनेगे इसीलिए जानियो न कहा है कि मद के आठ प्रकार हैं— जातिमद कुलमद, रूपमद ऐश्वर्यमद तपमद, ज्ञानमद आदि। यहा भी जानिया न पक्षपात नहा किया है। उन्होंने ऐसा नही किया कि समारिया स कह दिया कि तुम्हें मन् है आरत्यागिया स कह दिया कि तुम्हें मद नहीं है। ज्ञानमद तप मद उनकी निष्पक्षता के प्रमाण है। तप का भी मद बता दिया क्योंकि तप के स्वरूप का समझे बिना जा तप किया जाता है वह भी अहम् का कारण बनता है। तप करना अच्छा है। तप करना जरूरी है। मरा आशय समक्षिये। केवल शब्दा को न पवडिय। तप करना जरूरी है। तप निजग का प्रमुख कारण है। तप कम पाठ का चिनगी/प्रजल चिनगी बन कर जना डानता है। वह जरूरी है। बहुत जरूरी है पर तप के स्वरूप का समझ कर जा तप करता है उस अहम नहीं हाता और जा उम अगर समझे करता है, उमके लिए वह अहम् का मुख्य कारण है। यदि तप के निमित्त म भी प्रशन्ता का भाव रखता है। प्रशन्ता का प्रमन्य हाता है। तप किया और उमके स्वरूप का नहीं समजा दुभाग्य ।।।

कब समयगे? वह कौन-सा जन्म हाता? वह कान-सा जावन हागा? वह कौन-सा अवसर हागा? तबचोरासी जानिया से यदि सर्वाधिक विवर्धित ज्ञानतनु इसे मिले है तो इम मनुष्य-जावन म। यही जावन है जिमम श्रेयस्तर बुड हम पर गाते हैं, किन्तु उरें कम?

कर माना है। स्व-ज्ञान और पर-ज्ञान के सम्यक्-बोध स। स्व-ज्ञान और पर-ज्ञान के स्वरूप का समझे बिना हा हर समय आत्मा का घात हा रहा है उसका स्वरूप देव रहा है। हर समय आत्मा की हिमा है अनन हा राग-द्वेष के परिणामा के कारण। राग-द्वेष के जा परिणाम आ रहे हैं व सब दृश्यमान जगत् के कारण आ रहे हैं—नयाकि इम जीवन न उहें हा महत्यपूर्ण मान रखा है। इमने उम सबका म रूप म स्वाकार कर लिया है। किम रूप म? एक अवस्था विगम म। अवस्था विशेष म। यह जन्मका विशेष कम-व्यवस्था है। यह व्यवस्था ता परिवलनागत है जानना रहता है। इम बदलता हुई अवस्था का हा वह म रूप मान रहा है।

एक सीटी की म्वय का जाननी है कि म चाटी है। एक मच्छर भी मानता है कि यह मच्छर है। एन घाटा भी अपना म्यति/हिमिता का जानता है, किन्तु म मनुष्य है म मनुष्य है वन जाना ही रट है या इमके आगे नी बुड

है। 'मैं मनुष्य हूँ' यह कथन तो काल-सापेक्ष है। यह तो पुण्य-प्रकृति का उदय हो गया। यह तो पचाम-साठ माल की जो नियत यात्रा है उम आघार पर हमने माना है।

यदि आपसे पूछा जाए कि आप यहाँ कब से हैं? तो आप कहेंगे—'मैं यही रहता हूँ'। 'यहाँ रहते हैं' यह काल-सापेक्ष कथन है। यहाँ तो अब है, किन्तु आप पहले भी थे, कभी नागौर में रहे होंगे, कभी जोधपुर में रहे होंगे। तब भी आप थे। वहाँ भी कभी किसी मकान में, कभी किसी मकान में, आप रहे होंगे। मकान बदला होगा, किन्तु आप नहीं बदले। यदि आप बदल जाते तो अनुभूति किसे होती? अनुभूति की शक्ति आत्मा में है इसलिए अनुभव के बल पर आप बोल रहे हैं कि 'मैं पहले वहाँ था। पहले वहाँ नौकरी करता था। पहले इतनी तनख्वाह मिलती थी। अब इतनी मिलती है। पहले मेरा कार्यक्षेत्र यह था। अब यह है।'।

एक व्यक्ति ने कहा 'महाराज, आज से दस माल पहले तो मैं इतना ही सोचता था कि मुझे यदि पाँच सौ रुपये प्रतिमास मिल जाएँ तो उतना काफी है, किन्तु आज मेरी हालत यह है कि दस हजार रुपये महीना महज ही वैक-वैलेन्स बढ़ जाता है, तथापि मन कहता है कि वैलेन्स और बढ़ाओ और बढ़ाओ। विचार बदल गये, भाव बदल गये, किन्तु भावों/विचारों को जानने वाला मीजुद है। विचार तो क्षण-प्रतिक्षण बदलते हैं, किन्तु विचार बदल गये, विचार बदल रहे हैं—ऐसा अनुभव करने वाला तो ज्यो-का-त्यो विद्यमान है। यदि विचारों के साथ विचारक भी बदल जाता है तो वह विचारों को जानता था यह आज हम कैसे कह पाते? नहीं कह पाते। विचार-बदलते रहेंगे, अनुक्षण बदलते रहेंगे, किन्तु इन्हें जानने वाला जो चैतन्य है वह नहीं बदलेगा। वही तो ध्रुव है।

इसे जानना ही आत्मा का ज्ञान है। इसे ममज्ञान ही आत्मा का ज्ञान है। इस आत्मज्ञान की भूमिका में हम यदि इस मनुष्य-जीवन में नहीं आये तो ज्ञानी कहते हैं, आगम कहता है कि 'मनुष्य-जीवन पाया और अकारण खोया। पाया और खोया। इससे अधिक कुछ नहीं किया।' क्यों नहीं किया? क्योंकि जगत् के, दृश्य-मान् जगत् के, आकर्षण में ही बँधा/जकड़ा रहा। धन-धरती को बटोरने में लगा रहा। दुनिया की आँखों में महत्त्वपूर्ण बनने के भाव में बना रहा।

प्रमुख ममस्या है कि आदमी उसे जितनी जरूरत है, उतना नहीं, उससे बहुत अधिक प्राप्त करना चाहता है। जरूरतें, देखा जाए तो, बहुत कम हैं। मैंने एक व्यक्ति से पूछा 'आप स्वयं अकेले हैं। आपने अपनी जिन्दगी में कमाया भी खूब है। आप खुद कह रहे हैं कि इस मोहल्ले में आपके पास चार मकान हैं और हरेक मकान में तीन-तीन खण्ड हैं। एक-एक खण्ड में छह-छह कमरे हैं।' मैंने बात आगे बढ़ाते हुए सहज ही पूछा 'आप लेटते कितने कमरों में हैं? कितने कमरों



या कोई आत्मगुद्धि की बात करता हो, उसे आप जैसा टके-मा रखा उत्तर दे देते हैं, क्या ही अच्छा हो कि मृत्यु को भी आप ऐसा ही जवाब दे। उसे भी कह दें मैंने जिन्दगी-भर जो इतनी कमाई की है, वह क्या तेरे साथ चलने के लिए की है? क्या इतना जो मैंने अर्जित है, यहाँ छोड़ जाने के लिए कमाया है, इतना पाप जो मैंने अपने सिर पर लादा है इन पदार्थों के संग्रहण में तो इसे क्या वे लोग भोगे जो मेरे पीछे छूट जाएँगे? मृत्यु, जा किसी और के पाम चली जा! किसी भिखारी के पास चली जा, किसी फकीर के पाम चली जा, किसी माधु के पास चली जा, किसी कगले के पाम चली जा, क्योंकि वह मरे तो क्या, और जीये तो क्या, मेरे पास क्यों आयी है? देख, मैंने तो इतना कमा लिया है कि इसे सी वर्षों तक देख कर भी मन नहीं भरेगा।'

व्यक्ति ड्राइंगरूम के दर्शन कर उतना ही खुश होता है, जितनी आत्मा भगवान् के दर्शन से प्रमत्त होती है। उसकी आँखों में इतना खिंचाव/आकर्षण होता है। क्या साहवी है, किन्तु हे किमकी? यह तो एक अवस्था है। एक पुण्यकर्माश्रित उपलब्धि है। जीव हमेशा-हमेशा इस अवस्था में नहीं रहेगा। पर यह जीव, यह तो स्व-भाव को, आत्मस्वरूप को समझे बिना समार के बीच राग/द्वेषात्मक सम्बन्धों को ले कर खड़ा है। हर समय भावहिंसा कर रहा; क्योंकि नये-नये पुद्गल-आकर्षणों में इनका रागभाव जो है। पुराने पुद्गल-रूपों पर इनका द्वेषभाव है। भोजन के समय पुद्गल की एक पर्याय है, एक व्यवस्था है। उस व्यवस्था को जीभ पर रखते समय कितना मुस्कराता है, कितना उत्लखित होता है? चाहे दही-बड़े हो, चाहे गुलाब-जामुन, चाहे रसगुल्ले-पुद्गलानन्द ही तो हैं। उनके पास आनन्द की इसमें अधिक पहिचान नहीं है। यह उमकी सीमा है।

उसे इसी में आनन्द है कि नये वस्त्र पहनूँ, नये जेवर पहनूँ, नये पकवान खाऊँ, नये मकान में रहूँ। मान प्राप्त हो, महत्व मिले, ड्रष्ट/इच्छित मिले, आशाएँ फलित हो, मात्र इम/इतने को ही वह सम्पूर्ण जीवन का मार समझा है/समझता है। पर ऐसी स्थिति में उमने कभी अपनी आत्मा पर दया नहीं की, और जब तक वह अपनी आत्मा पर दया नहीं करेगा, जब तक अपनी आत्मा को राग-द्वेष के परिणामों से बचाने के भाव उसमें नहीं आयेगे, तब तक उसका यह मनुष्य-जीवन सफल-सार्थक नहीं होगा। यदि इतना वह नहीं कर पायेगा तो राग-द्वेष के परिणामों की गठरी सिर पर रख कर विदा ही जायेगा। अन्तिम क्षणों में सिवा एक सूक्ष्म जगत् के, पाप-पुण्य की अतिसूक्ष्म फिल्म के इसके साथ कुछ नहीं जाएगा। फिर कहीं नया सृजन होगा और फिर उसी नयी अवस्था को आत्मरूप मान लेगा। ऐसी स्थिति में आत्मकल्याण की कोई स्थिति नहीं वनेगी, कर्म-भोग की एक अन्तहीन श्रृंखला बनती जाएगी जिसे कभी भी काट पाना सम्भव नहीं होगा।

—द्वंद्वीर • २१ जनवरी १९५२

एक दिन एक व्यक्ति ने एक दुकानदार से पूछा कि भाई जब भी मैं जाता हूँ, तुम सान व जेवर की बात करत हो। दिखते हो ता मान व जेवर आर खरीदते हो ता साने व जेवर। म पर उमन कहा यह क्या काइ नइ बात है या काई बडी बात ह ? मरा व्यवसाय ही सान का ह।

जिमका जा व्यवसाय होगा उससे पाम बहा माल होगा। जड-जगत का बाजार ता बन्त विस्तत ह बन्त व्यापक ह। मवन जड-जगत का हा परिचय हाता है। चाहे वपडे की दुकान पर जाय्य चाहे सान की दुकान पर जाइय। चाहे बाजार म जाइय चाहे कहा जाइय। वही न-वही जड-जगत स ता हमारा मम्बक, हमारा मम्बध निरन्तर रहता है।

मत्सग-मभा म आत्मचर्चा हाती है। वहाँ चेतना का महत्व है। वहाँ चेतन का जागत परत का बात हाती है। चेतन का सम्यजन की बात हाता है क्वाकि आप, आपका भूल गया इमम क्या अधेर। यह जाव स्वय का भूल बठा है। जाज स नही अनाधि बात स भूल बठा है मचाइ यह है कि इमक बिना यात्रा नही, इसक बिना शरीर का मन्त्रियता मा नहा है। इमक बिना पदार्थों का निरीक्षण और पराक्षण भी नहा है। इमक बिना ता जगत म बुठ भी नही है। जगत हमार भातर ह। जगत हमार अवर ह। हम बातर व जगत को तो खूब देखत म उस पमद भी करत हैं नापमान भा करतें हैं निन्तु म्वय के भातर जा जगत है उम जगत का हमन नही जाना। उस जगत का हमन नही पहचाना कि जिनका हमन जितना जाना है उसा जगत के जाधार पर हमारी वाहर की यह यात्रा है। उमके लिए हम खूब मन्त हैं खूब मावजान ह। जमे ही वादल हुए जस ही ठनी हका चला, बुठ वपा हुइ मैन स्वय न भी भाचा कि प्रकृति अनुकूल नही ह तो जान वाता न भी कहा कि महाराज प्रकृति अनुकूल नही ह। यह सर्ती का मोमम है। यदि आपने स्वास्थ्य म गडबड हा जाणगी तो ध्यान रखना पडेगा, क्वाकि व्याख्यान का वायक्रम निश्चित ह पच्चीम। मैन नहा बिलकुल ठीक बात है। मैं सावधान हुइ। यहाँ तक कि वाग्निश का कि जुवाम जल्मा म जल्दा ठीक हा जाए।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति हमारे शरीर को प्रभावित करती है। उसका हमें बराबर ध्यान है। उससे बचने के लिए हम जागृतक भी हैं। बाधक कारणों से बचते हैं, साधक कारणों को उपयोग में लाते हैं। मर्दी से बचना हो तो, यह भाव बराबर रहेगा। गर्मी में गर्मी से बचना, यह ख्याल बराबर रहेगा, क्योंकि शरीर के स्तर पर जीने वालों के लिए शरीर महत्त्वपूर्ण है और जब शरीर महत्त्वपूर्ण है, शरीर के प्रति रागात्मक भाव है, शरीर को ही मन-बुद्धि से माना है। शरीर ही सब कुछ है तो शरीर-बुद्धि से पूरी खिन्दगी हर जन्म में हमने जीयी थी। अनन्तकाल की यात्रा शरीर-बुद्धि के आधार पर चलती रही है। इससे शरीर की प्रकृति के लिए जो अनुकूल है उसे पाने, और शरीर की प्रकृति के जो प्रतिकूल है, उससे बचने का प्रयत्न बराबर होता है, पर क्या कभी हमने विचार किया कि शुद्ध आत्मा-स्वरूप की प्राप्ति में क्रोध बाधक है, मान बाधक है, माया बाधक है, लोभ बाधक है। यह हास्य रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा जितने भी विभाव-भाव है, ये सारे ही आत्मशुद्धि में बाधक हैं। शुद्ध आत्म-स्वरूप की प्राप्ति में बाधक है तो क्या इन्हें बाधक मान कर हमने इनका त्याग करने का विचार कभी किया है? क्या आने से पहले इनके आने को हमने नकारा है? क्या आने के क्षणों में हम नावधान बने हैं?

वर्षा आती है तो हम सावधान हो जाते हैं कि एक-दो ऊनी वस्त्र और ज्यादा लपेट लो इस शरीर पर, कहीं सर्दी न लग जाए। और गर्मी में यदि पसीना आता है तो पखे का उपयोग कर लेते हैं। वातानुकूलित कक्ष (एयरकंडीशड रूम) का उपयोग कर लेते हैं, कूलर का उपयोग कर लेते हैं कि शरीर को पसीना नहीं आना चाहिये। उन प्रतिकूलता से बचने के लिए कितने उपाय हैं, क्योंकि शरीर में ही आत्मबुद्धि है। शरीर केन्द्र-बिन्दु है। शरीर के इर्द-गिर्द ही हमारी जीवन-यात्रा होती है, किन्तु जानी कहते हैं कि केवल मनुष्य-जिन्दगी में ही आत्मा के महत्त्व को समझा जा सकता है। आत्मा का मूल्यांकन ही सकता है। आत्म-स्वरूप की प्राप्ति में जो बाधक भाव है, उनसे बचा जा सकता है। पर अभी हम आत्मसाधक नहीं हैं। अभी तो हम इन्द्रियों के साधक हैं, हम विषय-कषायों के साधक हैं, हम बाह्य-जगत् के पदार्थों को प्राप्त करने के साधक हैं। इससे हमारी साधना उधर-ही-उधर चलती है। साधक तो हैं—पाँच इन्द्रियों के विषयों की पूर्ति करने के, आत्मशुद्धि के लिए हम साधक बने कहाँ हैं? अभी तो उस ओर हमारी रुचि ही नहीं है। बहुमान ही नहीं है। महत्त्व ही नहीं है। मन में भाव ही नहीं है कि मैं सिद्धी के वश का हूँ। मैं वह चैतन्य शक्ति हूँ जिसका ज्ञायक स्वभाव है और यदि उसके अज्ञान का आवरण हट जाए तो तीन लोकों को तीन कालों को एक समय में जान सके, ऐसे निर्मल ज्ञान की पर्याय वह है।

सारे जगत् को जानना और देखना, यह आत्मा का मूल स्वभाव है, मूल गुण है। इन्द्रियों उसकी निर्मलता है पर उस आत्म-शुद्धि को मैं उपलब्ध करूँ, ऐसे भाव आते ही नहीं हैं। आये तो उनकी रुचि बने। रुचि हो तो फिर बहुमान बने, जगो। बहुमान जगो

तो प्रयत्न करें। नीतर जान का प्रयत्न करें। अपनी ही आत्मा व शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करने का प्रयत्न करें और यदि यह अतयात्रा प्रारम्भ करना है तो फिर कुछ समय के लिए इस शरीर की भारी छिटकिया बन्द करा। उनमें स झंकिना भी बन्द करा। बालना बन्द करा। सुनना बन्द करा। सूचना बन्द करा। स्पशन इन्द्रिया व विषय को भी बन्द करे और पाँच इन्द्रिया रूपा छिटकिया का बन्द करके नीतर बठ आत्मदेव का जगाआ। जागा, जागा, जागो। चतय का जगाआ। जागन का अवसर है। जागन का समय मात्र मनष्य पयाय है जीर विमा जिन्गी म न्म चतना का जगान जगान भी नहीं मित्रेया और चतय म ताशन व भाव भी नहा जगेंगे। कहा न्म जगेंगे। मात्र मनुष्य जिन्गी है। पर उम एतमात्र मनुष्य जिन्गी का जा आत्म उपाय व लिए महत्त्वपूर्ण ह न्म जीव न महत्त्वपूर्ण नहीं माना। नहा माना यहा ता मिश्यात्न है। यही ता इगका अज्ञान है। और अज्ञान जान स नहीं अन त जान स है। क्या कभा माह का नीर टूटेगा? क्या अभी बाह्य आत्मा व जान छूटेंगे? क्या आत्मा अतभवि म जाणगी।

पानी कहन न तरी शक्ति कम नहा है। तरी शक्ति इतना है कि वह मार समार की शक्ति का मचालन कर सकता है। आज अणु-जगत् का ता शक्ति आ प्रयागात्मक रूप लिया है वह जिनम दिया है? इमी चतय न लिया ह। आज लान का जावाण म भी उढाया ह ता विमन उढाया है? जिसा शय न नहीं उढाया ह इमान न उढाया ह। इम आत्मा का हा यह शक्ति है कि इमन दिना का दूरी का घण्टा में बन्द लिया है। आर विन्म म भी कुछ हा मिनिटा म बात करा दा ह। और अब ता आगे एक रमा भा आविष्कार हुआ है या हा जाएगा कि जहाँ चन्म भी लिखाया दगा जार बात भी हा मकया। आवाज हा नहा मुनाया रगी जपन प्रिय व्यक्ति का अपन परिचार व व्यक्ति का आँखा स न्म भी मकेंगे। यह भारी शक्ति यह अणु-जगत् का जितना भी आविष्कार है अणु शक्ति का जितना भी प्रयागात्मक रूप है उमका मज्ञानव कौनह? उमका जाना कौन है? यहा आत्मा किन्तु जानिया न उम जान का 'अज्ञान कहा जा बघल पर-गणियों का विषय करता है। जानिया न उम जान का जान कहा जा जान आत्मा म रहता ह। आत्मा का ही जानापयोग है विमी और का रहा है किन्तु आत्मा का जानापयोग आत्मा ही नहीं रहता। जात्मा का हा जान नहा करता। वह ता जान हर समय कर रहा ह। कभी चानि व भावा का जान कर रहा है कभी मात व बाजार का जान कर रहा है कभा पीतल-ताँब व भाव मुन रहा है। कभा मकाना का कभा दुजाना का, कभी हाट-ढबनिया का। कभी रग का कभी रूप का। यह जान पर-गणियों का हा कर रहा है। पर गणियों में हा इमका जान बटा हुआ है। चारोंघ घण्टा म कान रमा मिनिट है कि जिन समय हमारा जान चतता स्वय का जान कर / हर समय-अज्ञान अज्ञान। हर समय अह-रगत



मे इसकी मति लगी रहती है और हर समय राग-द्वेष के परिणामो मे यह जीता है, जबकि जानी कहते है भाव-निद्रा त्याग कर, भावो मे ही जाग जा, भाव-निद्रा त्याग कर भावो मे ही जाग जा। चैतन्यचन्द्र सोता क्यों है? जन्म-मरण टाल। चैतन्यचन्द्र सोता क्यों है? जन्म-मरण टाल। गिद्ध-गम मुख तेरा, नहीं तू कगाल। यह जानियो का आवाहन है। जानियो का मनेत है। वे दावे के साथ कह रहे है। विश्वास के साथ कह रहे है। 'गिद्ध-गम मुख तेरा'—तू पहचान तो नहीं। तू विचार तो कर। तू किसी क्षण इस बात को मान तो नहीं। पर नहीं, नहीं। नहीं मानता, स्वय अपने आपको नहीं मानता। जगत् को मानता है। जो जन्मे वाला है, जो गलने वाला है, जो बनने वाला है, जो विगडने वाला है, जो टूटने वाला है, जो फूटने वाला है, जो छूटने वाला है, उसे खूब मानता है। उसमे खूब ममत्व करता है। उन सयोग-सम्बन्धो मे खूब रचा-पचा है। जानता है कि यह शरीर जनमा भी है, जानता है कि शरीर जलेगा भी, किन्तु उसमे उसका खूब मोह है। उसमे इसकी खूब रागात्मक वृत्ति है। उसके पालन-पोषण मे खूब मगगूल है और इस शरीर मे जो सम्बन्धित है, उनके पीछे वह पागल है।

जब जानी कहते ह कि तू पागल है, इसलिए कि तूने अपने-आपको कभी जाना ही नहीं। दुनिया की तूने चिन्ता की, दुनिया की तूने माल-मभान की, किन्तु कभी अपने-आप पर भी विचार किया? विचार ही नहीं करेगा तो प्राप्त कहाँ से करेगा? श्रीमद्राजचन्द्र ने कहा—'कर विचार तो पाय'। प्राप्त कर सकता है। प्राप्त करने की योग्यता है। अधिकार है, और वर्तमान मे तयैव सयोग है। पर यह जीव तो रचा-पचा है। इसे अवकाश नहीं है। समय नहीं है। इन्द्रियो के विषयो से छुट्टी नहीं है। खाने के प्रकारो से छुट्टी नहीं है, पहनने के नित-नये वस्त्रो से छुट्टी नहीं है। जो कुछ सामान है, उसे सजाने और सँभालने मे फुर्सत नहीं है।

इसे फुर्सत कहाँ है? जहाँ इसका राग है, जहाँ इसका ममत्व है, जहाँ इसका बहुमान है, जिसको इसने अपना माना है, उन सबके लिए तो खूब समय है। पूरी जिन्दगी है, किन्तु समय स्वय के लिए नहीं है और जब अपने-आपको विचार ही नहीं करेगा तो यह विचार आ कैसे सकेगा कि क्रोध की प्रकृति, मान की प्रकृति मेरी आत्मा के लिए बाधक है। यह भाव ही नहीं आता है। वह तो यह सोचता है कि क्रोध कितना भी कम हो, मान कितना भी कम हो, माया कितनी भी करूँ, धोखा-विश्वासघात कितना भी करूँ, पर मिल जाए मुझे। क्या मिल जाए? धन-सम्पत्ति मिल जाए जो दुनिया की आँखो को पीला करती है। वह मिलना चाहिये। वह आना चाहिये वह कैसे भी प्राप्त हो, फिर भले ही नरक मे भी जाना पडे, तो तैयार है। तिर्यच गति के धक्के भी खाना पडे, तो तैयार है। आज भले किमी का एक शब्द नहीं सुना, पर तिर्यच गति मे मार खाने को भी

तयार है। यहा अपराध का सहन, स्वाकार करन के लिए भी तयार नहीं अपराध का प्रतिक्रिया के लिए भी तयार नहीं है और वहाँ बिना अपराध के भा मार खाता है।

अभी-अभी नय मन्दिर म यहा तब पहुँचन क बीच रूँ गया का दखा। भूखी बेचारा बार-बार मन्त्रिया म मुह डालती है आर मजा बेचन बाल घडाघड लवन्धिया बरमाते हैं। उसी समय मुझे विचार आया—चेतन यहा तब मान-बपाय का क्या पता है। मनुष्य जिन्गी मं ता तू मान-बपाय पर चढा हुआ है। यहाँ तो तेरी मान-बपाय इतनी प्रबल है कि कोई वह कम से मुझे? एव शू भी क्या कह दे? मैं क्या सुनू? मैं किन्की सुनू? मुझे कहन जाना है कौन? यहा तब कि मैं नहीं रहू मवता इस घर में। सुनना मेरा स्वभाव नहीं हू मेरा आदत नहीं। सहनशीलता मेरे बम की नहीं हू। मैं पूछा इस जाव से पूछा। उस गाय का दर कर पूछा कि 'हे जीव वता, यहाँ तू वही भी आत्मपुरुपाय क लिए बठिन परिश्रम करना नहीं चाहता है। यहा ता दा शू सुन ता तुझे शोध आता है। दा शू कोई कहू ता आँखा से आँसू बरमत हैं। पर यह गाय मार खाती जा रही हू वह कुछ भी नहा कहता। वृत्ता कितनी मार खाता है कितन पत्यर खाता है वहाँ? वहाँ और जीव नहीं है और भी जाव हूँ। जसी आप म चतय शक्ति हू वमी चतय शक्ति उनम भी है। भूख-प्यास सब सब सहन कर रहा हू। मर्दी मं गर्मी, गर्मी म गर्मी। परिश्रम सचा ता कम नहा हागी, किन्तु 'परिश्रम ता तियच गति मं बहुत कम है। तियच गति मं कहा परिश्रम है? दा समय का भोजन भा किसी गाय भन का बघा हुआ नहा हू। मर्दी मं दा बन्ध भी का मानिक डाल दे ता अलग बात है नहा तो जगत म घूमन वाला क लिए ता दा बन्ध भी नहा हू। दा पम भी नहीं हू। इतन टू खामब निमित्त मं यह जीव कितन लम्बे बाल तब कितना बार घूम घूम कर जाया है। क्या जाया है? घूम कर। काय मान माया, लाभ हास्य 'ति अरति शाक' भय जुगुप्सा। आठ कम मना है। सनापति कौन है? मनापति माह है। माह सनापति है राजा है और आठ कम उनका मना है। यह मूर्च्छित भाव है। कौन-का मूर्च्छित भाव? शरार मं आत्मवृद्धि। शरार मं जा आत्मवृद्धि है वहा मूर्च्छा है आर जब तब वह मूर्च्छा छूँता नहा हू आत्मा आत्मा का जानता नहीं है तब तब आत्मा का शुद्ध स्वभाव प्रकट करन मं जो बाधक कारण है उन्हें छाडन का बात हा अच्छा नहीं जगता। उन बाधक कारणों का विचार करन की बात अच्छा जगता। उन बाधक कारणों का वही मैं स्वाध्याय म सुनू ऐग भाव नहा जगत। और वृद्धाचित् मुा भी मैं ता मुनन क बात उनका कितन मनन ही नहीं हाता।

बाधक भाव हूँ। कय विचार करें? जब शोध आय तमी विचार करा कि जाव तर लिए यह बाधक भाव है। तरा शुद्धि क लिए बाधक भाव है। तरा अगुद्धि

बढ़ जाएगी। एक हजार रुपये का नफा यदि बहुत गलत ढंग से हो तो अपने चेतन को कहो कि तुम अपने-आपको क्या दे रहे हो? तुम अपने लिए क्या तैयार कर रहे हो? माना कि दुनिया की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण बनने के लिए तो तुम लखपति बनने जा रहे हो। परिवार को खुशी देने के लिए तुम हजारों का सग्रह कर रहे हो। सन्तान के प्रति जो तुम्हारा मोह है, उस मोह के कारण तुम सग्रह में लगे हो। पर जरा विचार तो करो। बाहर में तो तुम पैसों का सग्रह कर रहे हो, मकानों का सग्रह कर रहे हो। तीन-चार इमारतों, हवेलियों का निर्माण करा रहे हो। दुनिया की दृष्टि में बड़े बनने जा रहे हो। पर आत्मा को कहाँ ले जा रहे हो? जिन भावों से, जिन निमित्तों से, जिन विषय-कषाय के संयोग से हर नमय तुम्हारी आत्मा में जो कर्म-बन्धन हो रहे हैं, जरा विचार तो करो कि तुम अपनी अगली यात्रा के लिए क्या कर रहे हो?

किसी और से पूछने की जरूरत नहीं, इस चेतन से ही पूछा। इस चेतन में तुरन्त कहा कि देख चेतन, मकान यहीं रह जाएगा। परिवार भी यहीं रहेगा। इस शरीर को कितना ही हूँट-पुँट बना, कितना ही अन्तहीन खा, भक्ष्य-अभक्ष्य खा, पर चेतन देख। यह शरीर यहीं जल जाएगा। तेरे साथ नहीं जाएगा। भले ही तू इसे साठ-सत्तर किलो का बना ले, पर यह शरीर यहीं राख का ढेर हो जाएगा। तीन-चार किलो राख, उस राख को भी कोई नहीं पूछेगा। वह जगल में उड़ती फिरेगी, इधर-से-उधर। वह भी एक शरीर की पर्याय होगी। वह भी एक पुद्गल का ही परिणामन होगा, किन्तु आज जिस पुद्गल से तू इतना मोह कर रहा है, जब यह पुद्गल राख के रूप में परिणामन करेगा उस दिन इस राख का मोह कौन करेगा? कोई नहीं करेगा। जीव, जरा विचार कर। तू अपनी यात्रा का विचार कर। जानी कहते हैं—जाग, जाग स्वयं-ही-जाग। किसी के जगाने से कुछ नहीं होगा। स्वयं को जागना होगा। स्वयं की रुचि से जागना होगा। जानी तो निर्फ संकेत देगे। मार्गदर्शन देगे। एक दिशा देगे। उन्होंने महत्त्व बता दिया है। केवल मनुष्य-जिन्दगी ही अध्यात्म-दृष्टि से, आत्म-कल्याण के लिए महत्त्वपूर्ण है। यह बताने के लिए, यह समझाने के लिए, नामालूम कितने ग्रन्थों का निर्माण किया है। उन जानियों का कितना उपकार है हमें हम सब पर। क्या उन्हें स्वार्थ-बुद्धि थी हमसे? उन्होंने अपनी आत्म-साधना के समय को आत्म कल्याण में लगाते हुए जो आत्मस्वरूप का अनुभव किया, अगत् के जीवों के लिए उन्होंने जिन शास्त्रों का निर्माण किया, वह महान् उपकार है, किन्तु हममें उस उपकार को समझने की बुद्धि नहीं है। उसके उपकार से अपनी आत्मा को लाभान्वित करने के भाव नहीं हैं। कृतज्ञता के भाव नहीं हैं, क्यों नहीं है? इसलिए कि हमारी दृष्टि तो मात्र चमड़े में है। हमारी दृष्टि तो मात्र संसार के वैभव में है। संसार के पदार्थों में है। हमारा दृष्टिकोण तो इतना ही है कि दुनिया की दृष्टि में 'मैं आगे पहुँच जाऊँ'

और जहाँ दृष्टि में बाहर का महत्त्व होता है वहाँ बाहर का दृष्टि से ही वह शब्द भी बोलता है।

कन-परसा ही किसी न वहाँ महाराज, उनका हम क्या हाड करें? उनको हम वहाँ लगे? मैं वहाँ, भिन्ना जमा जीव कभी कायर भापा बालता हूँ? किस अर्थ में? परु के अर्थ में। उनका हृम वहाँ लगे अर्थ लासता तो वही है। परु का कितना महत्त्व हूँ? मिथ्यादृष्टि के मन में परु का महत्त्व नही हो तो मिथ्यादृष्टि नही रहगी। सम्यक् दृष्टि होने के बाद कमा रहगा, परु का उपयोग रहेगा, विवेक में। अजन में भी विवेक और वितरण में भी विवेक। विवेक के बिना वह अजन भी नहीं करेगा। विवेक के बिना वह वितरण भी नहीं करेगा। अजन और वितरण दोनों में विवेक की दिशा हागा, क्याकि जिनमें जाव को जीव जान लिया है, अजीव का अजीव जान लिया हूँ जड को 'जड जान लिया है चेतन का 'चेतन' जान लिया है उमका यात्रा की दिशा स्वयम्बव वत्न जाएगी। और उसकी यात्रा की दिशा बदलगी तो वह खा जाएगा। वहाँ? स्वयं में। स्वयं को खोजेगा। खजेगा भी खादगा भी। वह बाजार का खजि कम कर देगा। भीतर की खोज ज्यादा कर देगा। खजे बिना खा नहीं सकता। जब कभी किसी के भी पाँव में काटा लग जाए। हो सकता है आप खागा के न लगे पर हम ता पद यात्री ठहर। नगे पाँव धूमत हैं ता काट लगन का अनुभव हम ता बहुत ज्यादा है। नामालूम कितनी बार काँटा लगते हैं किन्तु जम ही काँटा लगता है, काँटा लगन के क्षणा में पाव रुक जाता है और जस हा पाव रुकता है पहल खोजते हैं कि पूरे पाँव में काँटा किम जगह लगा है। उम जगह का खोजते हैं बार खोज कर ही नहा रह जाते हूँ, फिर खान्ते हैं और कुछ नहा मिले तो अभी कभी काँटे-स-ही काँटे का खान्त हैं। खान्ता कौन जा खजेगा वहाँ न? खजेगा नहा तो खोजेगा क्या? जमीन में भी पहले पानी खजोग फिर उस खादगे। वही काँई खदान भा होगा ता पहले खजोगे, फिर खान्ते। वरु हा इस जीव को, जीव के स्वभाव का प्राप्त करन के लिए खान्ता होगा। अनान भाव का खादना हागा। अनान की पत जब हटेगी तत्र वहा सच्चिदानन्द चतुर्थ स्वरु, जा इसा दह में विराजमान हैं दशन दगे और उसके दशन हागे ता जगत् के दशन से वह विभुख हो जाएगा।

जगत् का देखा, जगत का सुना, जगत् से बाना जगत् के पत्थरों का सप्रह करो किन्तु उमका दृष्टि में ता यह सब तत्र मात्र धूल रह जाएगा। दशन में मात्र पुदान की पर्याय रह जाएगी। उसका लक्ष्य वग रूप गद्य स्थान पर नहा जाएगा रूप और रग पर नहीं जाएगा। वह ता मात्र इतना ही विचार करेगा कि इस देह-देवल में भी आत्मा है। एव काडे का दखगा, यही विचार करेगा कि इसमें भी आत्मा है। सबत्र आत्मा-दशन करन के भाव उमके जाग जाएग। किसके

जाग जाएंगे? जो चैतन्य की यात्रा प्रारम्भ करता है उसके। जिम किसी ने जहाँ कहीं, जब भी चैतन्य की यात्रा प्रारम्भ की है, निश्चित रूप में उसने मनुष्य जिन्दगी का महत्त्व समझा है। मनुष्य-जिन्दगी के महत्त्व को समझे बिना जो केवल जड़-जगत् के विचार में ही जिन्दगी को समाप्त कर रहा है तो वह ज्ञानियों की दृष्टि में 'धूल धानी और राख छानी' है।

मुस्कराता है इन्सान। अरे माहव, यह बगला आप ही का है। जब क्या बोलता है? आप ही का है। और मन-ही-मन मुस्कराता है। ओह! मेरा बगला देख कर इनका मन कितना खुश होगा। कितना खुश होगा। अज्ञानी का ही होगा, ज्ञानी का तो नहीं होगा। ज्ञानी तो श्रावक भी कभी खुश नहीं होगा। आरम्भ-सभारम्भ की क्रिया का अनुमोदन वह नहीं करेगा। ज़रूरी करना पड़ेगा वह सब करेगा, किन्तु चलते-चलते कर्म-बन्धन ज्ञानी मोल नहीं लेगा।

अभी रास्ते में भी देखा कि एक व्यक्ति ने जब गाय को मारा है और मेरी नजर पड़ी, दूसरा व्यक्ति मुस्करा रहा है। उसको मार जो पड़ी है, मार से निश्चित उसे वेदना हुई है, किसी की वेदना में भी कोई मुस्कराता है। उसने लकड़ी मारी नहीं, लकड़ी मारने का कहा नहीं, किन्तु जो उसकी मुस्कान थी वह भी कर्म-बन्धन का कारण है। किसी के दुख में मुस्कराना यह कर्म-बन्धन है। किसी की व्याधि में शब्दों के घाव देना, यह कोई ज्ञानी की दृष्टि नहीं है। मैंने सुना किसी एक महिला को यह कहते कि जब साठ-सत्तर वर्ष की उम्र में किसी बीमारी ने विशेष रूप से आ घेरा और जब उसने अपनी ज़रूरत के लिए कहा, तो दूसरी महिला कहती है 'हाँ, अपनी ज़रूरत तो अब समझ में आ रही है, जिन्दगी में किसी की ज़रूरत पूरी की थी? क्या जिन्दगी में किसी की सेवा की थी? जब क्या स्वयं का समय था तब किसी की साल-सम्हाल की थी? आज स्वयं को ज़रूरत है तो बराबर ध्यान आ रहा है। मेरा यह करो, मेरा वह करो, मेरा यह करो।' मुझे लगा यह विवेक भी दे रही है और अज्ञानता का परिचय भी दे रही है। दूसरे-सुनने वालों को ज़रूर विचार करना चाहिये कि बुढ़ापा सबको आने वाला है और वृद्धावस्था में शरीर अधिकांशतः अस्त-व्यस्त होता है। तो सेवा की भावना से न करे तो भी कम-से-कम इस वहाने से भी हम वृद्धों की सेवा करे कि कभी हम भी वृद्ध बनेंगे। हमें भी कभी ज़रूरत पड़ेगी। जब हमें ज़रूरत पड़ेगी तो हम भी किसी की ज़रूरत पूरी करें। आप यदि किसी की ज़रूरत पूरी करेंगे तो आपकी भी ज़रूरत कोई पूरी करेगा। आप किसी के काम आयेगे, जो आपके काम भी कोई आयेगा। यदि आप किसी की ज़रूरत पूरी नहीं करेंगे तो आपके समय में कोई आपकी ज़रूरत पूरी करे, बहुत मुश्किल है। मुझे प्रेरणा भी मिली पर मुझे अज्ञानता का परिचय भी लगा कि इन क्षणों में इस प्रकार के

तात्रे शब्द ब्रानना, अग्यपूण शब्द जानता तात्रे का काम करता है। यह मजबूत है, नाचारा है। व्यक्ति सुनने वाला यहाँ महसूस करता कि है भगवत कर्म समय आया है नहीं कराना पड़ता तो अच्छा था क्योंकि जब यह कहने में लाभ भा क्या उमक करन के दिन नहा है। जब वह गारारिक स्थिति नहीं है। हमारा उपदेश लग नहा मवता है। मवा करन वाता यत्रि मवा करन का हर समय गिनाता रता है ता मैं एस लाग भी दख ह जिनकी आख बरमन उगता ह यह कहत कि हे महाराज न तर किसी का पराधान क्योंकि सब करन वाता तान बमता रहता है। अजा मुझे बाहर जाना है पर जाऊँ कम नवा राटा का बडी परशानी है। कही नहीं जा सकती हूँ क्योंकि जब दखा तब इहा इहा का ध्यान रहता है। पता नहीं कब नवा आयुष्य पूरा हागा और कब मुव छुडा मिनाता एस बटु शब्द भी परिवार क मन्स्य जानत हैं। य वास्तविकताए ह। पर ऐस शब्द प्रयाग कब हान हैं जब व्यक्ति स स्वाथ नहीं मघता। अर शरार काम नहा दता। जब पाम पसा नहीं रहता ता कही-बहा ता कुत्त-जमा कामत भा परिवार नहा करता। ऐसा भी हाता है। बिना पर टाण्ट या व्यग्य करना या उमम आमू निकाना काइ जान का परिचय नहीं है। हम कितनी ही बार कसा का करना म मुक्करात है कसा का गरीबी पर हँसन = किर्मी क बुढाप पर हँमत ह ता ममग लना चाहिये कि यत्र मात्र अनान है।

वह व्यक्ति जमे ही गाय का मार पर हमने जगा बाह-बाह। वास्तव में इमान बनना कोई बनी बात नहीं है। मानवता का विकास हाना जनी बात है। मानवता या विकास ही नहीं है इमक बिना अध्यात्मिकता प्रारभ हा नया हा मवती। मानवता ता नाव है। आध्यात्मिकता का महत्ता ता वात्र म उठेगा। पर मानव म मानवीय गुण भी नहीं हात। मानव म परम्पर एव-दुमर क दुःख-त्र म काम आयें एम भात्र भा नहीं हान। यहाँ वह शक्ति का परहित निरल हा नहा करता। ऐसी स्थिति म ता इमान आदृति म बन गया किनु जानिया का दष्टि म ता वह पनु ही है।

जानिया म एव वात्र नहा जनक वात्र कहा। एतद सुलना म बगअर घडा = कही आगे नम्बर नहा जिया जानिया न उम मनुष्य का जा कयन घान का एम ल रहा है भागा का रम न रहा ह कमान का रम ल रहा है मग्रह का रम ने रहा है। कयन इहा रसा म व्यक्ति का जिदगी बीत रहा ह ता जानिया न कहा भव ही तुम आदृतिमा म इमान वा गय हा किनु प्रादृति म ता पशु हा हा। तुमन इमान का इमान नया कहा क्योंकि तुमन इमानियत नहीं पाया। मानवता नहीं आयी और मावता नहीं आयी सीलिन शरावा का शायण करा म भी परेशानी नहीं है। सग्रह मात्र उसका लय है। मग्रह सग्रह क लिए नहा

होना चाहिये। मग्न वितरण के लिए होना चाहिये; मग्न भी दोन-दुखियों की सेवा के लिए होना चाहिए। सामाजिक मन्थाओं को महयोग देने के लिए होना चाहिये।

कभी मोचना चाहिये कि चलो अपना पुण्य राग हूँ उन पैसा आ रहा है। आ भी रहा है, तो जा भी रहा है। पर व्यक्ति की जानक्ति नहीं टूटती। कब नहीं टूटती? जब मोह की मूर्च्छा पत्रदस्त होती है। वह तो मगह-ही-मगह पनन्द करता है। और यदि आत्मजान हो जाए तो मोह की मूर्च्छा न टूटे, ऐसा हो ही नहीं सकता। हम अपने जीवन में विचार करें कि क्या हमारी मोह-मूर्च्छा टूटी है? आपने मुना होगा कि एक नत्सग-प्रेमी ब्राह्मण और ब्राह्मणी दोनों जा रहे थे। ब्राह्मण देवता आगे जा रहे थे। पीछे पत्नी थी। ब्राह्मण देवता कह रहे थे कि समय हो रहा है, समय हो रहा है, समय पर पहुँचना है। अपनी धुन में ही चलते जा रहे थे, किन्तु पूरी तरह अपनी धुन में नहीं थे। नजर नीचे भी थी। स्मरण करते हुए भी जा रहे थे। किन्तु धुन अटक गयी, मति भटक गयी, कब? जब स्वर्ण का एक आभूषण दिखायी दिया। जैसे ही वह दिखायी दिया, मति इतनी अटकी कि वह स्वर्णत्पा हो गयी, किन्तु नाद में विवेक आया कि मेरी पत्नी मेरे पीछे आ रही है। नारी-जगत् का माया-मोह ज्यादा होता है। लोग कहते हैं, पर पता नहीं यह कहाँ तक नृत्य है? और यदि ऐसा होता तो शायद पुरुष मोह छोड़ सकते थे। कमाई के गलत ढंग भी छोड़ सकते थे, इसलिए उन्होंने सोचा मेरी पत्नी आ रही है पीछे-पीछे। यह स्वर्ण है, जहाँ कहीं इसके दर्शन हो जाएँ तो सबकी आँखों पर पीलापन छा जाता है और यह जहाँ मिले वहाँ धन आये सुट्टी में, इन्मान जाये भट्टी में' की कहावत चरितार्थ हो जाती है।

कोई व्याख्यान मुना था जिसमें एक प्रसंग था कि एक व्यक्ति भगवान् के चरणों में जाता है, किन्तु भगवान् का वह भक्त नहीं है, वस्तु का भक्त है। पदार्थ का भक्त है। इस कामना से जाता है कि मेरे यह हो जाए, मेरे वह हो जाए। तो वह भगवान् का भक्त नहीं है, पदार्थ का भक्त है। वह तो वस्तु का भक्त है। वह सत्ता और सम्पत्ति का भक्त है। और सत्ता सम्पत्ति का भक्त है, इसलिए भगवान् के चरणों में जा कर कहता है 'प्रभो, इतना मुझे जरूर दे देना'। श्रीकृष्ण ने कहा कि नो सी निन्द्यानवे लोग है। मुझे भजने वाले की तो कमी नहीं है। मुझे भजने वाले बहुत हैं। दुख में मुझे कोई याद न करे, यह बहुत मुश्किल है। सुख में भले ही भूल जाएँ किन्तु दुख में तो मुझे याद करना ही होता है। पर नो सी निन्द्यानवे लोग मेरे लिए मुझे नहीं भजते। मुझे भजते जरूर हैं, पर मेरे लिए नहीं भजते। भजते हैं माया के लिए। मेरे लिए भजने वाला तो हजार में कोई एक मिलेगा माई का लाल।

पति न माया कि पत्नी का आग्रहों में वही पतिव्रता भी जाएगा और वही मन्त्रा जैन में नचना जायगा तो इस्तिण रहने माना कि मन माया का माह पर नहा इस्तिण उम पर मिट्टी डेंकन योगे किन्तु जमहा मिट्टी डेंकन योगे वमही उतत म पत्नी त्रिकट रा गयी आर बाता-स्वामिन मत्मग म जान क लिए जा महत्त्वपूर्ण समय ह उम का उपयोग जाय वहाँ कर रह है । मुझ नहीं ममम म आता कि मिट्टी-का मिट्टी म मन म तना प्रयत्न क्या कर रह है ? कैकड़ माह का मान जो स्वण का मिट्टी क रूप म देख कर क विरल्य ही न करे । पति न विरल्य ता विय, मठ न स्वण वा विरल्य ता विया बुद्धि म भेद ता गहा मान और मिट्टी वा, किन्तु उम ब्राह्मणा क मन म ता विरल्य मा नहीं ग्य । मिट्टी और मान वा भेद भा नहा रहा अत उसन कह दिया कि स्वामा मिट्टी-का मिट्टी स डेंकन वा प्रयत्न क्या कर रहे हैं ? एसी दण्डि जिस विसा का बन गयी हा बह किसी भी वश म हा वह किसी भी नेश म हा प्रणम्य है । उम तत शत नमन है किमन ऐस शुद्ध आत्म-तत्त्वन का सत्य वा ममन लिया ह । अमत्य का गग उतार दिया है ।

हम प्राय बुद्धि के स्तर पर शब्द का ममन लेते हैं किन्तु अस्य वा रग नहीं उतरता । दापन क लिए दा रुपय क लिए दुनिया-भर का धात्रा विग्वाम घात कर लें । न कीजें इधर म-उधर दा क लिए गहा जितना श्राध कर न । दो कीजें गट जाएं पट जाएं, कितना भा श्राध आ जाए पर इस जाव का क्या विरल्य नहीं आता । यह विचार नहा आता अर जाव तू किनना श्राध कर रहा है ? तेरा आत्मा और अशुद्ध हा रही है तू इधरता भजन भाव कक् मत्मग म कीतन म जा कर क आत्मा का शुद्ध करन की दान करता ह आर उधर बपाय भाव म आकर, विषय भाव म आकर उसे फिर मैता कर लेता है ।

काइ व्यक्ति बपडा घाता जाए किन्तु नाचे स काचड लमाया जाए । ऊपर से उपडा घाता जाए घाता जाए । काचड लगाता जाए घोता जाए और काचड लगाता जाय । उस क्या कहेंगे ? आपका, मरी ऐसी ही मति है । मैं आप लाग से अलग नहा हूँ । विलकुल आपके माय हूँ । मुये श्राध नहीं आता है, ऐसा बात नहीं है । मुझे श्राध आता है, मान माया लाम सन आत है । मैं ता यह सोच रहा हूँ कि सदगुरु का वृषा हा जाए और बपाय भाव हम निखायी दन नग जाए । हमारा गन्ता हम महसूस भी हान लग जाए ।

यदि हम अपना बुद्धि म अपन दुगुणा का दखन भी लग जाएं ता उन्हें जहर छोड़ेंगे । देखेंगे नहा ता भना क्या छाड़ेंगे ? और वही-वहा ता व्यक्ति को अपने तितन दुगुण हात में बबमही लगत हैं । उस ज्याग नहा लगते । जबकि शानिना न रहा -कभी श्राध को बबम मत मानना । धाव का कभी छाटा मत मानना ।



कर्ज को कभी कम मत मानना । काफी । लोग यही कहते हैं कि महाराज, क्रोध बहुत कम आता है मुझे । आता है, इसका दुख नहीं है । और जितना आता है, उसे छोड़ने की बात नहीं है । सन्तोष है । मन में प्रसन्नता है । इस बात की कि मुझे क्रोध बहुत कम आता है ।

जानी कहते हैं, दुर्गुण-तो-दुर्गुण है । काँटा-तो-काँटा है । कचरा-तो-कचरा है । छोटा क्या, बड़ा क्या ? कम-ज्यादा क्या ? पर व्यक्ति सन्तोष प्राप्त करता है । किसमें, कि बहुत कम आता है । कितने ही लोग मुझे कहते हैं, महाराज क्रोध आता है । है, पर बहुत कम आता है । बहुत कम आता है, यह ऐसे शब्द निकलते हैं, जैसे सन्तोष की साँभ ले रहा है ।

कर्ज को कभी कम मत मानना । यदि कर्ज को कम मानता रहेगा तो कर्ज व्याज के रूप में कब बढ़ जाएगा और कब अशान्ति मूल ले लेगा, पता नहीं । रूखी रोटी खा लेना, दो कपडों में जिन्दगी गुजार देना । दुनिया की देखादेखी में मत जाना । मूछों के चाँवल बताना कोई जरूरी नहीं है । वह दो दिन बताना दोगे । छह महीने तक भीतर-भीतर हृदय जलता रहेगा । कर्ज वसूलने लोग घर पर आते रहेंगे । मन-ही-मन परेशान होते रहेंगे । मूल से व्याज बढ़ जाएगा, इसलिए जानियो ने कहा कर्ज को कभी कम मत मानो और घाव को कभी छोटा मत मानो । घाव कब गहरा हो जाए, कोई पता नहीं ।

ऐसे ही क्रोध को कभी मत मानना । अग्नि को कभी मत मानना, क्योंकि यह थोड़ी भी कब ज्यादा हो जाए, कोई पता नहीं, पर, यह जीव तो सन्तोष प्राप्त करता है, क्यों प्राप्त करता है ? क्योंकि अब तक देह-स्तर पर ही जीया है । आत्म-शुद्धि की कोई कल्पना ही इसमें नहीं है, कोई भाव ही नहीं है, कोई विचार ही नहीं है, कोई विचार ही नहीं है, इसलिए शरीर की प्रकृति है नुकसान करने वाली । प्रकृति का—सर्दी-गर्मी की जो ऋतु है, चूमासे की जो ऋतु है उसका विवेक रहता है । उस ऋतु से बचने के भाव रहते हैं । दवा लेने के भाव रहते हैं । सब प्रकार से अपने-आप को यह सजग रखता है, सतर्क रखता है । सावधान रखता है । बाधक परिस्थितियों से दूर होता है, किन्तु आत्म-शुद्धि में क्रोध, मान, माया, लोभ की प्रकृति बाधक है, यह विकल्प इस जीव को नहीं आता । जिस दिन यह भाव आयेगा उस दिन ममज्ञिये कि 'सत्सग' का लाभ मिला आपको, मुझे, सबको ।

इस जाग को जाग का बोध कैसे है। इस आत्मा को आत्मा का ज्ञान कम है। इस चेतना का चेतना का द्योतन कम है। अनादिकाल का मुपुष्पि जागति म कम बल प्राप्त आत्मा अंतरात्मा कम बन बहिर्मुख वृत्ति म अतमपता का लक्ष्य कम जगे मात्र इस उद्देश्य इस ध्यय का न कर प्रतिष्ठा मत्सग का जायाजन हाता है। सत्सग म म्मा विषय का दष्टि म रखते हुए कई उदाहरणा कई सस्मरणा तथा कई घटनाभा व माध्यम रु इस चेतना का हम जगाना चाहत हैं। महापुरुषा न इस जगान का अथव प्रयत्न किया क्याकि व स्वयं जामूत हुए। जाग चुब व इमर्निए उहोनि जगाया किंतु उनक जगान पर भी हमारी नीद अभा उडी नही ह। द्रव्य निद्रा ता आये दिन टूटता है किंतु भावनिद्रा नही छूटता।

भावनिद्रा का अर्थ है—स्वयं का स्वयं का न जानना स्वयं का स्वयं का न मानना, और स्वयं का स्वयं के दर्शन न करना। जब तब यह स्थिति है तब तब हम जगन का काशिश बराबर और तार-बार करना है। प्रयत्न क्या है—महा पुरुषा का वाणा का श्रवण, महापुरुषा का वाणी का चिंतन मनन। हो सक्ता है अध्ययन करते-करते यह मृत्यु हमारा ममत्त्व म आ जाए और हमारा अनादि की भावनिद्रा टूट जाए। जब यह अग्रस्था होगी तब जीव एक ऐसा सुखानुभूति करगा, जिम्मा अनुभव उस आज तब नही हुआ। सत्तार म परिवार म, दश और समाज म सबक गीच रहत हुए भी जब तब इस सबसे भिन्नत्व का बाध नहा हागा तब तब उस परम आनंद का अनुभूति इस हो नही सकेगी। उस प्राप्त करन क लिए जब तब इस जाग क मन म भाव नही जगेंगे, जब तब उस आर वृत्ति नही जाएगा जब तब इमव। रचि नही बनगा, तब तब प्रवृत्ति भा नही हागी।

किसी एक समय किसी एक व्यक्ति न एक मत्त म प्रश्न किया कि सत्तार म समाज म परिवार म हजारों निमित्तों के बाध म रहत हुए ऐसा कस हा सक्ता है कि व्यक्ति किसी भा प्रवृत्ति म प्रभावित या परेशान न हा? क्याकि यह एक बहुत बड़ा अनुभव है कि व्यक्ति प्रतिबल प्रमगा म परेशान हुए जिना रहता नहा है। कभी-कभी ता जावन म प्रतिबल सहाय मत्त-मत्त क निष्पत्ति मिल जाता है।

मान लीजिये किसी को यदि रोटी ठीक नहीं मिली तो वह प्रतिकूल सयोग है किन्तु कुछ नमय का है, यानी एक रोटी, दो रोटी जो भी खानी है, खाने के बाद उम सयोग का वियोग हो जाएगा। जैसे वस्त्र, यदि वह मन-पसन्द नहीं है तो हम उसे किसी को दे सकते हैं, या आधा-पुराना छोड़ सकते हैं, या विना-मन के भी कुछ समय पहन सकते हैं, किन्तु उमका वियोग भी दो, दम दिन, दो, चार, छह महीनों में हो सकता है, किन्तु जहाँ सम्बन्धों में प्रतिकूलता का अनुभव होता है, वाप-वेटे का, पति-पत्नी का, माँ-बाप का तो ये सम्बन्ध ऐसे हैं जिनमें व्यक्ति आजीवन उलझा रहता है। आजीवन जिस सम्बन्ध में बँधा हुआ है उन सम्बन्धियों के बीच में, निकट सम्पर्क में रहने वाले व्यक्तियों के बीच में जब प्रतिकूलता होती है, जब प्रकृति की परेशानी होती है तब आर्त्त-ध्यान की सभावनाएँ बहुत रहती हैं, कर्म-बन्धन के निमित्त बहुत अधिक रहते हैं फलस्वरूप व्यक्ति प्रतिक्षण अशान्ति का अनुभव करता है।

कुछ सम्बन्ध ऐसे होते हैं कि जिन्हें सामाजिक, व्यावहारिक, पारिवारिक, गुण-परम्परा, भारतीय संस्कृति की दृष्टि से निभाना ही है, तब ऐसी प्रतिकूल स्थिति में यदि व्यक्ति अपने ज्ञान से, विवेक से काम नहीं लेता है तो उमकी समस्या उसे हर समय परेशान करती है, उमका मन हर नमय अशान्ति, मात्र अशान्ति, का अनुभव करता है।

कड़ियों के जीवन में गारोरिक प्रतिकूलताएँ होती हैं, यानी किसी-किसी में बीमारियाँ इतनी अधिक आती रहती हैं कि वह चीख उठता है कि महाराज, इससे तो मृत्यु ही आ जाए तो ठीक है, क्योंकि आधे दिन बीमार रहता हूँ। कभी बुखार है, कभी दस्त है, कभी सिर-दर्द है, कभी कुछ है, तो कभी कुछ है। वर्ष में स्वयं को मैं छह महीनों में ज्यादा अस्वस्थ पाता हूँ। खाने की इच्छा होती है, खा नहीं सकता, घूमने की इच्छा होती है, घूम नहीं सकता, जाने की इच्छा होती है, जा नहीं सकता, ऐसी विपन्न स्थिति में लगता है कि इस शरीर में अब कैसे रहना? शरीर से मुक्ति मिल जाए तो अच्छा। ऐसे प्रतिकूल सयोग में व्यक्ति सोचता है कि यह कैसा सम्बन्ध हो गया? कैसे जीऊँ? कब मुक्ति पाऊँ?

ऐसी अनेक प्रतिकूलताएँ हैं जिनमें जीते हुए व्यक्ति बहुत ही परेशानी, कटुता और अशान्ति का अनुभव करता है, किन्तु अशान्ति का जो यह अनुभव है, कटुता का जो यह अनुभव है, और परेशानी का जो यह अनुभव है, वह अज्ञान का परिचय है। अज्ञान का परिचय इस अर्थ में कि उसी के शुभाशुभ कर्म का उदय यह है। उसने ही जीवन में इस परिस्थिति का निर्माण किया है। इस परिस्थिति के निर्माण में, इस परिस्थिति के परिचय में अब जितनी ज्यादा परेशानियाँ होंगी,

जितनी ज्यादा हरानियाँ हागी उतना हा ज्यादा कम-बचन हागा । यदि ऐस समय वह जानिया क वचना का आमरा ल व ता उम बिपम परिस्थिति क समाधान का थवमर उस मिल जाता है ।

जानी कहने क कि यह बार् जावन नहा जिमम काइ त्रिशेपता न हा, का विचित्रता न हा । ऐम म यदि जानिया क वचना का आधार रहेगा ता व्यक्ति परणानिया म भा मुख शांति का अनुभव करेगा । श्रीमद्भगवद्गीता न कहा-ज्ञाना के अनानी जन सुख दुःख रहित न काय । जाना क धय म अनानी क राय । जाना के पाम एक आनन्दन है महापुरुषा की घाणा ता, नक चिन्तन का जिमक आधार पर वह प्रतिबुद्धताका का अपन हा किय का फन समय कर मुब और दुख दाना परिस्थितिया म मन का शांत रखन का प्रयत्न करता ह और मान कर चता है कि जा कुछ प्राप्त है वह कुछ समय क त्रिण ही ह ।

वास्तव म जा भी मिनता ह वह मव विछुडन क त्रिए हा मिनता है । बचन क लिए ही बनता ह । वियाग क त्रिण हा है भयाग । मरन क लिए हा है जम । ऐमा जान जय उस हा जाता है त्र आत्मा का भान उस हा जाता है तय वह हर परिस्थिति का स्वागत करन के अभ्यास द्वारा मन का मन्तुनित रखन का प्रयत्न करता है । युवक न कहा महाराज यह बात समय म आ नहा रहा ह कि मरक बीच रहत हुए अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितिया म रहन हुए अपन-आप का उन परिस्थितिया म प्रभावित नही हान दना । यह जानिया का आचरण सुन रहा हँ कि-तु उमका अनुभव अपन जावन म ल्के ऐमा प्रसन अमा जीवन म जाया नना है कि-तु चाहता हँ कि ऐमा प्रमग मर जावन म आय । एम प्रमग की स्थिति स पूर का ऐमा उन्हाकरण दाजिय त्र जिमम उम परिस्थिति का म ठीक ठीक ममज्ञ पाके । सन्त न कहा तुम वातार जाआ जार एक् नारियन न कर आया । नारियन नकर आ जाना । जय नारियन न कर युवक जा गया ता सत न कहा इसक ऊपर का जा हिम्मा है चाटी-वाटा उम मवका उतार न । उता कर पूरा गाता अला कर ता । मुझे चाहिय गाता था तुम गिराल का उम मज्ञ न । उगन प्रयत्न किया आर उमक ऊपरा हिम्म का फ नी लिया । वाचनी का तान न अनग करन का बहुत प्रयत्न किया कि-तु इम प्रयत्न का परिणाम यह हुआ कि गाल क बट टुकड न गय । क्या हा गय / प्रयत्न वाचनी का अनग करन का था कि-तु वाचनी टूटे नक पहन गाता टूट गया । गिरा क टुकड हा गय । क्या कारण था ? नारियन गाता था । गिर वाचनी क चिपका हू वा । इतनी अधिन कि चाट जय भी वाचनी पर पडता तय गिरा क टुकडे न जात । चाट किम पर हूड / वाचनी पर और टुड किमक हुए / गिरा क । जितनी चाटें तन टुकडे । जय उम सत ता न न कर लिया कि मन्त यह न्घा यह मिला । सन्त न कहा-

मुझे नावुत गोला चाहिये। यह तो तुमने चिटकें दे दी। 'महाराज, मैंने बहुत प्रयत्न किया'। 'और कर'। दूसरी बार प्रयत्न किया, तीसरी बार किया, किन्तु पन्चाम हर बार वही आया। नावुत गोला एक बार भी नहीं निकला। टुकड़े ही उसके हाथ आये। नन्त ने कहा—'एक नारियल बाजार से और ले आओ, किन्तु इस बार ऐसा नारियल लेकर आना जिसमें गोले की आवाज हो। जिस नारियल में नारियल की आवाज हो।' वह जब नारियल ले कर आ गया तो कहा—'इसे निकाल कर दे'। तो ठीक गोल-मटोल नावुत गोला निकल आया। काचली में वह अलग हो गया। काचली के टुकड़े-टुकड़े हो गये, किन्तु गोले का कुछ नहीं बिगड़ा। नन्त ने कहा—'ये दोनों उदाहरण अपने-आप में पर्याप्त हैं। पानी वाले नारियल में भी गोला है और सूखे नारियल में भी गोला है, किन्तु एक में पानी है और पानी की वजह से गिर काचली से एकदम जुड़ी हुई है, चिपकी हुई है, इसलिए जब-जब भी चोट काचली पर होती है, टुकड़े गिरी के होते हैं। प्रत्यक्ष है कि चोट का प्रभाव गिरी पर पड़ता है। जिस नारियल में पानी नहीं था, जो नारियल सूखा था, क्या वह काचली में नहीं था? काचली में ही था। काचली के भीतर ही था। काचली से बाहर नहीं था, किन्तु काचली में रहते हुए भी वह काचली में नहीं था। प्रमाण था उसका वजना। काचली में वह है, किन्तु काचली में लिप्त नहीं है चिपका हुआ नहीं है, आसक्त नहीं है, इसलिए चोट पड़ी काचली पर, किन्तु वह अक्षत और सम्पूर्ण रहा।'

मिथ्या और मम्यक् दृष्टि में भी यही अन्तर है। मम्यक् दृष्टि भी परिवार में रहेगा, समाज में रहेगा, मम में रहेगा, और सुख-दुःख के झूले में झूलता भी रहेगा, कभी दुःख का, कभी सुख का, दो में से किसी एक का पलड़ा ऊँचा, एक नीचा रहेगा, किन्तु दोनों ही में उसकी रुचि नहीं होगी। एक को वह शुभ का परिचय मानेगा तो, दूसरे को अशुभ का। शुभ और अशुभ के परिचय का जो अनुभव है, उसे वह स्वयं का पूर्वकृत कर्म फल मान रहा है, इसलिए वह दोनों का स्वागत कर रहा है। जब सुख जाएगा तब उसे कोई वेदना नहीं होगी। परिवार से मन दुःखी होना या पैसे से मन दुःखी होना, इष्ट जन्मों के अभाव में मन दुःखी होना, प्रतिकूल संयोग में मन दुःखी होना, बहुत बड़ी बात है या बहुत छोटी बात है, किन्तु मम्यक् दृष्टि तो अपने शरीर की वेदना में भी दुःख का अनुभव नहीं करता। चौबीस घण्टे जिस शरीर में वह रहता है, प्रतिक्षण शरीर में रहते हुए भी भिन्नत्व का बोध करता है, इसलिए शरीर की वेदना से उसके मन में विकलता नहीं है। ऐसे अनेक प्रसंग सुने हैं, पढ़े हैं और आँखों से देखे हैं कि शरीर की पीड़ा मन को प्रभावित नहीं करती शरीर को निद्रा न आये तो मन प्रभावित नहीं होता।

ऐम एन सज्जन को मैंन देखा । दो महीना तक निकट म न्खा कि वह एक व्यक्ति है । एक जून का उमका भोजन ह । लूवा आहार है । एक या दो बार चाय पीते हैं । एक जाड वस्त्र है । मर्दी का मौसम है पून का महीना ह । त्रिछान का गद्दा नहीं है आउने का रजाइ नहीं है । श्रावक धम का ऊर्ची भूमिका भजीवन जीन वाले । रात्रि म नीद मुश्किल रु, दा-तान घण्टे जिसे भी प्रमाद मान कर व उमम मुक्ति पाना चाहते ह । सावत ह इतना यह समय जागरण म ही व्यतीत हाना चाहिय मनुष्य का यह जिन्गी ता विवक म ही पूरी हानी चाहिय । जिह्वा ता हर समय महापुरुषा के स्मरण म ही रमनी चाहिये । यह शरीर ता महापुरुषा के नमन में ही झुकना चाहिये । नम प्रवृत्ति का उहान इतना अपनाया कि रात्रि म विश्राम क समय नीद न आय यह उनका प्रयत्न है । नीद जिन कारणों से आता वे उनका त्याग कर दत ।

दष्टि बदलन पर व्यक्ति कम बदलता ह ? मैंन विभा श्रावक का सकेत किया कि मर्दी बहुत है टण्टा घनी हवा है थाडा माघन किसान विभा न विभा रूप म न्हें दिया जाए । तो किया कुछ भी नहीं सिफ टाट की सिलाई करव उसम घाम भरवा दिया और ज़बदस्ता पिठा दिया । व माघक नवेर मर पास जाये बार कहन लगे महाराज में छुट्टी माहता हूँ । मैं विदा चाहता हूँ । यहाँ म जाना चाहता हूँ क्याकि यहाँ के परिचित ता मरी जात्मा के साथ शत्रुता का व्यवहार कर रह ह । मैंन कहा—किमन क्या कर दिया ? कहन लगे—महाराज, राज दा या तान घण्टे म ज्याग नाद नहीं लेता, बाकी समय जात्म-स्मरण आत्म चिंतन म व्यतीत करता हूँ किन्तु आज उन बंधु न घाम का गद्दा ज़बदस्ता मरे नीचे बिछा दिया । मनाहा करा पर भी वे नहीं मान । मैंन भा मन रख लिया किन्तु घाम की गरमास स मुझे नीट आ गयी कि मैं ग्यारह बजे साया आर चार बज उठा । मरा बहुत नुबमान हो गया बहुत घाटा मुझे लग गया ।

इसी युग का बात कह रही हूँ । मरे जायन का मम्मरण है यह । जिन व्यक्ति का बात म कर रही हूँ व जीवित ह । माघना म है । बहुत घाटा हा गया, बहुत नुबमान हा गया कि तीन घण्टा का समय मुटुटा रु नियन गया । इन बीच कितना बार आत्मा में अपन उपयोग का मैं जाडता ? मरा वह मारा समय प्रमाद में चना गया । जरा हम तुलना करें जरा हम विचार करें । क्या हमम कभी एक विचार आत है ? विचार ता ज़रूर आने हागे कि ना नत्ने आया नहा आया या कम आया, तर म साथ, उल्टी उठ गया । ये मार विचार ता जात ह । आ ता मुझे दिन म दो घण्टे साना ह क्यापि गत भर मैंन काम किया ह । माना है मान क विचार भा अच्छे नगत हैं किन्तु अधिक सान पर जात्म माघना म अच्छन हूँ ऐम विचार कितना का आत है ? उन व्यक्ति न कहा—'शत्रुता का व्यवहार हा गया । दखिय शरार का आगक्ति कितनी गया । यदि शरार का आगक्ति न नाग

तो नीद के भाव आये बिना रहेंगे नहीं। अरे, मेरे शरीर को आराम नहीं मिला। मेरे शरीर को विश्राम नहीं मिला। मुझे नीद नहीं आयी। कितने विकल्प हैं। और उधर वह व्यक्ति है जो कह रहा है कि महाराज, आज बहुत बड़ा नुकसान हो गया, बहुत बड़ा घाटा हो गया। हम तो ऐसे नुकसान या घाटे की कल्पना भी नहीं कर सकते। पैसे का नुकसान, नुकसान है। पैसे की हानि, हानि है। इष्ट वियोग की हानि भी हानि है, किन्तु नीद अधिक आना और आत्म-चिन्तन कम होना कभी हानि हमने माना क्या? क्यों नहीं माना? इसलिए कि हमारी आत्मा में देह-बुद्धि बहुत अधिक है। देह-बुद्धि की अधिकता से शरीर में आसक्ति भी घनी है। शरीर की आसक्ति के सघन होने से शरीर से सम्बन्धित चिन्तन चलता रहता है और शरीर को जितनी अधिक अनुकूलताएँ मिलती हैं, अनुकूल पदार्थ और मयोग मिलते हैं, अनुकूल साधन, अनुकूल वस्त्र, अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती हैं तो हमारा मन मुस्कराता है। अनुकूलताओं में मुस्कराता है और प्रतिकूलताओं में परेशान होता है। यह मोह है। देह में आत्म बुद्धि का ज्वलन्त प्रमाण है।

जिनकी शरीर में आत्मबुद्धि छूट जाती है उनका चिन्तन भी बदल जाता है, सोचने की शैली बदल जाती है समझने का ढग बदल जाता है। रहने का रग बदल जाता है, सहने का रग बदल जाता है, खाने का ढग बदल जाता है, पीने का ढग बदल जाता है। वह जगत् में रह कर भी जगत् से अलग रहता है। वह शरीर में रह कर भी शरीर से परे रहता है। वह परिवार में रह कर भी उसे एक क्षणभंगुर मेले से अधिक महत्त्व नहीं देता। मान कर चलता है वह कि यह तो पाँच-पचास-साठ वर्ष का मेला है, मिला है, और बिखर-बिछुड़ जाएगा। वह विचार करता है कि ऐसे जीऊँ, ऐसे रहूँ, ऐसे खाऊँ, ऐसे पीऊँ कि मेरे जाने के बाद या मेरे रहते हुए मेरे निमित्त से किसी को परेशानी न हो। ऐसा विचार कौन करेगा? कितने है ऐसे व्यक्ति जो विचार करे कि पूरे दिन में मेरे द्वारा किसी को परेशानी न हो, किसी को तकलीफ न हो? आये दिन आँसू गिरते हैं, घर में सघर्ष होते हैं, झगडे होते हैं।

कितनी ही बार कुछ ऐसे प्रसंग सुनने को मिलते हैं कि हम जिनकी कल्पना भी नहीं कर सकते। जितने अधिक घनिष्ट सम्बन्ध होते हैं, उतनी ही अधिक अशान्ति होती है। यह अशान्ति अज्ञान की है, मोह की है, पर-मे-आत्म-भ्रान्ति की है, क्योंकि वह जो है उसे स्वीकार करना नहीं चाहता और उसे बदल सकता भी नहीं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति अशान्ति का अनुभव करता है। जहाँ आत्म-ज्ञान का सुनहला स्पर्श हो जाता है वहाँ जगत्, जगत् रह जाता है, पदार्थ, पदार्थ रह जाते हैं, सयोग, सयोग रह जाते हैं और वह सब में रहते हुए भी एक अलौकिक आत्मानुभूति का अनुभव करता है कि 'जगत् की दृष्टि से वह जगत् में है, किन्तु

मानिया की दृष्टि में वह आत्मा में है। तुनिया का दृष्टि में वह घनवान है किन्तु अपनी दृष्टि में तो वह इस बचन पुण्यप्रति की वा मया मानता है। तुनिया का दृष्टि में वह गरीब है किन्तु आत्मा का दृष्टि में तो आत्मघन का ही सर्वोपरि मानता है। मग मान मग अशन मरा चारित्र्य मग जनन मुग मरा आत्मा में कभी अलग रहा है। मगत। अभी यत्न बचता है मगता है मगपुण्या व गग हा मगत है किन्तु हमारा अपना अनुभव वही नहीं है।

यदि अपना अनुभव हा जाए तो उभवा आनन्द हा फिर निराता गगा। रहती अलग हागा, रहता भा अलग हागा। अभी मध्यप्रदेश के एक विद्वाननामका महात्मा जिन्हें मन अगह वष पढ़ने गुरुवर्याश्री के सम्पर्क में दया रिगनात् व ध पाया व? परिवार सम्पन्न था। पुत्र-प्राप्य था। मैं स्वयं उनका घर में आकर न बस आया। मैंने उनका तब अपनी आत्म मगता में हा पाया। अपनी मगता में व रहने। आर जब वही तब जघ्मात्म का चचा। बाद अक्षर पात्र नया विद्वता का वार्त्त पमाण नहा श्री का वार्त्त जिन नहा। शला की पाणित्यपूण जाड-ताड नहा फिर ना उनका जा दृष्टिकोण था उनका जा तप्य था आत्मा पर उनका जा ध्यान था वह अपूर्व था प्रत्य था। मुझ उनका एक शब्द बार बार दाता जाता है कि मन्मार्ग का नाम नन व कहत-मन है मग जोर जिगवा, वह मन्मार्ग। मन जिनका मग तप्य है उमक जीवन में मदगीर हा है। उनका मन चिन्ता व चिन्ता में न गत आत्मा में रह यद् उनका कथ भा था प्रयत्न की था आनन्द भी था।

यदि गला न नर पर वाने जाता जाए और आनन्द में गहा ध्यस्त न निमग ता वह आत्मन-याणराग नग हा मगता। व्याख्या यह हा मगता है मग का नन नग हा मगता है वाक नान्य यह हा मगता है भा यदि वा शक्ति हा एक परिचय यह हा मगता है। उनका जीवन का मगता मग आनन्द का मगता। क्या अपूर्व मगता में व जा था। एक समय मग भा भाजन वतन ध मगता नाजन वतन ध मगता मगता में रहत व वकी मगता भा रहत था। वकी मगता वतन पुण्य नन मगता में जात था। हर समय मगता वाक यदुनियाकी दृष्टि में था किन्तु अपना दृष्टि में?

यदि आपका मुगता का पूठ कि जाय वही रहत है ता पढ़ने इस क्या मगता भारत में। नाउत में वही रहत है ता मगता मध्यप्रदेश में। मध्यप्रदेश में वही रहत है ता मगता मगता मगता में। मगता मगता में वही मगता है? ता वही मगता वतनी में जो मगता व किमी मगता की मगता मगता में। मगी में भी वही रहत है ता फिर मगता मगता मगता में। मगता भी वही मगता है ता मगता मगता मगता व मगता में। मगता में भी वही मगता है ता मगता मगता मगता में। मगता



खण्ड में कहाँ रहते हैं तो कहेंगे कि चार कमरों में से वहाँ एक कमरा मेरा है, वह उस कोने में है, वहाँ रहता हूँ। कमरे में कहाँ रहते हैं तो कहेंगे एक स्थान मेरा निश्चित है बैठने का वहाँ बैठता हूँ। फिर कहाँ रहते हैं? तो कहेंगे गरीर में। शरीर में भी कहाँ रहते हैं तो कहेंगे अमर्त्य आत्मप्रदेशों में। असंख्य आत्म-प्रदेशों में मैं रहता हूँ, यह आध्यात्मिक परिचय है, यह आत्मिक परिचय है। बाकी मारा परिचय जितना भी है, वह किससे सम्बन्धित है? गरीर में।

समार में ऐसे-ऐसे ज्ञानी भी हैं जो दुनिया में रहते हुए, दुनिया का अनुभव करते हुए भी अपने-आप को कुछ भिन्न ही अनुभव करते हैं। उनके इस आनन्द की कल्पना कोई दूसरा करे, यह बहुत मुश्किल है।

एक बार इसी तरह की एक वहम वीरवल और वादगाह के बीच छिड़ गयी। वीरवल भी सूझवूझ का परिचय कम नहीं देते थे, तो वादगाह भी उनकी परीक्षा के लिए अवसर कम नहीं उपस्थित करते थे। एक दिन राजमभा में वीरवल को सम्बोधित करते हुए वादगाह ने कहा—वीरवल मैंने एक अजीब स्वप्न देखा है, अर्द्ध-रात्रि के बाद। जहाँपनाह क्या देखा? मैंने देखा कि गंदे पानी का एक कुण्ड है और तुम उसमें डूबे हुए हो और एक निर्मल जल का कुण्ड है जिसमें मैं डूबा हूँ। वीरवल ने तुरन्त कहा—जहाँपनाह! मैंने भी एक ऐसा ही स्वप्न आज देखा है। आपके और मेरे स्वप्न में थोड़ा ही अन्तर है। मैंने देखा कि एक बहुत बड़ा कुण्ड है, क्षीर-ममुद्र जैसा निर्मल जल है, और उसमें आप डूबे हुए हैं और एक गन्दे कुण्ड में मैं डूबा हूँ। वादगाह ने क्या कहा, कि वीरवल मैंने तुम्हें एक गंदे पानी के कुण्ड में डूबे हुए देखा और वीरवल ने कहा कि जहाँपनाह मुझे भी ऐसा ही स्वप्न आया किन्तु मैंने आपको क्षीर-ममुद्र-जैसे निर्मल जल में डूबे हुए देखा। आपका और मेरा स्वप्न यहाँ तक तो बराबर है, किन्तु मैंने और भी कुछ देखा। और क्या देखा, वह भी तो बताओ। वीरवल कहता है—स्वामिन्, मैंने जो आगे देखा वह यह कि मैं गन्दे पानी के कुण्ड में हूँ किन्तु आपको चाट रहा हूँ, और आप मुझे चाट रहे हैं। वादगाह सोचने लगा कि वीरवल की बुद्धि का कोई हिसाब नहीं है, कोई मुकावला नहीं है। कोई इसे पराजित नहीं कर सकता। मनगढन्त बात इसने कैसी कही कि आपको स्वप्न आया, मुझे भी स्वप्न आया। मैं भले ही गन्दे कुण्ड में था, किन्तु मैं आपको चाट रहा था और आप मुझे चाट रहे थे।

सम्यक् दृष्टि इस समार में रहकर भी वीतराग की निर्मल वाणी का आनन्द लेता है, फिर भले ही वह परिवार में है, समाज में है, जिम्मेवारियों में है, गरीर में है। गरीर में मल-मूत्र, हाड-मांस, रक्त-पित्त हैं और है क्या? इन्हीं जितने भी तत्व हैं, वे कौन से तत्व हैं। मल, मूत्र, वात, पित्त, कफ, रक्त, इन्हीं का तो समुदाय है यह, इन्हीं का तो खजाना है यह, और यही तो इस गरीर में भरा पडा है। उन सबके बीच रहता हुआ भी जो वीतराग के वचनों का आलम्बन लेता

है वह जजर अमर आत्मा का जा महज आनन्द है, उम रम का पीता ह। जिम उम रम का पीन की बना नहीं आयी वह जगत का हा चाटता फिरता है नगन के पत्थरों का ही चाटता घूमता ह। जगत का मत्ता आर मम्पत्ति व निए ही मिश्वारी का वत्ति म घूमता रहता है भटवत्ता रहता है। गार-वार पान का प्रयत्न करता है। जितना पाता है डून्ता है पाता ह छून्ता है, नता ह छाडता ह। इन प्रकार एक जतहीन जीवन जो कर वह बिना हो जाता ह।

जब तक मत्य-दृष्टि हममे नहीं आता जब तक तत्व-दृष्टि हमम नहा आता जब तक आत्मदृष्टि हमम नहा आता, तब तब जन-बमल-मम जीवन जीना कल्पना का विषय हा सकता है अनुभव का विषय नहीं। क्या नहीं हा सकता? म्गनिए कि हर परिस्थिति का प्रभाव हम पर पड रहा है। हर रग म्प का प्रभाव हम पर पड रहा है। नम्बाई का जार ठिगन बढ ता प्रभाव हम पर पड रहा है। बम्ना का प्रभाव पड रहा है। भाजन का प्रभाव पड रहा है। जा कुछ मिल रहा है उम समय प्रतिक्षण मन प्रभावित हा रहा ह। प्रभावित इमलिए हा रहा है कि आत्म बद्धि है दह म। तादात्म्य मम्बघ मान कर चन रह हैं हम शरीर म। ऐसा म्यिति म हा यत्ति हमार प्राण निबन्ध गय और मनुष्य-जीवन के मुयाग का बियाग हा गया ता दुनिया की दृष्टि मं उमका वित्तना भी उपयाग हुआ हा। दुनिया की दृष्टि मं हम वित्तन हा महत्त्वपूर्ण रह हा। किन्तु चानिया की दृष्टि मं हमार मनुष्य-जग का कीमत्त बौडी जितना भी नहीं है।

प्रभाव हाना अनग चीज है और प्रभावित हाना अलग बाज है। पुण्य का परिचय हाना जलग चीज है आर पुण्य के परिचय म आत्मा का प्रभावित हाना अनग चीज है। पुण्य-पाप व परिचय मं आत्मा जितना ज्यान्त प्रभावित है उतनी हा चादा अगात ह। परिचय तो रहगा बहुत लम्बे वान तक रहगा। शरार बव तक रहगा जब तक हम मिद्ध बुद्ध निरजन निरावार न बन जाए। तरहव गुण म्यान तक शरार है। उमस पहल परिवार भा रहगा, सुय दुय का अनुभूतियां भा रहगा परिस्थितियां भा रहेगा पर चानी जा हागा उमका राना बन् हा जाणगा। चाना ता हागा उमका हगना भी बन् हा जाणगा। एक महज मुक्कराहेट उमक मुद्रमण्य पर रहगी। चेहर पर एक महि जाभा रहगा। बुद्धि मं हर समय महज तत्व चिन्ता रहगा। जगत् व दुग्या का दख जगत् व स्वम्प का बाय उम हागा। शरार व हाच का दत्र शरार-स्वरूप पर दृष्टि उमका पाएगा। शरारम्बरूप पर तब उमका दृष्टि जाएगी तब शरीर का अवस्था की व्यवस्था वह मानगा। किन्तु ह्य और उगात्य दानो बुद्धियां उगकी चली जाएंगी। छाडू म्द भाव भा चन पाएंग और पक्कू य भाव भी चन जाणग। जम बुनाप की जजर अवस्था का व्यक्तित छाणना चाहता है और यावन अवस्था को स्थायी रखना चाहता है। इन दाना म उमका



उपस्थित है। यदि उस अज्ञान से विगम नहीं मिला तो यह पचास-पाठ वष का भी एक पड़ाव है। जैम मुमाफिर घूमते घूमते बड़े बाग बड़े शहरा में जाते हैं आर पड़ाव डालते हैं। रात्र-चार यही होता है। पड़ाव बदल जाते हैं। बदलते रहते हैं पचाव। एक वष में कितने पड़ाव हमारे अंदर जाते हैं? नभा यहा, बभा यहा बभा यहाँ। बभा महान में बभा मोपटा में बभा सडक पर बभा टूटे फूटे मकान में। ना मालूम कैम-बम लाग भिन्नत हैं, कितने कितने साधन मिलते हैं। कितने यकितिया का प्रकृति का परिचय भिन्नता है, किन्तु पड़ाव का हीन। क्या है? छूटता जाता है। भिन्न हा पचाव छूट गया। एक वष में कितने ही पड़ाव छूट जाते हैं कितने ही स्थान अज्ञान जाते हैं भिन्न ही गाँव बदल जाते हैं कितने ही आकृतिया बदल जाती हैं। (गिरम माधु-जावन में आकृतिया बहुत ज्यादा दखन का मिलते हैं। जितना आकृतियाँ देखने का मिलती हैं उन सबको याद रखना बड़ा मुश्किल हो जाता है। याद जिनका आकृति नहा रहे पाना वहा व्यक्ति परेशाना का अनुभव करता है कि 'महाराज जतना बार भिन्न गये फिर भी आपका हमारे याद हा नहीं है'।)

कितना याद करें कितनों का याद करें कहीं तक याद रें? एक शहर में ज्वारा व्यक्तिना में परिचय होता है आकृति-परिचय। जानपट भम्पन में अत हैं, जो बहुत ज्यादा आते हैं ना कई बार भिन्नत हैं उनका आकृतिना ता याद रहे जाता है किन्तु मुझमें कोई पूछे कि एक वष की पद-यात्रा में अप भिन्न भिन्न मकाना में रहे वहा रहा रहे ता कुछ याद नहीं रहता। हा संकता है फिर उस गाँव में गुजरे तो याद का जाए। उस संक से गुजरे ता याद आ जाए किन्तु यहाँ रहते हुए कोई पूछे कि जसलमर में तेवर यहा तब पत्तन में कौन-कौन से गाँव आय तिम किस जगह रहे ता कस याद रहेगा? मुझे ता क्या अपना भा याद नहीं रहेगा। इतना अधिक याद नहीं रहे सकना।

ऐसे ही आते आते व पड़ाव हैं जा आज हम याद नहीं आते। आज का पड़ाव है। याद है। तब का परिवार हा याद है। आन का मकान ही याद है किन्तु यह पड़ाव ता बदल हा जाएगा। निश्चिन्त रूप से बाल जएगा। किन दिन बदन जाणगा, उस दिन तिम तिम यह प्राण-मखेरू उड जाणगे। प्राण-मखेरू उड नहीं आर यह महल गिरा नहा। पता उडता रहता है आकाश में। अब तक उडता रहता है? जब तब हाथ में डार ह तब तब। डार क महार पतग उडता है और आयुष्य क महारे गार टिकता है।

गिरम महार टिके हुए हैं हम-अ युष्य के। जत्र ता आयुष्य है तत्र तब इन शरार में टिके हुए हैं। तिम रात्र हमारा आयुष्य समप्त हा जएगा देवत-दखत पन शरार से हम डरएगा। दुनिया खेगा-भर गय मर गय, मर गय। मर गय यह दुनिया अनुभव

करेगी उस समय, मृतक अनुभव नहीं करेगा; क्योंकि वह तो फिर नये पड़ाव पर प्रस्थान कर देगा। उमे तो नये पड़ाव का फिर नयोन हो जाएगा। वह उन पड़ाव को पा कर फिर अनुभव करेगा। नये-नये परिचयों का अनुभव करेगा। नम या अनुभव तो कौन करेगा, जो पीछे यहाँ रह जायेंगे वे। आँसू रहने वालों के निकलेंगे। याद करने वालों के निकलेंगे। जाने वाले के आँसू नहीं निकलेंगे। नया शरीर पाने के बाद आँसू निकलते हैं क्या? आज हम जितने व्यक्ति देखे हैं, निश्चित कहीं से मर कर आये हैं। किसी एक परिवार के सदस्य की याद आ रही है क्या? किसी एक पूर्वपरिचित का नाम याद है क्या? मकान की याद है, दुकान की याद है, तानान की याद है? याद आ रहा है कि कितना सोना और कितनी चाँदी छोड़ कर आया हूँ? कोई बात याद आ रही है क्या? स्मृति नहीं है तो आँसू का प्रश्न ही कहाँ है? पहले इष्ट-वियोग की स्मृति होगी और जब स्मृति घनीभूत होगी तब आँसू आयेगे। जब याद ही नहीं है तो आँसू कैसे? जाने वाले को आँसू नहीं आते, आँसू रहने वालों को आते हैं।

आप कहेंगे महाराज जाने वाले को भी आँसू तो आते हैं, कब आते हैं? जब तक इन परिवार से जुड़ा है वह तब तक टूटने के बाद नहीं आते। आप कहेंगे महाराज वच्चा रोता है, जन्मते ही रोता किसका प्रतीक है? वह दुःख का तो प्रतीक है; किन्तु उमका अपना दुखड़ा है। कौन-सा दुःख है कि जहाँ से वह आया है, जित जगह रह कर आया है, जिस कालकोठरी में रह कर आया है, जितनी कम जगह में सिक्का हुआ रह कर आया है, तो उसके दुःख से जब बाहर आया तो एक बार वेदना उमकी वह गया। उसमें यह कोई वियोग की वेदना नहीं है। कोई स्मृति की वेदना नहीं है। कोई पदार्थ छोड़ने की वेदना नहीं है। वहाँ तो स्मृति ही नहीं है उमे। स्मृति नहीं है तो रोना कैसा? जब तक जी रहे है, तभी तक रोना-हँसना है, एक-दूसरे की साज-समहाल है, एक-दूसरे के शत्रु-मित्र है, एक-दूसरे के लिए मरने-मिटने को तैयार हो सकते हैं (शब्दों में)।

जब तक हमारा शरीर है तभी तक हम सघर्ष करते हैं, तभी तक झगडा करते हैं, तभी तक ईर्ष्या करते हैं, तभी तक लडाई करते हैं। तभी तक एक-एक चीज को समहाल कर रखते हैं। एक-एक चीज को सजाते हैं, बसाते हैं, जमाते हैं और देख-देख कर जीते हैं। जिन्दगी-भर उसी के दर्शन में आनन्द का अनुभव करते हैं। उसके वियोग की कल्पना भी यदि आ जाए तो मन परेशान होता है। वियोग की कल्पना में मन परेशान है। प्राप्त होगा या नहीं होगा, इसमें भी मन परेशान है।

एक व्यक्ति ने मुझसे प्रश्न किया कि महाराज, मेरी माँ के पास सोना है। दो सौ, चार सौ, पाँच सौ, कितने तोला सोना है, इसका तो अनुमान मुझे नहीं है; पर है चर्र। पर वह मेरे पास नहीं रहती है। विचले भाई के पास रहती है। थोड़ा सोना बड़े भाई के पास पडा हुआ है। अभी तक उसकी पाँती नहीं हुई। हमारा मन इस निमित्त

का ले कर हर समय जशाति का अनुभव करता है। अशाति का अनुभव क्या करता है ? पता नहीं किसके पास ज्यादा रह जाएगा ? पता नहीं किस माँ ज्यादा द दगा ? मध पूरा मिलगा या नहीं मिलेगा ? मिलगा तो कब मिलगा ? मा मत्तर वष का हा गया महाराज पता नहीं कब मरगी ? क्याकि जब तक मर नहीं तब तक न छोडे ता ? बह कहन लगा—महाराज मैं बहुत दु खी हू बहुत जशान्त हूँ । दिन म पचाम बार एमा चिन्तन आता हं । कब मिलगा, कब मिलगा, कितना मिलगा, कब मिलगा बराबर मिलना यही-यही विचार आत रहत ह मुझे । काई याग का वात व्याख्यान-श्रवण करत-करन बुद्धि न ऐसा पलटा छाया और कहा महागज मुझे नियम दिला दा सकल्प दिला दा । सकल्प लना है कि मा क अधिकार म स मुझे अधिकार नहीं जना है । नियम यह लिता दा कि मुझ एक नया पता भी नहीं चाहिय । यदि बेटवार क समय मर भाइ तें जब दस्ती भा ता भा मुझ अपन लिए और अपन लटक-लडकिया क लिए उस काम म नहा जना है । उन्हा क हाथ स घरमाद म लगवा दूगा । सकल्प लिया । सकल्प लन क बाद तीन चार वष म उस व्यक्ति न दम धार मुच यह कहा कि महाराज कतना शान्ति हा गयी है कि पूछिय मत । काइ विकल्प नहीं है । काई परधाना नहीं ह । काई चिन्तन नहीं है । यह विचार हा नहीं आता कि कुछ मिलगा या नहीं मिलेगा ? पाता हागा या नहीं हागा ? मा कब मरगा काँ विचार नहीं जाता । छुट्टी मिन गगा क्या छुट्टा मिन गयी ? इसलिए कि आमक्ति टूट गयी ।

आमक्ति कस टूट गया कि मन न उस धन का ममत्व छाँ लिया । धन ता पहन भा पास म नहीं था । कल्पना-मान थी किन्तु ममत्व छाँ दिया । ममत्व क्या छाड दिया कि मुझे नहीं चाहिय । नहीं चाहिय जब एमा मैने विचार कर लिया बार इर्गी लिए कर लिया कि एक ता यह हर पडाव म बारबार मिलगा बारबार छुटगा । मैं कितना बार राज्गा कितना बार हैमगा । कभी लाखा छोट कर आया ह और कभी हजारों छोट कर जाऊगा । इम छाडन और जाडन म जिल्ला लगा रहा ता फिर महापुरुषा का वाणा क आधार पर जा आत्मतत्त्व चिन्तन का श्रमर मिनना चाहिय वह नहीं मिलेगा । नहीं मिलेगा और तत्त्व चिन्तन का उपयोग नहीं किया ता मरा जिंदगा हा बवार चला जाएगा । सपूण मनुष्य-जावन पाना की तरह व्यथ हो जाएगा । अस तरह सकल्प क बाद मजे जावन म महाराज, बडा शान्ति मिल गया ।

कहन का तापत्य यह है कि शान्ति जब भा मिलेगा गित किमा का भा मिलेगी आसक्ति छाडन स मिलेगा आसक्ति का ग्रहान म नहीं मिलेगा । आसक्ति मात्र जशान्ति का कारण है । आसक्ति है श्रमनिण प्रतिबलता अनुबलता की मारी परिवर्त्यना है । यदि आमक्ति घट जाए तो अनुबलता और प्रतिबलता आपाजप कम हो जाएंगी ।

□□

—इन्दौर २२ सितम्बर १९६२

प्रथम प्रभा/८९

सत्संग-रुचि का बहुमान है। मत्संग-भक्ति हमारे जीवन को बदले, हमारे जीवन को परिवर्तित करे, हम आन्तरिक भावनाओं को बदल सकें, ऐसा यदि हम प्रयास कर पाये कभी, तो निश्चित रूप से हमारा जन्म, जीवन और मृत्यु तीनों मार्थक हो सकते हैं। हम यदि नहीं ढंग में जीवन जी लेंगे, अच्छे ढंग में जीवन जी लेंगे तो मृत्यु के क्षणों में हमें इस बात का मन्तोष होगा कि हमने जिनकी का ठीक से उपयोग किया।

उपयोग तो जिनकी का हर व्यक्ति करता है किन्तु जिनको जितना योग मिले, आपको सुयोग मिला है, मुझे मन्त्र को, मनुष्य-जिनकी का, मनुष्य-जन्म का—“नर तेरा चोला रतन अमोलक, वृथा काहे खोय”। मन्त्र तुलसीदास का माहित्य पढ़े, सूर मीरा का पढ़े, चाहे कवीर या गुरु नानक का पढ़े, ‘भागवत’ पढ़े या ‘भगवती’ पढ़े, सभी ने एक स्वर में मनुष्य-जीवन के महत्त्व को गाया है।

प्रश्न है, क्या हम सन्तों को उस दृष्टि को समझ पाये हैं? नहीं समझ पाये हैं। ऐसी बात तो नहीं है, फिर सवेरे से शाम तक हमारी अनेकविध क्रियाएँ होती हैं। इन क्रियाओं में हम लगे रहते हैं—यानी इस जिनकी का उपयोग तो निश्चित है, नहीं है, ऐसी बात नहीं है। जिनकी का उपयोग है, किन्तु देखना होगा कि यह विनाश में है या विकास में है, ध्वसात्मक प्रवृत्तियों में है, या मृजनात्मक प्रवृत्तियों में है, जीवन-निर्वाह में है, या जीवन-निर्माण की दिशा में।

जिह्वा का उपयोग घर-परिवार की बातों में, समाज की चर्चा में, राष्ट्र की चर्चा में, व्यापार-धन्धे की चर्चा में तो हो रहा है, खूब हो रहा है, किन्तु क्या एक-दो घण्टे का समय इस जिह्वा का अरिहन्त-स्वरूप की चर्चा में होता है? क्या सिद्ध-स्वरूप के विश्लेषण में होता है? जिन्होंने अपने जीवन का निर्माण किया उन महान् व्यक्तियों का चरित्र पढ़ने-पढाने के क्या काम आती है? क्या यह कुछ समय के लिए अपने आराध्य का नाम लेने में काम आ रही है? उपयोग तो है। बोलते पूरे दिन हैं।

बहुत सारे लोग हैं, जो ज्यादा बोलते हैं, जरूरत से ज्यादा बोलते हैं, अकारण बोलते हैं, बिना जानकारी के बोलते हैं। अप्रमाणित बोलते हैं; अप्रामाणिक भाषा में

बोलत है। अधिकांश जन्म-यवान्त हैं। कई व्यक्तियों की प्रवृत्ति होती है कि वान हा  
 नना आर जना हैं उतनी। पन भर म रज का गज क दें। कितना न एक वाक्य  
 कहा, किन्तु कइ व्यक्तियों का जान ही इस म आता है कि कुछ शब्द अपनी जोर स  
 जाते। वह अप्रामाणिक है। ऐसे व्यक्तियों की भाषा पर समझदार वभी विनाम  
 नही करते। कितन व्यक्ति बालत हैं नप-तुने शब्द म पूरा वान का प्रमाणिक  
 जानकारा प्राप्त कर ? जिह्वा हिनती है वह हर समय हिनती है किन्तु कितन ह एम  
 लाग कि जिनक बालन का कोई मूल्य होता है ? कभी कदा कह दे कि आपक  
 त्रिए "म व्यक्तित्व न यह कहा ता मव मे पहन आप पूछेंगे किसन कहा ?" अर माह्य  
 अमुकचन्दान कहा। अर रहने दा वाता, क्या घरा ह उनवी वाता म। डाग हाकना  
 काम है उनका। डाग हाकना उनका काम ह यह टास्टिल यदि हम मिल गया ता  
 हमन वाकशक्ति का क्या मत्पयोग किया ? भाषा का क्या महा उपयोग किया ?

यदि हमन जीभ का उपयोग दूसरा क घर म जाग लगान म किया पगडा कराने  
 म किया दरराना जिठाना का लजान म किया, साम-बट्ट का जलवान म किया दा मित्रा  
 म मन-भटाव पना करन म किया, ता यह काम का उपयोग ता ह पर क्या उपयोग  
 है ? यह बाणा का ह्दाम है या विवास्त ? शब्द शक्ति का यह गलत उपयोग है या  
 महा ? क्या है ? हम उपयोग ता करते ह किन्तु उपयोग सत म हा रहा है या अमत  
 म उचित हा रहा है या अनुचित प्रयाजन स हा रहा है या निष्प्रयाजना आवश्यक  
 हो रहा ह या अनावश्यक, अरत पुरता हो रहा है या अरत स ज्याना क्या "म तालन  
 ह ? जाज कितन एस लाग हैं कितन एम व्यक्ति ह जा उन्न का अपक्षा बद्ध हा चुक  
 ह। किना का अपक्षा ? शब्द पर ध्यान दें। 'उन्न' का अपक्षा क्याकि आत्मा न  
 जनमता है न मरता है न बद्ध होता ह। आत्मा का न काइ बचपन है न उसका कोई  
 जधाना है। वह सनातन है। शुद्ध आत्मतत्त्व है। वह सदा स है। सदा रहगा। अतर  
 है तो इतना कि आप हम, मभा कम-नयागा आत्मा ह। निन्दा का आत्मा बम रहित शुद्ध  
 आत्मा है किन्तु आत्मा का अस्तित्व वहाँ भा है आत्मा का अस्तित्व हमम भा ह  
 यह अनुभूति आत्मा का गण ह। जानना आर देखना आत्मा का स्वभाव ह। यदि इस  
 गारर म स गच्छिदानद निवन जाए ता फिर यह मात्र एक कनवर ह मात्र शन है  
 श्मान का घराहर दा-नान घण्टा म तलकर दा-नान मिना राय हान नायक पद स हे।

अतः तत्त्विक शक्ति है नृणा का किमवा आया ? 'मै बडा हा गया वह वाक्य  
 य शब्द किमवा ह ? किमवा आत्मा का नहा पहचाना। शब्द म ता कह गय कि मै  
 बद्ध हा गया किन्तु तत्त्विक य प्रतीति हागा कि 'गरर बद्ध हुआ ह मै हा। कितने  
 हा व्यक्ति बद्धत्व जान पर कामवाता ना रहत कामवाय भा रही रहन। दूसरा का  
 अरत पूरा कर दें, एसा गाररगि स्थिति उनका नही रहती किन्तु जा शुरू म  
 जाना बाना रह हैं जा बद्धत्व जान पर उनका वान गुन का दूसरा का वजन



नहीं है। वे अधिक बोले, परिवार का सदस्य ऐसा चाहते भी नहीं हैं, फिर भी आदत जो बन चुकी है। बोलते रहना, बोलते रहना, बोलते रहना, प्रयोजन में नहीं, निःप्रयोजन। मुझे लगता है साठ-सत्तर वर्ष की उम्र के बाद व्यक्ति चाहे पुरुष हो, चाहे स्त्री जरूरत से बहुत कम बोलता है, बिना जरूरत बहुत ज्यादा बोलता है, प्रयोजन में कम बोलता है, निःप्रयोजन अधिक बोलता है।

आप कहेंगे, ऐसा क्यों है? जिसकी उम्र सत्तर वर्ष की हो चुकी है उनके बेटे भी चालीस के निकट आ चुके होंगे। कहीं-कहीं तो पैनालीम के निकट भी आ गये होंगे। बेटे के बेटे भी, बीस वर्ष के हो गये होंगे। ऐसी स्थिति में उनकी स्वयं की कार्य-क्षमता विकसित हो गयी। ऐसी स्थिति में उनकी स्वयं की उम्र परिपक्व हो गयी। वह स्वयं कमाने में भी समर्थ है, सामाजिक प्रवृत्तियों को निभाने में भी समर्थ है, घर-गृहस्थी चलाने में भी समर्थ है, किन्तु उनके बाद भी जिम्मा गृहस्थी का रग-राग कम नहीं हुआ, जिसको अधिकार की भावना छोड़ते ही दुखता है, जिम्मे आत्म-तत्त्व को समझा नहीं, वह आत्मा चाहे पुरुष हो चाहे नारी वह यही सोचता रहता है कि कोई भी कुछ करे, हम से पूछ कर करे। सामने वाला कर रहा है बराबर कर रहा है, व्यवस्थित कर रहा है, ठीक से कर रहा है। वह स्वयं भी सोच रहा है कि काम जो हो रहा है मुझ में भी इक्कीस ही हो रहा है, उन्नीस नहीं; फिर भी कहेगा—'देखो, देखो बाबू जो काम करो, ठीक से करना'। अरे, जब आप जान रहे हैं कि वह सारा काम ठीक से कर रहा है, किन्तु बोलना है कुछ भी। निःप्रयोजन। इसी तरह कहेगे—'देखो चार मेहमान आने वाले हैं। रसोई बनाना, अच्छी बनाना।' जबकि उन्हें विश्वास है कि रसोई अच्छी ही बनेगी, पर आदत है बोलने की। उन्हें मालूम है कि चार सन्धिजाँ बनेगी। घर के वातावरण में वे परिचित हैं, अनुभव है उन्हें अपने घर का। इसके बाद भी बेजरूरत पूछते हैं—'क्या साग बनाओगे? क्या सब्जी बनेगी? कितनी बनेगी?' प्रयोजन तो नहीं है बोलने का। न बनाना है, न बाजार से लाना है, न पैसे देना है फिर भी जिन्दगी-भर आदमी जिस वातावरण में रहता है, जिन प्रवृत्तियों में रहता है, जिन निमित्तों में रहता है उन प्रवृत्तियों की उसे लत पड़ जाती है आदत हो जाती है, इसीलिए बकवास करता है। कभी-कभी तो उन्हें यहाँ तक सुनना पड़ता है 'आप चुप रहिए सुन लिया न एक वार'। क्या ये शब्द सम्मान और स्वाभिमान के हैं? कई लोक कहते हैं आपको करना-धरना तो कुछ है नहीं फिर व्यर्थ में डेढ़ पच क्यों बनते हैं? बीच-बीच में टाँग क्यों अडालते हैं। हम जाने हमारा घर जाने, हमारा रसोई घर जाने, हम अपना देख लेंगे। यह क्या है? अपने-आप अपना अपमान कराना है। अपनी आदत से ही परिवार में अप्रिय बनना है। बिना जरूरत के बोझ लाद रखा है। बुढ़ापे में जो व्यक्ति जरूरत से ज्यादा बोलता है, निःप्रयोजन बोलता है उसका बोलना भी अप्रिय लगता है। कहीं-कहीं तो मज्जाक भी बन जाती है, किनकी?

उत्तरी जो अधिष्ठित बोन है। बाबा का तो ऐप रेवाडर का प्रदत्त न्य गया। जइ ता चानू ही रहेगी जावाज। जइ जमे मेरी भी जिह्वा (वाक्शक्ति) का जो उपयोग है एव घण्टे तक वह चालू रहगा। यह भी एक अद्वैत हा गयो है राज राज बानन की पर हम जरा विचार करें कि हमारा इस शक्ति का जइरा उपयोग बितना हा ग्या है गैरजइरी बितना? मुजे लग रहा है हमम कभी ऐसा विचार भा आता हापा कि यह ता बढा क न्निप कहा जा रहा है किन्तु याद रखना कि किना समय य बूढ भी हमारी हा उम्र म थ। बीच की उम्र म अधिक ज्ञानन का आदन हागी इमानिए बुढापे म ज्याण बालत ह। उन्ह कुछ नहा समझाना है समझना हम है। बीच का उम्र बानो का। बढ का जा जादा है है। यदि उनका कारे आदत आपका अच्छा नहा लगती है तो उस समय (जइ आप बूढ हा) आपकी वह जादत न रहे इमका अभ्यास आज से करना है। अभी इम क्षण से करना है क्योंकि अभी स अभ्यास करेगे अभी स विवेक रखग अभी जइरत तितना बालेगे तो बात प्रनगी। किमी क कहा कि दक्षिण न पहले बठन मे ता ठीक स पट भा नहा गवन। क्या? क्याकि कर क्या, हम बमरा बही मिलता है जिसम दाण मा बठनी है। कुछ-न-कुछ बानता ही रहती हैं, पाने हा नही दता। किमी न प्रस्ताव किया कि दादी मा माला फेरनी चाहिय तुम्ह। वे बोला-‘माता तो मैं फेरती हूँ पर वह तो पूरा हा गयी। इस पर किया पान न कहा-‘जितना बडा मका है दाण भा उतना बडा माला म बनवा दूगा आपक निप जो मजेर-से शाम-तक पूरा हा न हो’। माता इतनी बडी ानी चाहिय कि दिन पूरा हो जाए किन्तु वह पूरा न हा। इसका अर्थ क्या है? यही न कि हम पहले स ही मौन का अभ्यास करना चाहिये। बम बानन का आदन जाननी चाहिये।

जितना जइरी हा उनता बानन का अभ्यास डालना चाहिये। क्या बानक क्या घना, क्या बढ, सत्मग म जा भा व्यक्ति आत है जपन सुधार के लिए जान है किन्तु सत्मग-श्रवण का साम्यता न हाने स उस समय भी व्यक्ति स्वय अपने दाया पर नजर न रखन हुण दूसरा का आनाचना करता है यह कि उमरी अद्वैत ऐसा है उमका खमी है, इमकी ऐसी है। यदि मैं थूठ बानती हूँ ता आप स्वय देखें कि आप यहाँ बठे-बठे किमी-न-किसा का चिन्तन अवश्य कर रह होंगे कि वे ज्यादा बोनन ह थ ज्याण बालत ह व ज्याण बानत हैं, क्याकि सत्मग म जाकर भी हम स्वय-स्वय-म नही जडते। हमारा मन दूसरा की ओर गया ता क्या हमन बभा यह देगा कि न्म स्वय ज्याण नहा बालत हैं क्या? क्या हम जइरत म ज्यादा यही बानन? क्या हम बिना प्रमाजन नरी बानते? क्या हम पूर तिन बानत रहत ?

जा जइरत म ज्याण बानता ह जो अनावश्यक जानता है यह अमत्य बोनता है अप्रिय प्रोनता है। उमका जिह्वा घर मिटाने म निमित्त बनता है मित्रना छुडान म निमित्त बनती है शयण करान म निमित्त बनती है जिह्वा का उपयोग ता हा

किन्तु मद्दुपयोग हो। हम तीन-चार दिनों से जिस कथानक को सुन रहे हैं, उसमें कल हमने सुना कि मदनरेखा नदीश्वर द्वीप में विद्याधर के माध्यम से पहुँच गयी। कुछ पूर्व कथाश्रवण वता दूँ कि मदनरेखा युगवाहू की पत्नी है और युगवाहू का बड़ा भाई मणिरथ राजा है। मदनरेखा के रूपरग से प्रभावित हो कर मणिरथ ने युगवाहू की हत्या कर दी, ताकि मदनरेखा उसके अधिकार में आ जाए। कारण को समझने वाली मदनरेखा ने स्वयं को राजकीय वातावरण से अलग कर लिया, इसलिए कि उसके पति की हत्या का कारण उसका रूप है। स्थूल निमित्त।

जिन्दगी में उतार-चढ़ाव आते हैं। वह जगल में वच्चे को जन्म देती है। वच्चे की सुरक्षा का दायित्व लिया है राजा पद्मरत्न ने। हुआ यो कि मदनरेखा ने शिलापट्ट पर वच्चे को सुला दिया था और दूर से देख रही थी कि इसकी सुरक्षा का क्या होगा? पहले व्यवस्था हो जाए, फिर मैं जाऊँ। उसके देखते-देखते राजा पद्मरत्न और उसकी रानी वच्चे को ले भी गये और खुशियाँ मनाते हुए ले गये। सोचा कि एकाएक यह वच्चा हमें मिला है यानी प्रकृति ने हमारी मुनी गोद भर दी है। उम उत्तरदायित्व से भी वह निश्चिन्त हो गयी।

एक मदनोन्मत्त हाथी, जिसने आगे चलते हुए उसे (मदनरेखा को) उछाल दिया। जिस विद्याधर ने उसे इस सकट में सभाला उसने उन क्षणों में कहा— 'देवि! यदि तुम जमीन पर गिरती तो तुम्हारी मृत्यु हो जाती। मैंने तुम्हें वचाया है। तुम्हारे जीवन की रक्षा की है। मेरी कामना पूरी करो।' मदनरेखा ने पलक-मारते समझ लिया कि इसके शब्दों में विकार है। मन में कपट बोल रहा है। ओ हो!! यह मेरा शरीर। यह रूप-रग!! जिन्हें आत्मा का ज्ञान नहीं है, जिनकी नजर चमड़ी पर ही है, ऐसे लोग हर समय आते-जाते, घूमते-फिरते किसी-न-किसी के शरीर के शोभन अंगों पर आँख जमा देते हैं और नामालूम कितना कर्म-बन्धन करते हैं? विना खाये, विना भोगे पापकर्म बाँधते हैं। मेरी त्वचा के कारण, त्वचा के आकर्षण के कारण, मेरे जेठजी का विवेक खो गया और उन्होंने मेरे पति की हत्या कर दी। मैंने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए स्वयं को सब ओर से दुःख में डाला। राजसी ठाठवाट छोड़े, फिर यह योग क्यों बन रहा है? फिर यह विद्याधर इस भाषा में मुझे क्या सकेत दे रहा है? उसने सोचा कि फिलहाल मेरे सामने कोई समाधान नहीं है। मैं एकाकी हूँ। ऐसी स्थिति में ऊँट-पटाँग बोलना बेमतलब है। कैसे भी, मुझे चतुराई से कोई समाधान करना है। उसने विद्याधर से पूछा— 'तुमने कहा कि मैंने तुम्हारी रक्षा की है, डम वात में कोई दो मत नहीं है। तुम्हारा कथन है कि जिस तरह तुमने मेरे शरीर की रक्षा की है वैसे ही मैं भी तुम्हारे मन को महत्त्व दूँ, किन्तु आपसे मेरी एक प्रार्थना है कि आप बताये कि आपका आगामी कार्यक्रम क्या है, आप कहाँ जा रहे हैं? किमलिए जा रहे हैं? कृपया अपने कार्यक्रम की रूपरेखा मुझे

बनाये ?' विद्याधर ने कहा—'मैं जा रहा हूँ नदीयुक्त द्वीप । शांवन चय का वस्त्रना के लिए । अरिहन्त और सिद्धा का भक्ति के लिए । जन्म जन्म मरण प्राधि व्याधि का उपधिना से जा समा-मना के लिए मुक्त हो गया हूँ उन छुड़ आमाआ को भक्ति करने के लिए । फिर वहाँ से वहाँ जाऊँ ? मेरे गे पिना जा भक्ति बन चुके हैं महान् आध्यात्मिक मन्त्र हैं त्यागा और तपस्वी के उनसे वस्त्रना के लिए ।

मदनमोग्ग ने ठंडी भाँस नी कि आगामा कायप्रम तो इनका उदा अछा है । मुझे थाया है अत्र मेरा रखा हो जाएगा । उमन कहा—विद्याधर मरा एक प्रायना है । भावना है कि आप तीर्थ पर जा रहें हैं तिन मुनिया का वस्त्रना का जा रहें हैं मरा भा रचि है ता पहन हम गुम निमित्त का उपयोग किया जाए । पत्र अपनी आमा का दर जा गू व चरणा म अर्पित किया जाए और फिर तप जावन का ज्ञान का जाए । विद्याधर ने माचा—आज नया बन बन नहीं परमा आधिर है ना यह मर अधिका मे । धनि शान्तिपूजक वा हन निवल आता है तो न भी क्या जसगस्ता बन ? उमन वना—ठीक है । पहन गया । मन्त्रिजा म दान कर रहे हैं । वना क्या प्रसंग बन हा चुका था ।

मन्त्रि म दशन करत मदनमोग्ग अपना जन्म गति का उपयोग कर रहा है । वात तो वहाँ भा महा चन रणे है कि हम वाणा का मनुष्यवाग करें । उपयोग का करने हैं जितना का पूर तिन घमान हैं पर प्रभ-मरण म महापुण्या क विनन म उनक जावन गिर्य का पदन म, स्वाध्याय म हमार समय का उपयोग विनना था है वहाँ तो उपयोग का गत भा अत्रा नया गयता । वहाँ मन घसगता बनरना है । कर्ष व्यक्त ता एत है जिनता रचि नया है । न अपना रचि का छिपान न तिन भाभावागे गत है और यह दर है कि अर माणव मुग्गारु तस्य मन्त्रि म जा कर डाक करना हम रहा जाता । प्रभार हमरा अच्छा नया गयता । एम धार यह व्यक्ति यदि करता है जा मय घर म बठ करण-पात लवान म अरिहन्त-मरण करना है ता विमा अपना न उनका वस्त्रना अच्छा हा गयता है फिर भा मन्त्रि जान वात डाग करत है पर वात तो तिरा मर है । फिर ता मरा मुनिया दाया है । गान क रित भा जा रहे न पीन क रित भा ता नया चारक म भा ता रह हो विवात गान म भा जा रह हा एत या अण केंय दि यह माण्डिक टा मरा है सामाजिक ध्येयना म आत्म-माध्या का क्या मध्य ? मन्त्रि मत्र नी अत है अरत मन वा पवित्र यनन क निमित्त आत है । अरत भाया का गठ कर आता है ।

जान कि जब हमारा आत्मा शिष्य रूप म उभर नहीं उठ पाता तब तक हमारा भा वा हर निमित्त प्रभारित करता है एतना अनुम विनिता म करत क रित हम जन्म निर्मित का आश्रय मन्त्र है । मन्त्रि गतिगत जात है कि वहाँ का वागावरण पवित्र है वहाँ का वायुमण्डल पवित्र है । वहाँ आत वात अरिहन्त प्रभु का

भक्ति करते हैं। वहाँ आँखे अरिहन्त मुद्रा को देखेगी। कान अरिहन्त की महिमा को सुनेगे और जीभ से भी अरिहन्त की जाप होगी। घर में बैठ कर वह भाव आये, न आये, किन्तु मन्दिर में तो आयेगा ही। होता ही यह है। जैसे ही हम वहाँ जाते हैं—‘नमस्कार हो, पार्श्वनाथ स्वामी को नमस्कार हो, महावीर स्वामी को नमस्कार हो’। ऐसे शब्द आपोआप निकल जाते हैं। सस्कार है। वहाँ हम नमस्कार की भावना से जाते हैं तो उन क्षणों में जो हमारे पवित्र भाव आते हैं, उनसे हमारे सस्कार बनते हैं। आपोआप बनते हैं।

मदनरेखा भी स्तुति कर रही है। कर रही है कि ‘हे प्रभो, मेरी आत्मा भी वास्तव में मूल रूप में तो आप ही की तरह है, किन्तु मैं कर्म-मंयोगी आत्मा हूँ, आप कर्म-विरहित आत्मा हैं। मेरी शक्ति अव्यक्त है, आपकी व्यक्त है, इसीलिए हे प्रभो मैं तुम्हारे द्वारे आयी हूँ। भक्ति कर रही हूँ। स्तोत्र बोल रही हूँ। मनोयोग लगा रही हूँ। वचनयोग लगा रही हूँ। तीनों योगों की एकता से अरिहन्त-भक्ति में तल्लीन हूँ। ऐसी भक्ति करते हुए अरिहन्त स्तुति करके, चैत्य-वन्दन करके विद्याधर के माथे वह पहुँच गयी वहाँ जहाँ मुनिराज विराजते थे। दर्शन करने के लिए जैसे ही गये, व्याख्यान चल रहा था। हजारों नर-नारी वीतराग-देशना सुन रहे थे। मुनि भी विशेष आत्म-माधक, मन पर्यय जानी थे। मन पर्यय जानी का अर्थ क्या है? मनोगत भावों को जानने की जिनमें शक्ति ही अर्थात् जिनकी आत्मा इतनी पवित्र हो गयी हो कि जो दूसरों की मनोभावनाओं को जान सके उन्हें मन पर्यय जानी कहते हैं।

ज्ञान के पाँच भेद हैं मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय, और केवल। मन पर्यय ज्ञान का अर्थ है—‘मनोगत भावों को जानना’।

मभा में आ कर जैसे ही बैठे मुनि ने, मनोगत भावों को जान लिया। जाना कि यह विद्याधर, इसके साथ जो नारी है, उसके मनोभाव क्या हैं? जानते ही उन्होंने अपने प्रवचन में यही विषय ले लिया। कहने लगे—मनुष्य वही है जो सदाचारी हो। मनुष्य वही है जो परनारी पर लुभाता नहीं। मनुष्य वही है जो अपनी मर्यादा में रहता है। मर्यादाहीन जीवन जीना पशुओं का काम है। इन्सान के जीवन में, कार्य-क्षेत्र में कोई मर्यादा, कोई नीमा, कोई विभाजक रेखा होती है, और उसका उल्लंघन जो करता है वह सदाचारी नहीं है। उन्होंने यह विषय लिया और ब्रह्मचर्य की महिमा गायी कि मनुष्य-जीवन पा कर करने योग्य कार्य हैं पाँच इन्द्रियों के विषयों को क्षीण करना, उनका निरन्तर क्षय करना; क्योंकि आहार, भय, मैथुन, और परिग्रह, सजाओं का योग आज से नहीं, अनन्त काल से है। इन सजाओं के अधीन होकर ही हमारी मारी प्रवृत्ति है, आचरण है तो जिसे हम महत्त्व देगे वह निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण बना ही रहेगा। जिस

वक्ष को हम प्रतिदिन मीचेंगे, वह मदा हरा भरा रहेगा। यदि वक्ष का मुखाना है तो पहले जल म पानी डालना बन्द कराना हागा। जल म पानी डालना कम करेंगे तो निश्चित रूप मे एक दिन वक्ष सूख जाएगा, किन्तु यदि जडा म पाना डालना ही हमने कम नही किया तो फिर ऐसा कमे हागा ?

जा भी हमारे मनोरथ हैं उन की पूर्ति म यदि हम जीवन भर लिये रहेंगे तो हमारा पाच इन्द्रिया के विषया मे जो रस है जा राग है वह कभा कम नहा होगा। कम कय होगा ? जय हम सकल्प-पूर्वक इच्छा-पूर्वक उस पदार्थ के प्रति जो मोह है उसे तोड़न के लिए पदार्थ का परित्याग करेंगे। यदि पदार्थ का त्याग किया और पदार्थ के राग का त्याग करने का विचार नही आया ता फिर उमम रम आने लगता है। इसका अर्थ यह हुआ कि पदार्थ-न्याग ता हुआ किन्तु पदार्थ त्याग क बाद उसके स्वाद क प्रति जो एक उदामीनता आनी थी वह नहा जायो। क्यों नही आयी? चकि रम नही सूखा। 'उत्तराध्यन मून' मे कहा है बुद्धि-पूर्वक त्याग हा वास्तविक त्याग है। पदार्थ-त्याग जरूरा है, किन्तु वह पदार्थ के प्रति रम को मुखाने के लिये जरूरी है अथात कालान्तर म हमारा मन स्थिति ऐसा हो जाए कि पदार्थ सामन हा, किन्तु उमका राग हमार मन म नहा। एसा अवस्था तब तक नही आनी तब तक उम पदार्थ का त्याग ता हो जाता है किन्तु उसवे राग का त्याग नही हाता। पदार्थ क राग का त्याग नही हाता ता पदार्थ को खाये या पाय बिना भा उमके राग का कम-बधन होता रहता है। आप कहेंगे ऐसा कस दाता है ? होता है।

मान लीजिय आज से दम बप पूर आपन कोई पदार्थ खाया। बहुत रम लेकर खाया। वह बहुत ज्यादा पसन्द आया। दम बप बान गय, किन्तु इसके बाद भा यदि उसी क्वानिटा का पदार्थ खान के लिए हम बटन हैं और उसवे स्वाद का विचार करन हैं ता हमारा जो उम पदार्थ का रस है वह रस हम दस बप पहले खाय हुए पदार्थ को याद दिला देता है। मन कहता है कि भने अज हमन खाया और भी कई बार खाया, किन्तु दम बप पहले खान म उम क्षण हम जा आनन्द आया था वह आनन्द आज तक नही आया। उम पदार्थ क रस का राग आज भी भीतर बना हुआ है। पदार्थ ता नही ह किन्तु पदार्थ म जो स्वाद आया, उम स्वाद का महिमा आज भी हमार मन म ह। यदि वह महिमा हमारे मन म है ता कम-बधन है।

हा सबता है काइ प्रश्न कर कि आज हम याद आया इर्माण ता हमार कम-बधन हुए किन्तु विगत दम बपों तब क्या हम उम स्वाद का माना फेरत रह है ? याद भी नही रहा। काई जरूरा नहा। आनीन बप तब कभी कल्पना म भी नही आया। फिर उमका बधन कमे ? बध है निश्चित है। व्यसन नही,

किन्तु अव्यक्त बहुमान उसका बना हुआ है। यदि उसका बहुमान नहीं होता तो दस वर्ष बाद याद वह कैसे आया? याद आता है, इसीलिए कि अव्यक्त भावों में उसका बहुमान ज्यो-का-त्यो है। किसका? उस रस का, वैसे स्वाद का; इसलिए कम-बन्धन खाया तब तो हुए ही थे, आज तक भी होते रहे हैं, इसलिए कहते हैं कि ज्ञान-पूर्वक त्याग ही तप है। सम्यग्ज्ञानपूर्वक आराधना ही आराधना है, क्योंकि सम्यग्ज्ञान होने के बाद पदार्थ के प्रति इतने लम्बे काल तक राग टिकता नहीं।

सम्यग्ज्ञान, सम्यक्दर्शन हुए बिना पदार्थ छूट जाता है, पर पदार्थ का राग नहीं छूटता। हमें पदार्थ में भी छोड़ना है, और उसका राग भी छोड़ना है।

कभी-कभी मैं विचार करती हूँ, चिन्तन करती हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि काफी प्रबल पक्ष इस विचारधारा का है कि जब तक राग न छूटे, वहाँ तक त्याग करने से क्या लाभ? कितने ही लोग ऐसे हैं कि जो राग को छोड़े बिना ही त्याग करते रहते हैं? मुझे ऐसा लगता है कि दोनों ही पक्ष, जिनमें मैं भी शामिल हूँ, अधूरे हैं। अधूरे इस अर्थ में कि एक पक्ष मैं त्रिया की बहुलता है, त्याग-तप की बहुलता है, दूसरी परम्परा में त्याग तो बहुत देखा जा रहा है, किन्तु स्वाध्याय की कमी नजर आती है, जहाँ स्वाध्याय हो रहा है, वहाँ त्याग-तप कम दिखायी देता है। आशय यह है कि दोनों ही पक्ष यथास्थान महत्त्वपूर्ण पदार्थ के छोड़ बिना पदार्थ का राग नहीं सूखेगा। लक्ष्य राग को सुखाने का ही रखे। मान लीजिये कि दस वर्ष पहले मुझे मिठाई खाने में रस आता था। मैंने त्याग कर दिया। अब आज जब मेरे सामने मिठाई आती है और मुझे उसे खाने के भाव नहीं आते तो समझ लेना चाहिये कि त्याग के साथ ही उसमें हमारा राग भी नहीं रहा है। पदार्थ को छोड़ने के लम्बे काल के बाद भी पदार्थ के राग छूट भी जाते हैं और ज्ञान-पूर्वक जल्दी भी छूट जाते हैं, इसलिए लक्ष्य तो वह रखना चाहिये पर इसका यह अर्थ नहीं है कि वह स्थिति जब तक पैदा न हो तब तक हम उस आचरण को ही न करे तो फिर हम कमजोर रह जायेंगे। दुर्बल रह जायेंगे। प्रमार्द रह जायेंगे। त्याग-तप जीवन में आयेगा ही नहीं, इसलिए वह नहीं आयेगा, चूँकि आचरण हम कब करेंगे, जब आत्मा का ज्ञान होगा और कहीं आत्मज्ञान हुए बिना यह जिन्दगी खत्म हो गयी तो? आत्मा का ज्ञान करने का लक्ष्य निश्चित रखना है, किन्तु लक्ष्य के साथ ही त्याग-तप भी करते रहना है, क्योंकि जब तक शुद्ध में उसका उपयोग न बने तब तक शुभ में ही होना अच्छा है।

शुद्ध में उपयोग टिकाना, हमारा परम उद्देश्य है, परम लक्ष्य है। लक्ष्य कभी विन्मूत नहीं होना चाहिये, किन्तु जब तक वह प्राप्त न हो तब तक शुभ क्रिया

करन रहना चाहिये। यदि शुभ म आप मय नहीं गूड का जापन किया नहा ता क्या हागा ? जगुद्ध म ही खोजे ?

सम्यक् दशन चारों गतियो म हा मक्ता है। दव मनुष्य तियच और नग्व यम। म हाता है। जय वह चारा ह। गतिया म हाता है ता फिर मनष्य व। महिमा ह। क्या ? मनुष्य का महत्त्व ह। क्या ? जय सम्यक् ज्ञान व। प्राप्ति चारा गतिया म सभव है ता फिर मानव-जवन की, क्या विशेषता है ?

मान लीजिये सम्यक् दशन प्राप्ति व प्रयत्न म व्यक्ति पुरुषाय कर रहा है और वसा करन-करत सम्यक् दशन का प्राप्ति व निवृत्त म। पञ्च गदा आर प्राप्ति म पूर्व ह। उसका अंश कम पूरा हा गया तय ? ध्यान रखियेगा श्रुतिया। सम्यक्दशन म आप समस्त लीजिये—'आत्मज्ञान'। आत्मा का ज्ञान जय का ज्ञान एक शक्ति विषय का ज्ञान। मत्स्य प्रेमा वहिन भय हा किम। म। जाति व। त हा मग मग जत। है मतिण जाग्य का समपती ह। ज्ञान-ज्ञान व ब्रह्म-ज्ञान व त्रिण माधना करत-करत ब्रह्म-दशन या आत्म-ज्ञान या सम्यक् दशन ता म। तहा आर मयक हान म पहन जायुष्य पूरा हा गया काम अधूरा रह गया और आयुष्य पूरा हा गया। ऐम म आत्मा प्रयत्न समाप्त का माय त कर जान। है। ऐम नी जय का नग्व आर तिया गतिया म वह ब्रह्मज्ञान और सम्यक्दशन हाता है जिनम मनुष्य जवन म विक्षप रूप म उनका जाग्यता व। है। यदि मनुष्य-जवन म माधन। उमन गह नहीं व। है ता उस नग्व आर तियच गतिया म काई अवम नहीं है आत्मज्ञान का। सम्यक् दशन का लक्ष्य ता रखन। ह। चाहिये आत्मज्ञान का ता महत्त्वपूर्ण मानन। ह। चाहिये क्याकि जिना आत्मज्ञान व क्रिया पुष्य मश्रय यन कर रह जाग्य। अत उम नग्व का माण नहीं करना है। वहन का तत्पय यह है कि उम लक्ष्य म रख कर जय-तय म। करत ह। रतन। है। ऐम नहा कि जाग्या महान मय्य म नाम तव दा-ता तान-तान वार गत ही। रह मम। उपवास न करे जाग्यल त करे यदि नहा करेगे यह मव ता म छूगा वर ?

प्रारम्भ म ता म मन का ज्ञान त जमज्ञाना पग्या। प्रत्याग्यन त रासना पडग। मनुष्य का मन बच्चा है। उम पक्क कर म रासना पग्या। उमन उच्छ्व-वद नियम व यन पर म। जवन। पग्या। तम वय मगार म बहुत कम जा वर-वद मगावात म म। दूरे नहीं इधर-म उधर नहा। म ता दुयल मन निरल मन ह। वन व। उर्ग। टहनियाँ हमार मन है जाग्यल हम ता म निमित्त। म स्वय का अतय ह। रखना है। उत अतया कर ह। सत्य का अगत रखना है।



किसी ने कहा है कि नम्यकदर्शन के बिना क्रिया निष्फल है। कौरव त्याग-तप में कोई लाभ नहीं है, अतः उनके करने का प्रयोजन क्रिया भी तो बात ऐसी ही हो जाएगी जैसे कोई व्यक्ति है और नदी किनारे पहुँच गया है। किमी ने पूछा—'मैया यहाँ क्यों आये हो?' बोला—'मैं इसलिए आया हूँ कि मुझे तैरना सीखना है।' 'तैरना सीखना है तो तैरना चालू करो, डुबकी लगाओ। मुझे तैरना आता है। मैं तुझे महारा देता हूँ।' 'नहीं, तैरना तो चाहता हूँ किन्तु तब जब मुझे तैरना आ जाएगा तब। जब मुझे तैरना आ जाएगा, तभी नदी में पाँव रखूँगा। जब तक नहीं आयेगा, नहीं रखूँगा।' भाई ऐसा आदमी तो मैंने आज तक नहीं देखा कि जिसने नदी में पाँव न रखा हो, और वह तैरना सीख गया हो। तैरना तो आयेगा ही उसे जो नदी में पाँव रखेगा, डुबकी लगायेगा।' हमारी स्थिति भी ऐसी ही है, इसलिए हमें आत्मगुद्धि के लिए अपने मन को नियन्त्रित रखने की कोशिश करनी चाहिये। एक नहीं बहुत में ऐसे व्यक्ति हैं जो बहते रहते हैं कि जब तक हमारा मन नहीं मानता तब तक दुनिया के मामने दौड़ने में क्या फायदा ?

महापुरुषों की वार्ता का आलवन ले कर यदि पदार्थ के प्रति मन को हमने काम नहीं किया तो फिर मनुष्य-जीवन में आकर क्या किया ? परनारी का विकार से देखना, पापी ने अपनी आत्मा को भरना है। उस मदाचार पर, चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष हो हमारी भारतीय संस्कृति का अहितत्व टिका रहा है, पर योग की बात है कि आधुनिक युग में पाश्चात्य सभ्यता का आँधी भारत में ऐसी आर्य है कि कई जगह धूल जमा हो गयी। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने भारतीय संस्कृति को इतना अभिभूत किया, इतना विकृत किया कि आज शहर में, बाजार में घूमने के लिए जब नारियाँ निकलती हैं, तब कई तो ऐसे वस्त्र पहनती हैं जो अगो का नगा प्रदर्शन करते हैं। माना, जिसके मन में विकार आते हैं, वह तो विकारी है, किन्तु हमने आखिर ऐसा निमित्त ही क्यों दिया ? हमने ऐसे वस्त्र ही क्यों पहिने ? हम इतने सज-धज से क्यों निकले ? श्रृंगार अपने स्वामी के लिए होना चाहिये। श्रृंगार अपनी सीमा में होना चाहिये। बाजार में श्रृंगार क्यों ? श्रृंगार यदि इतना ज्यादा है, अगो का प्रदर्शन यदि इतना ज्यादा है, ऐसे वस्त्र इतने ज्यादा पहिने जाते हैं कि टिकने वाले व्यक्तियों की भी दृष्टि क्षण-भर के लिए टिकती है तो वे स्वयं दोषी हैं, किन्तु ऐसे वस्त्र पहनने वाली बहिन भी दोषी है। उन्हें मर्यादा में रहना चाहिये। वस्त्र ऐसे होने चाहिये कि जब हम बाहर जाएँ तब हमारा पूरा शरीर व्यवस्थित हो।

ससार विचित्र है। अन्धानुकरण व्यक्ति बहुत अधिक करता है, और जो अन्धानुकरण करता है वह दुनिया के इशारे पर नाचता रहता है। आज भारत में

पाश्चात्य मभ्यता क प्रभाव स कितना विवृति या आ गया है हमार आचरण म, चरित्र म ? है वार्न मामा ।

हमन दखा \* मुना है भारताय सस्त्रति जा अहिमक मस्त्रुति है धमप्राण मस्त्रुति \* जिमकी अहिमा म गहरी आम्था है उमके आध्यम्यल भारत म मासाहार किम क्त्र बढ रहा ह ? मासाहार अधिक् किया जाए एस निमित्त भा कितन दिय जा रह \* ? वास्तव म जब डाक् टिकट आदि पर कार्द छाप या काइ मोहर या वार्न चित्र हो ता दग की मस्त्रुति के गारव का बहू हा । किमा न दश क लिए वार्न दी हा उसका चित्र हा । जिमन दश का अनु-शामित रग्ना हा व्यवस्थित चलाया हा उस मश्राट का चित्र हा । मस्त्रुति का सुरक्षा क विचार मनुष्य म आयें एस चित्र टिकटा पर छाप जाए । कइ साम्त्रुतिक निमित्तिया का छाप हा, किनु आज किमवा महत्त्व दिया जा रहा है ? अण्टे का । भारताय जनता जा धमप्राण जनता है उमक मन का धक्का नगना स्वाभाविक है कि आधिर यह कमा प्रचार है ? आज छाटा उम्र म ही बच्चा म विपप-विकाग का भावना बढ जाता है बच्ची उम्र क दम-दारह बप का उम्र क बच्च ममार के जीवन का जानत है क्या जानत है ? मस्त्रुति म विवृति आ गया है । घरा म एम चित्र मटका पर एम चित्र बाजारा म एस चित्र । पिमा का दूषित प्रचार अखारा म मिनगा । बड-बडे पास्टम और वाट भा नगे रहेंगे जहाँ खन नगन चित्र खन का मिनगे । जम क वात् दम-पाच बप क छाट बच्चा का भा य चित्र रग्न का मिनत ह । चित्र दखन म उन्नें जिनका चित्र है उनक चरित्र का जानवारी भी मिल जाता ह । हमारा अमावधानी स आज भारतीय मस्त्रुति म कितना विवृति आ गया है ! !

गृन्थाश्रम मदा स गृहस्याश्रम रहा है । मटा म समारा आश्रम रहा किनु आज ता हर घर म मकान म व्यवस्था एमा है कि छाट-स-छाटा बच्चा जानता ह कि यह कसग किम का ह ? यह विस्तर किम का है ? यहाँ का मिरहान क्या है ? समाज का रानि-नाति हा आज अलग है किनु भारत की अतरात्मा एक थो भारत एक प्राण था आज उस क्स प्रकार क्त्रन दिया \* कि छाट छाट बच्चा के लिमाग म न मानूम कितना बराण्याँ घर कन गया ह । कग मम्बार क्त्रन गय है । स्कन म, कॉलेज म विवाह म पहल म्हा-नग ता जमिवाहित यिमात् क वात् का जीवन जान नगन \* । दाप एक का न्नी अनेवा रा ह । स्वय उमरा ता है हा किनु गम्बारा का भा दाप है । चित्रा का भा दाप ह । इस प्रकार का ता पिम ह उनका भा दाप है । आज ता घर घर म टा का \* जा शायद अर न्कार मे भा आत हा जाता है । जहाँ दादा भा बेटा है दादा भा बरता ह बाप भी बेटा भा भाई भा न्हू भी मास भा-वार्न न्त्रा न्हा काइ

सकोच नहीं। उसमें सब प्रकार की प्रवृत्तियाँ एक साथ सब बैठ कर देखते हैं, मुस्कराते रहते हैं। वाप भी हँसता है, वेटा भी हँसता है। क्या है यह ? अण्डों का प्रचार करने के लिए डाक-टिकटों पर अण्डों के चित्र छापना वास्तव में विरोध करने लायक प्रवृत्ति है। विरोध होना चाहिये। अण्डे में यदि ताकत है, यह कहने के लिए यदि उसका प्रचार किया जा रहा है तो अण्डे में अधिक ताकत तो सोयाबीन में है, उसका चित्र दे। अन्य कई ऐसे पदार्थ हैं, उनकी तस्वीरे दे।

बचपन से ही बच्चों में सस्कार क्षीण होते जा रहे हैं। आज शाकाहारी और मासाहारी दोनों प्रकार के बच्चे एक ही स्कूल में जहाँ अध्ययन करते हैं, भले ही उनकी मेजे अलग लगती हैं, भले ही उनकी भोजन-व्यवस्था अलग रहती है, फिर भी उनकी आँखें एक दूसरे के आहार को देखती हैं। क्या खाया, कैसा लगा, उमकी स्वाद-चर्चा होती है। सस्कार तो वही से शिथिल होने लगते हैं। कभी कहो तो भी तो माँ-बाप कहते हैं—'नहीं महाराज, बच्चे खाते थोड़े ही हैं, उनकी तो मेजे ही अलग होती हैं। कहीं देखने से भी सस्कार बदलते हैं?' निश्चित रूप से बदलते हैं। पर आज अपनी सस्कृति की सुरक्षा की भावना कितनी रह गयी है? देश के गौरव को सुरक्षित रखने का विचार आज कितनों में शेष रह गया है।

मुनिश्री ने अहिंसा-हिंसा का, पाँच इन्द्रियों के विषयों का उत्कृष्ट विवेचन किया। उपदेश देते-देते ही चोर पकड़ बैठे। विद्याधर समझ गया कि आज सदाचार पर जो जितना गुरुजी ने कहा है, सब मेरे ही मन की बात वह है। वे मन पर्यय जानी थे, इसलिए उन्होंने तो लक्ष्य-पूर्वक ही उपदेश दिया था, इसी तरह कितने ही बन्धु और कितनी ही बहिन कहती हैं कि महाराज आज तो आपने व्याख्यान हम पर ही दिया, अरे, हमने तो किसी पर नहीं दिया, स्वयं पर दिया है। अब यह बात अलग है कि जिसके जीवन में जो कमी होती है वह उसे महसूस करता है। महसूस करना ही चाहिये। नहीं तो सुनने से लाभ ही क्या?

इतने में उस सभा में एक दिव्य देव आता है। वह पहले स्त्री को फिर मुनि को नमन करता है। सारी सभा आश्चर्य में पड़ गयी कि यह तो अविवेक हो रहा है। बन्दन तो पहले गुरु का होना चाहिये, फिर सह-धर्मियों का। सब असमजस में पड़े थे। सब की शकाओं को समझ कर गुरु महाराज ने कहा कि यह देव जो कुछ कर रहा है विवेकपूर्वक कर रहा है। इसमें अविवेक का कहीं कोई अंश नहीं है। यदि समझ नहीं पा रहे हो तो स्थिति स्पष्ट है। यह देव और कोई नहीं, युगवाहु का जीव, मदनरेखा का पति है। जब वटे भाई ने छोटे भाई को तलवार से मार डाला और मदनरेखा ने इस क्रिया को देख लिया, जान लिया, उसके कारण को भी समझ लिया तब उसने सोचा— "रोना तो वाद की बात है। जेठजी के प्रति विचार करना भी वाद की बात है।

मझे पहले तो मरत हुए महमान व मन व परिणामा का शान्त करना है। यह विना जान वाता अनिय है जान वाता अनिय है अत एगन उन घटना पर मुताया। घुटना पर मुता वर वना-स्वामिन आपव वट भाई ता निमित्त बन है माध्यम बन हैं। वना-न-वही आपव पूर्वदम का एमा वाग है। परिणामा म शान्ति रखना। यह शगर जात्र नवा वन, बन नही पग्या एव विन जान वाता है। एवा माह मन करना। अपन उह भाइ पर भा द्रप व भाय मन लाता। मैं मन्व जापवी र्ना है जावन भर अपन वनव्य का सुरमित र्ना। मग चिना मत करना उन्वा का भा चिना मत करना। मव अपन अपन कम न वर आय ह आर अपन अपन वमों व पत्रानुमार मर मभ-अनुन का उपभाग वने। तुम ठीक हा जाओ चिना क्या करना? म्ति कुछ हो भा गया, ता जगत म विनन हा जामन-मरन है। अर तुम ता पचाय वष व हा वर जा रह हा विनन एम वन्न आन वट हा गप है जिनव भा-वाप जनमत हा मर गप। क्या चिन्ता करत ?

कहाँ इन प्रकार व उद्गार वात कर हिम्मत यधाना आर वही मरत हुए रा ता तार नाये वजन वात दना 'अर गाहर क्या करें, मन बहुत हा तुया हा रहा है जापना मूल्था ता अभा कच्चा =। वच्च छाट छाट है म ता दहा रिबर आता है कि जाप मर जाण ता इनका क्या हाता? वर पहर हा मर रहा है, उगर वाता न आर मार दिया। एग अनियव का परिणय ता वाता मिन नवा म्नु है सज्जन ता तुना है। एम समय एग लाग वा ता वभा पाव हा ता पटका गहिय। जिना जीये वरमता हा ता इमर्ती व म्नु वर वर उम आत्मा वा वाग मा म विनन वरा हा एग र्नावा वा ता एम वरा दूर हा र्नावा गहिय। मूर व समय ता जा हिम्मत विना मर गाहू विना मर पनापों म मन्वया म ता माह विच्छिन्न वरा मर एमा वात वर जा पर्विणा वा वा मर उमें पाम वटा/विनावा पार्हिय वरावि ता मर वा र्ना हा है छ म रहा ही है मा पकर हा रा रहा है जिनका विर तुना क्या र्नाता उग?

मन्वया व पना का काम जी दिया, मूर व वर दिया। एग एग का काम जिना उन्वाय म उर प्राता का शान्ति म मुनि मिन। यहाँ मी पन्ना का र्ना है कि दर विरव वा परिणय = रहा है वरावि मर तुम्नु का जीव है पौरों दवताव का एर है। अतना पना न हा उन्वाय विना उन्वा विना। मन्वया म प्राता का उन्व विना शान्ति एर म उन्वाय दए एग है उन्व वर पर विना दन्वय : एर उन्वा वा उर आर विरव म्ति उन्वा। उन्व ए उन्वा उन्वाय वरा उन्वा हा है। उन्व एर एर मन्वया का उन्वाय वरव एता म विना अर एर व वर उन्वा एग है वरा मुन्न एग वन्वा विना तुमों मरा एता विना। विनन म उन्वा एग हा है। विनन व वन्वा

है। यदि पत्नी इस प्रकार का वातावरण नहीं बनाती तो पता नहीं ऐसा होता या नहीं होता? पर, उसके जीवन में हुआ इसलिए उसने उसे उपकारी माना।

पत्नी गुरु का काम भी करती है, मंत्री का भी, मित्र का भी काम करती है। गृहिणी का काम भी करती है। एक व्यक्ति में अनेक शक्तियाँ होती हैं। मैं अब तुम्हारा क्या उपकार करूँ? कौन बोल रहा है? वह देव कह रहा है। तुम तो मृत्यु के क्षणों में मेरी आत्मा को शान्ति पहुँचा कर मुझे मन्दकपाय की स्थिति में ला कर देव गति में जाने में निमित्त बन गयी। मैं वहाँ पर हूँ, पर मैं तुम्हारा उपकार क्या करूँ?

इस जीव को ससार में सारे निमित्त मिलते हैं, सारे विचार मिलते हैं। सारे भाव मिलते हैं। चार सजाओ के आकर्षण को बढ़ाने वाले निमित्त तो बहुत हैं पर सद्-गुरुओं की वाणी, महापुरुषों की वाणी, अरिहन्तों का वाणी इस जीव को सत्य तत्त्व समझाने का प्रयत्न करती है। यह सत्य तत्त्व किसकी समझ में आयेगा? कब समझ में आयेगा? यह सब पात्रता पर निर्भर है, किन्तु हमारी यह पात्रता विकसित कब होगी? हमें उसे विकसित करने के लिए अनुकूल निमित्तों में स्वयं को रोज ही लगाना चाहिये। घिसते-घिसाते कभी-न-कभी हमारे जीवन में भी सत्य आ ही जाएगा। यदि वह आ गया तो हमारी जिन्दगी का लक्ष्य सही हो जाएगा, जीवन की क्षण-भंगुर कलिका, जो कल प्रातः फिर खिली, न खिली, मलयाचल की शुचि, शीतल गन्ध, कल प्रातः फिर चली, न चली। कल काल कराल कुठार लिये फिरता, तन डाली नम्र है, चोट झिल्लों-न-झिल्लों क्या पता, कब समय आ जाए? किसका आ जाए? 'दुनिया का समय आ गया है' ऐसा अखबारों में पढ़ते हैं। अनहोनी घटना सुनते हैं। आश्चर्यकारी घटनाएँ हमारी दृष्टि में, जानियों की दृष्टि में आती हैं। कुतुबमीनार का हाल कल ही अखबारों में पड़ा। ओ-हो, कितने बच्चे!!! माँ-बाप ने किस खुशी के साथ विदा किया होगा, जब वे घूमने के लिए निकले तब। अभी तो पूरे पुष्प नहीं बने, किन्तु कली के क्षणों में ही मुरझा गये। इसे एक अद्भुत नहीं, दुःखद घटना कहना चाहिये, एक बड़ी ही विचित्र गर्मनाक घटना घटी कि कैसे पैतालीस व्यक्तियों की मौत एक साथ हो गयी!!!

दुनिया जा रही है। हम भी जाएँगे, रहना नहीं है। जैसे दुनिया की मृत्यु के गीत हम गा रहे हैं, हमारी मृत्यु के गीत भी यह दुनिया गायेगी। पर जाने से पहले कुछ सही उपयोग कर ले, सदुपयोग कर ले, अपनी बुद्धि का, अपने धन का, अपने मन का, अपने तन का। क्षण-भंगुर जीवन की इस कली का जो कल प्रातः समय फिर खिली न खिली, मलयाचल की शुचि शीतल गन्ध कल प्रातः समय फिर चली न चली। कल काल कुठार लिये फिरता, तन डाली नम्र है, चोट झिल्ली न झिल्ली। रट ले हरि नाम अरी रसना; रट ले प्रभु नाम अरी रसना, कल प्रातः समय फिर चली न चली। □□

—इन्दौर ६ दिसम्बर १९५१

मत्स्य का स्थान बदल गया किन्तु सत्स्य प्रेमा नहीं बरत, अर्थात् हम इस स प्रेरणा लें कि जिस स्थान बदलने से हम नहीं बदलते वस ही शरीर के बदलने से आत्मा नहीं बदलती। कपड़ा बाजार में भा सुनने वाले हम थे जन उपाश्रय में भा हम थे और सुभाष चौक में भी सुनने वाले हम हैं। सुनने वाला वा सख्या में भा परिवर्तन होता है, जाड़तिया भा बदलती हैं किन्तु जहाँ तक मेरा प्रश्न ठ मैं ज्या-की-त्या हूँ। इससे बहुत बड़ा सबक मिलता है बहुत बड़ी शिक्षा मिलता है। इसी सत्य का समझाने का प्रयत्न सन्ता ने सदैव किया है कि जाति के बदलने से, देश के बदलने से, शहर के बदलने से गति के बदलने से, कर्मों के परिणाम बदलते हैं, किन्तु आत्मा नहीं बदलती। सच्चिदानन्दघन आत्मा सब देहा में भ्रम योनिया में भ्रम जानिया में बहता रहती है किन्तु आत्मा आत्मा का ममज्ञे ऐमा अवसर लाख चींगसी योनिया, चार गतिया के भ्रमण में भी तम जीव का अन्यत्र बहा नहा मिलता। यदि भूत का भूत के रूप में यह स्वाधार करता है भूल का भूल के रूप में यदि यह समझता है तो तसा मनुष्य जिन्दगी में। यही तो कारण है कि सभी धर्मों के ऋषि-महर्षिया ने सभा सत्ता ने इन सत्य का सुनाया कि मनुष्य-जावन में ही हम मनुष्यत्व प्राप्त कर सकेन ह। उस जिन्दगी में ही आत्मा आत्म-स्वरूप का समझ सकता है। इस शरीर में ध्यान के बाद ही ऐसे माधन हैं।

क्या एस साधन भा सबन सब के लिए हैं? मनुष्य-वृत् प्राप्त करने का पुण्य ता सभी मनुष्या का प्राप्त है किन्तु वह पुण्य भा-पुण्य नग है क्याकि पुण्य काय के अनुकूल वातावरण आर उस पुण्य प्रवृत्ति में लगाने का स्वल्प नहा है और शुद्ध आत्म तत्व का ममज्ञान का लक्ष्य नहा है। मनुष्य शरीर का प्राप्त करने के बाद भी हजारा जाया मनुष्य ऐम हैं जिन्हें अपनी भूलें निकालने का कभा विकल्प हा नहा आता। जा लाग अपनी भूल को भूल के रूप में स्वीकार हा नहीं करत आर जिनका भूल ममघ में आय ऐस माधन ही नहीं मिलत, ऐम निमित्त ही नहा मिलते जब स ही जिन्हें वातावरण एसा ही मिलता है हिसात्मक आचरण, सामाज्य में नामाज्य विचार वाता

वरण जहाँ ममझने-मोचने की शक्ति नहीं होती, हम उन लोगों में अपनी गणना न करे, उन लोगों में अपने-आप को न मिलायें।

हमें मनुष्य-शरीर ही नहीं मिला बल्कि परिमार्जित वृद्धि भी मिली है। मन्मग-रुचि भी मिली है। सत्य को ममझने का वातावरण भी मिला है। उन्नी देह-देवन में विराजमान आत्मा को आत्मरूप में स्वीकार करने की एक योग्य स्थिति मिली है। इस अवस्था को प्राप्त करके जो भी व्यक्ति पुरुषार्थ के लिए लग जाता है, उसका जीवन, उसका जन्म मार्थक है। जिसका जन्म, जीवन मार्थक है, उसकी मृत्यु भी निश्चित रूप से मार्थक है।

मदनरेखा, जिस कथा को हम तीन-चार दिन में श्रवण कर रहे हैं, मृत्यु के क्षणों में जिसने पति का उपकार किया, प्रकृति में जान्ति कैसे हो, इसके लिए उपदेश दिया और यह कहा कि भले मारने में निमित्त भाई बना है, किन्तु कहीं-न-कहीं तुम्हारे पूर्व-कर्म के अशुभ कर्म का उदय है और अशुभ कर्म के उदय ने तथा-प्रकार की प्रेरणा मिली है, इसलिए तुम निमित्त के प्रति राग-द्वेष की वृद्धि मत करना।

इस प्रकार ज्ञान्त परिणामों से जब उसने प्राण छोड़े तो कल हमने मुना कि जहाँ प्रवचन-सभा में गुरु महाराज उपदेश दे रहे हैं और हजारों नर-नारी श्रवण करने के लिए उपस्थित हैं, गुरु महाराज ने मनोगत भावों को जानने की शक्ति से, अपनी आत्मा की शुद्धि से, निर्मलता से जाना इस रूप को कि मदनरेखा, जो विद्याधर के साथ आयी है, उस विद्याधर के मन में मदनरेखा के प्रति कलुषित भाव है, विकार है। उन्होंने 'सदाचार ही जीवन है' इस पर पूरा प्रवचन दिया कि जिस व्यक्ति के जीवन में सदाचार नहीं, जिस व्यक्ति के जीवन में चारित्र्य का महत्व नहीं उसका क्या महत्त्व है? व्याख्यान श्रवण कर उसने मन-ही मन समझ लिया कि गुरु महाराज को मेरे मनोगत भावों की जानकारी मिल गयी है।

जिनकी आत्मशुद्धि बहुत ज्यादा हो चुकी, ऐसे विरले साधकों को एक शक्ति प्राप्त होती है जिसे मनोगत भाव जानने का सामर्थ्य, अथवा पारिभाषिक शब्दावली में मन पर्यव ज्ञान कहते हैं। व्याख्यान सुनते-सुनते उसका मन पश्चात्ताप से भरने लगा। वह सोचने लगा—'मैंने परनारी के प्रति किस प्रकार विकार भाव किये, क्यों किये? अनधिकार चेष्टा की और आत्मा को कलुषित किया। व्याख्यान पूरा होते-होते उसकी मन स्थिति बदल गयी। इस बीच जो देव आया है उस प्रवचन-सभा में उसने नारी को पहले नमस्कार किया। नारी को नमस्कार करके फिर गुरु महाराज को नमस्कार किया। इस अविवेक को देख कर श्रोताओं को आश्चर्य हुआ कि नमस्कार तो पहले गुरु को होना चाहिये था। नमस्कार गुरु को होना चाहिये, नमस्कार एक नारी को कैसे? किन्तु कुछ ही क्षणों में गुरु महाराज ने भ्रान्ति को दूर कर दिया

और कहा—नहीं जा कुछ हा रहा है वह उचित है, उसमें अविवेक नहीं है, विवेक है। उस दब के लिए सर्वाधिक उपकारी यदि काइ है तो यह नारी है। वहाँ उठाने परिचय दिया कि इस नारा ने पति का मृत्यु के प्रसंग पर परिणामा में शांति लाने का प्रयत्न किया। माँ गाँव हो जाए ऐसे शब्दों का प्रयोग किया और जाती हुई आत्मा को आराधना करायी, जिसके परिणामस्वरूप वह दिव्य दब गति में गयी। वायनाम जस ही मम्पन्न हान लगा वस ही दब न कहा मन्त्ररेखा बताजा तुम्हारा क्या उपकार करूँ? तुमने मेरा उपकार बहुत किया। यदि सकलेश के परिणामा में अत्यधिक प्रायश्चित्त के परिणामा में आर प्रतिवार का भावना से मरे प्राण निकलत तो मरा कितना अपकार हो जाता, कितना बिगाड़ हो जाता ?

कालान्तर में प्रतिशांति लन की भावना का नाम ही बर है। यह शोध के आगे की व्यवस्था है। प्राय से भी बदतर स्थिति बर का है, क्योंकि शोध तो तात्कालिक होता है जो तत्काल शान्त हो जाता है, किन्तु बर तात्कालिक नहीं होता। वह याजनावद्ध होता है। योजनावद्ध प्रतिवार का भावना से व्यक्ति बर की भूमिका में चला जाता है। देव न कहा—यदि तुमने इस प्रकार की शिक्षा मुझ नहीं दी होती यदि मरे परिणामा में शांति बन ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं किया होता मृत्यु के क्षणा में यदि तुमने महात्माजी और सन्ता का नाम मुझे नहीं सुनाया होता तो पता नहीं मेरी आत्मा क्या भाव में, बर के भाव में कहा जमती और किस यानि में किस प्रकार कष्ट सहन करता। तुमने मेरा जो उपकार किया है, उस उपकार का कोई चुकारा नहीं है। उपकार' शब्द एक है, उसकी सीमाएँ अनेक हैं। कोई दो राटों खिला कर उपकार करता है कोई दा वस्त्र दे कर, कोई दुर्दिन में दुख के दिना में विमा प्रवार का सहयोग ले कर उपकार करता है। कभी कोई सक्कट में है तो कोई उसका भा उपकार करता है।

परहित निरल जिनके विचार होते हैं दूसरा का हित करो' ऐसे भाव जिनके होने हैं एम व्यक्ति उपकार के लिए उपयुक्त अवसर द्रुत रहते हैं। ऐसे व्यक्ति चाम' खाजते रहते हैं कि क्या कितना की क्या सेवा का जाए कब किसके काम आया जाए? कहा सहयोगी बनू कम सहयोगी बन? वह यह प्रतिक्षण सोचता ही रहना है। उपकार अनेक प्रकार का होता है। यहाँ दब कह रहा है कि मदनरखे, तुमने जो उपकार किया है वह उपकार अपने-आप में अनुपम है क्योंकि वस्त्र का दान, राटों का दान दवा का दान, शिक्षा और चिकित्सा के सहयोग में दान, आदि का भा उपयोगिता है महिमा है आवश्यकता है। यह भा सब उपकार का परिधि में जाता है किन्तु यह उपकार तो कुछ समय के लिए होता है कुछ दिना के लिए होता है, कुछ वर्षों के लिए होता है, एक जिन्दगा का होता है, किन्तु तुमने तो एमा उपकार मरा किया कि मरे मति हा वस्त्र गया। दुःखि यदि मनुखि में बदल जाए तो वस्त्र वडा आत्म शान्ति और क्या होगा? सदुखि का दान हा सब में वडा दान है क्योंकि सदुखि मिल गया तो जावन बदल जाएगा जावन का वस्त्र बदल जाएगा जावन जाने का डग बदल जाएगा।



सन्त-परम्परा आज आपको, हमें जो कुछ शिक्षा दे रही है, नहीं पूछा जाए, तो सत्सग-सभा में कोई दान यदि है, तो वह कौन-सा है? मद्बुद्धि। मुझे याद आता है जब किसी समय नारद मुनि सभा में आये तो राजा ने उनको नमस्कार किया। राजा ने नमस्कार किया और यह कहते हुए नमस्कार किया कि मन्त तुम्हारे आगमन से मेरी तीनों कालों की योग्यता व्यक्त हो गयी; तीन काल की योग्यता सिद्ध हो गयी, कैसे सिद्ध हुई? वर्तमान में सत्पुरुषों की वाणी श्रवण करने के समय में पाप का बन्ध नहीं होता, अतीत के पापों का नाश होता है। सद्बिचार प्राप्त होते हैं, मद्बुद्धि आती है अतः भविष्य सफल होता है। ऐसा निमित्त जीव को अतीत में किये पुण्य का प्रतिफल है। वर्तमान में पाप प्रवृत्ति से जीव बच गया, यह प्रत्यक्ष लाभ है। सद्बुद्धि मिलने से उमका आचरण शुद्ध हो जाएगा, यह भविष्य का मंगल मार्ग है। 'सन्त' का अर्थ आप यह न ले कि मैं स्वयं को सन्त कह रही हूँ। सन्त-परम्परा की कठौ में मैं वस्त्रों से ज़रूर हूँ, जीवन में भी सन्त-स्वभाव को प्राप्त करने का लक्ष्य है, विचार है उद्देश्य है, किन्तु आज की स्थिति में मैं स्वयं को सन्त नहीं कह सकती, क्योंकि मन्त वह होता है जो सत्य को जाने। सन्त वह है जो सत्य में समग्र नमा जाए। सत्य में जो संपूर्ण डूब गया, वह सन्त है। उम सन्त की वाणी ही सन्त-वाणी है, क्योंकि जब तक शब्द हमारे जीवन को सार्थक नहीं करते, तब तक वे अपने नहीं हो सकते, हमारे नहीं हो सकते। न मेरे हो सकते हैं वे, न आपके। उन्हें जब हम पूरी तरह से अपने जीवन में सार्थक कर लेंगे, तब कह सकेंगे कि यह वाणी हमारी है। हमारी नहीं, उन परम पुरुषों की है, शुद्ध आत्म-तत्त्व को अनुभव करने वाले उन जानी गुरुओं की है, जिन्होंने सत्य को अपने जीवन में सार्थक किया। ऐसे सन्तों की वाणी श्रवण करने का, उन सन्तों की वाणी सुनाने का सौभाग्य मुझे मिला है। इस श्रवण में भी, यदि लघुता के, विनय-शीलता के, गुण-ग्रहण के, आत्मकल्याण के, कुछ पाने के भाव यदि हैं तो निश्चित रूप से सत्सग सफल है।

सत्सग में आने के बाद भी, यदि सत्सग में बैठते बक्ता या श्रोता के बीच कहीं अहम् पुष्ट होता है तो समझ लेना चाहिये कि वह लाभ नहीं, अलाभ है। सद्बुद्धि आने के बाद 'अहम्' टूटता है। जब तक असद् बुद्धि है, तब तक अहम् बढ़ता है। सत्य समझ में आ जाए और अहम् न टूटे, ऐसा हो ही नहीं सकता है। यदि अहम् पुष्ट हो रहा है तो सत्य समझ में नहीं आया, यह निश्चित बात है। आत्मज्ञान के बिना, सत्य-ज्ञान के बिना, तत्त्व-ज्ञान के बिना, व्यक्ति का अहम् कभी टूटता नहीं। यहाँ तक भी कहे तो कोई गलती नहीं होगी कि सत्य समझ में आये बिना व्यक्ति सत्य के आचरण से भी 'अहम्' को ही पुष्ट करता है। व्यक्ति अपनी जिन्दगी में अच्छे कार्य भी करता है, शुभ कार्य भी करता है। अपनी सत्ता और

सम्पत्ति का विशेष उपयोग भी करना है ता वही-न-वहा जा कर वह अत्रिकाश अपने नाम के लिए हा करता है। मन्वुद्धि आने के बाद, सत्ता और सम्पत्ति दाना साथक जनत हैं।

देव मदनग्वा से कह रहा है कि तुमने मेरा जो उपकार किया उममे ११ दिन का लाभ नहा मिला मुझे। काई दम दिन मुझे आराम नहा मिला। मेरा बुद्धि के परिवर्तन ने जो मेरी गति बदल गयी और गति बन्धन से मेरे जा जन्म समय के सुसम्भार रह गये उन सुसम्कारा के आधार पर मेरा आत्मा का शुद्धि का अवसर मुझे मिला है।

व्यक्ति के सम्भार साथ चरते हैं। सम्भार का सम्पत्ति आगामा ज्ञान का निर्माण करती है। भविष्य का यदि काई विघ्नार्थ है यदि काई विधाना है ता के सम्भार हा हैं। जिनके जन्म सम्भार होने हैं उन गति का वमः हा मितता है। गति का भी अपने कुछ सम्भार हात है। मैं जब कभी विल्ली का देखती हूँ जो उसका मायावः दृष्टि का देखता हूँ चूहे को पकडने का एक वामना तीव्र अभिजापा हर समय उमके प्राणा म बना रहती है। हर समय प्राण हिमा का मवल्प म वह जाते है। उधर म-उधर चक्कर कोटती रहता है। जय भा मिन जाए जा भी मिल जाए किन्तु मिन जाए मिल जाए' का जा भाव है जहा कहा म भी नह जाव आया है हिमात्मक वातावरण मे आया है वानुपित आत्मा से जाया ह तात्र पपायाके परिणाम म उम गेमी जित्वा मिली है यह उमाका विगमन है। विल्ली का जित्वा उस गति के भी अपन परिणाम है वहाँ का भी घाडा असर है। तात्र हिंसा के भाव म जान म, मन्त्रित परिणामा म हर समय जा मन्वद्य हाता है वह दुखनः। दुबुद्धि निश्चित रूप से फिर दुगति देता है। यह दुबुद्धि हा दुगति देने वाला है। मुबुद्धि मुगति देने वाला है कमलिए मुबुद्धि (समति) प्राप्त करन का लिए हम मत्सग म आते हैं। मत्सग स सदबुद्धि प्राप्त हाता है। यदि बह मिन गया तो मन्चरण हागा और यदि मदाचरण हागा ता एक नयी अनक जन्मा म सुमम्भार उम मिलेंगे। दव न कहा मन्चरणे तुमन मरा जा उपकार किया है उम उपकार का काई उत्तर मैं कम पू? मैं चाहता हूँ कि मैं भा तुम्हारे कुछ काम आऊँ। मैं भा तुम्हारे प्रति वृत्तता व्यक्त करूँ।

मज्जन व्यक्ति सत्ता मोचते हैं कि वे किसी के काम आ जाए। किसी का भी काम आ जाए किसी की जरूरत म महयोगा बन जाएँ। उनका धन, उनका शक्ति हिमा के काम आ जाए। उनके माधन, उनका सुविधा किसी की भी पराना का काम कर जाए। ये विचार समति से आते हैं और यह समति आती है सत्सग मे।

मदनरेखा ने कहा—मेरी भी अपनी आवश्यकता है । मैं यहाँ तक तो पहुँच गयी, कर्मों का नाटक देखती हुई । दृश्य तो बदलते ही रहे हैं । मेरा वचन, मेरी जवानी, जवानी की यह डलान । परिस्थितियाँ बदलती हैं । जेठजी को मेरे प्रति विकार-भाव आये जिनके फलस्वरूप उन्होंने अपने भाई की हत्या की (मेरे पति की हत्या की) । वहाँ से फिर मैं अपने प्राणों की सुरक्षा के लिए, सतीत्व की रक्षा के लिए जंगली में एकाकी घूमती रही, पुत्र को जन्म दिया, पुत्र की सुरक्षा के उत्तरदायित्व को कोई ले ले और मुझ में भी अधिक उम्र पुत्र को मुख-मुविधा अनुकूल साधन मिले, ऐसी मंगल कामना के साथ, मोह-रहित कर्मव्य के साथ मैंने उसे एक गिलापट्ट पर सुला दिया । पद्मरथ राजा उसे अपनी गोद में ले गया । उसमें भी मैंने मन्तोप की नाँस ली, किन्तु फिर भाग्य ने पलटा खायो । हार्थी ने मुझे उछाला । मैं विद्याधर के विमान में आ कर गिरी । उम विद्याधर के मन में विकार-भावना ने जन्म लिया—इस तरह जीवन-नाटक के नाना दृश्य मैंने अब तक देखे हैं, किन्तु पता नहीं इस जीवन-नाटक के अब और कितने अंक शेष हैं ?

इतने में विद्याधर, जो उसी सभा में बैठा हुआ था, जिसके विमान में मदनरेखा आयी थी, कहने लगा—‘क्षमा करना, क्षमा करना । वहन क्षमा करना । मैंने तुम्हें विकार-भावों से देखा । मैंने तुम्हें पत्नी बनाने की कल्पना से देखा । अनधिकार चेष्टा मेरे मन में आयी । ओह, मैंने आँखों को विकार-भावों से भर लिया । अपने हृदय को मैंने अपवित्र बना लिया । मैंने एक बार नहीं, आँख चुरा कर भी तुम्हारी ओर मैंने कितनी ही बार देखा । मेरे कल्पित विकार मेरी आँखों से टपक रहे हैं ।’

आँखें हृदय की आरसी हैं, आईना हैं । देखता तो हर व्यक्ति है । देखना तो आँखों का काम ही है । आँखें बन्द करके तो ससार में कोई चलता नहीं है । जो भी चलता है, जब भी चलता है, आँखें तो खोल कर ही चलता है । आँखें खोल कर चलता है तो आने वाले उसे दिखायी देते ही हैं । वह देखता ही है, किन्तु देखने-देखने के ढग में अन्तर होता है । एक सहज दृष्टि से देखता है, एक घूर कर देखता है (विशेष दृष्टि से), विकार-भावों से देखता है । भले ही उसने सामने वाले व्यक्ति का, सामने वाली वहन का कुछ विगाडा नहीं हो, किन्तु अपना तो विगाड ही लिया । पाप तो नहीं कर सका, किन्तु पाप का बोझ तो उसने उठा ही लिया । क्रिया नहीं कर सका, किन्तु परिणामों का बन्ध तो उसे हो ही गया । ‘क्षमा करना, क्षमा करना’ मैंने तुम्हारे प्रति अनुचित भाव किये, गलत भाव किये, विकृत भाव किये । ओहो, गुरु महाराज के उपदेश से मन-ही-मन मेरा मन पश्चात्ताप करने लगा । मैंने कैसी गलती की ? कितना अनर्थ किया ? ओहो, अनन्तकाल से इस जीव को इन चार संज्ञाओं के विस्तार में ही तो जीवन

यवान बनन य मोके मितत रहे अवमर मितत रह । हर गति म य भी प्रकृतिपौ  
 टाका हाता रहा । आज मनुष्य बन कर भा यदि में विकार भावा का आत्मवल्याण  
 म आत्मगुद्धि म प्राघव भाव न ममभु विषय विकार आत्मा का पतन म ने जान  
 वान भाव हैं ऐमा न समू ता फिर डम भन का निवारन का अवमर बन मितगा ?  
 बन मितेगा ? कसकि ऋषि-भर्षिया न आर किमी जिज्ञा या नाम नगी तिया ।  
 किगी अय सिन्दगी में जम भने वान जावा के लिए ग्रय रचना नहा का । पानुआ  
 क लिए कही पुस्तकालय बने हुए नगी दग्य । वाट-गतगा क लिए भा पुस्तकालय  
 रही बन । त्या के लिए भा नग बन और नरक क जीवा क लिए भी नहा बन ।  
 मात्र मनुष्य क लिए हा पुस्तकालय बन मात्र मनुष्य क लिए अ ग्रय तिये गय,  
 और मात्र मनुष्य क लिए हा ऋषि-भर्षिया न उपर्य तिय ।

मनुष्य का कितना महिमा है, बाग मनुष्य अपना उम शक्ति का पहचान  
 सकता !! उम शक्ति का उपयोग ठा सकता ! उम शक्ति का साध न सकता !  
 अपना दृष्टि का अपना भूत निवारन म लगा सकता !!

□ □

—४०१८ ७ डिसेंबर १९८१

‘कहा मेरा मान रे’ (एक पद-पन्ति) । किमका कहना मानें ? क्योंकि आप मेरा कहना मानो, मैं आपका कहना मानूँ, तो उसमें कुछ बनने वाला नहीं है । एक चोर यदि दूसरे चोर को पकड़ता है, तो यह कोई बहूत बड़ी बात नहीं है । चोर, चोर को क्या पकड़ेगा ? जो स्वयं बहिर्मुखी है, जो स्वयं दृश्यमान जगत् के पदार्थों में आनक्त है, जो स्वयं भोग के प्रति आत्मबुद्धि रखता है, जो शरीर को ही आत्मा मान कर चलता है, ऐसी विपम स्थिति में वह किमी का मार्गदर्शक नहीं हो सकता ।

मार्गदर्शक, या प्रेरक वही हो सकता है, जिमने अपनी दृष्टि को बदल लिया है । जिमने सत्य को पा लिया है, जिमने सत्य को समझ लिया है और जो सत्य की राह पर चल पड़ा है, वही मन्वोधित कर सकता है, वही मार्गदर्शन कर सकता है, वही पथ-प्रदर्शक बन सकता है । ये शब्द उन ज्ञानियों के हैं जिन्होंने ज्ञान को आत्मनात् किया; जिन्होंने सत्य का साक्षात्कार किया, जिन्होंने जीवन जीने की दिशा को समझा । जिम तरह में जीवन को समझा है, वस्तुतः उस तरह में तो हम जी ही रहे हैं, किन्तु हमने जीवन को जिस तरह से समझा है, ज्ञानियों ने जीवन को किसी और विरोध दृष्टि से उसे समझा है । जीवन को समझने का हमारा स्तर है शरीर । शरीर-स्तर पर हम जीवन जीते हैं, क्योंकि उसी स्तर पर हम जीवन को समझते भी हैं । जब शरीर-स्तर पर हम जीवन को जानते हैं, समझते हैं, तो शरीर-स्तर पर ही हमारी संपूर्ण यात्रा होती है । और इस तरह ले-दे कर हम जीवन-भर शरीर के इर्द-गिर्द ही घूमते रहते हैं, शारीरिक सम्बन्धों में ही हम उलझे रहते हैं, शारीरिक सुखों के बटोरने में ही हमारी जिन्दगी का समस्त पुरुषार्थ लगा रहता है, क्योंकि हमने जिन्दगी को जितना भी जाना है जितना भी माना है, वह सब शरीर के स्तर पर माना है, शरीर के आधार पर माना है, कहे, शरीर को ही जीवन माना है । इसमें शरीर की मुख-सुविधा का लक्ष्य, दृष्टिकोण हमारा प्रतिपल प्रतिसमय बना रहता है और उसी आधार पर हमारी जिन्दगी टिकी होती है, जबकि जानी कहते हैं—जो भी मिला, जितना भी मिला, जैसा भी मिला है, मिला है; पर सदा के लिए वह नहीं है । अभी है, पर रहेगा वह नहीं ।

आम लोग जब कभी भी ट्रेन से यात्रा करते हैं, सीटें रिजर्व कराते हैं, स्टेशन पर पहुँच जाते हैं, गाड़ी में बठ भी जाते हैं। बठत ही उम सीट स उस स्थान मे ममत्व हा जाता है एक आसक्ति हाती है। मरपन' की भावना हाती है और जहाँ कही काई भी दूसरा उम सीट पर जा कर बठता है आप कहते हैं—यह सीट ता मरा है। यह सीट तो मैंने रिजर्व करायी है। आप किसी और सीट पर जाइये। उम सीट क प्रति उसका कितना गहरा लगाव रहता है कितना ममत्व रहता है कितना अपनत्व रहता है? कभी-कभी तो स्थिति यह भी होती है कि वह फँस कर भी बठना पमद करता है किन्तु दूसरे को जगह देना पमद नहीं करता। पर जब ममय आ जाण, जब स्वय का स्टेशन नजदीक आ जाए और उतरन की वेना आ जाण तब उसी सीट का डाड देता है। मामान लवर उतर जाता है। क्या उमके बाद उमे उम सीट का याण आता है? फिर उसस ममत्व होना है? क्या उमकी याद हम फिर जाती है? क्या फिर हम विचार करत ह कि मेरी सीट पर कौन जा कर बठेगा? मेरी साट का उपयोग कौन करेगा? फिर हम याद नहीं करते। फिर हमं क्या पडी है कि जानें वहाँ कौन आया कौन गया ?

ठीक यहा स्थिति तब हागी जब यहाँ से हमारी बिनाई हागी जिस दिन शमशान-यात्रा हागी जिस दिन पिजर का पछी उड जाएगा जिस दिन यह भवान घाली हा जाएगा। उमके बाद इस जिन्दगी का स्वप्न भी हम नहा आयेगा। उमके बाद इस जिन्दगी के साधन भा स्मृति म नहा आयेंगे। किन किन स सम्पर्क था किन किन स हमारा सम्बन्ध था किनके प्रति हमारा राग था किनके प्रति हमारा द्वेष था किनके साथ हम झगडा करते थे किनके साथ हम भाट करत थे। पूरी जिन्दगी एक स्वप्न बन कर रह जाएगी और इस अय म रह जाएगा कि त्त स्वप्न तब की याण भी नहीं आयगी। बहुत स स्वप्न ऐस हात हैं जिनका याद आता है, किन्तु कइ बार निद्रा म इस प्रकार का भी स्थिति हाती है कि याण नहा पडता कि क्या आया आर क्या गया? यदि वह नीद म उठन क बाद गाब ता कहता है मैंने कुछ देखा था पर क्या देखा था मुये याण नहीं। याद रखे, याद भी नहा रहेगा। आपनो भी मुझे भी रसातिए जानियो न कहा है कि 'यह जिन्दगी एक मुमाफिरखाना है यह जि दगी घडी भर का मना है। यह जिन्दगी नाहिम या एक दाना ह यह कुछ छटा आर कुछ मिट्टा स्वाद है इमका। 'यह पुण्य आर पाप का फिम है। पुण्य आर पाप की फिम म यह आत्मा इतनी आमपत है क्यकि उमने मत्य का नहा ममसा क्यकि उमन दह म विराजमान आत्मा को नहा जाना इमलिए इमकी यात्रा की एक ही िना है एक हा श्रम ह एक ही डग है, अत वह शरार स्तर पर ही जीवन जीता है क्यकि इम ही वह जानता है। जानगा नहा ता जीयगा कम? आत्मा का उसन जाना नही ता जीन का प्रश्न ही नहीं, जा जानगा वह जीयगा जा जानता नहा वह जाता नही, जी नकता

नहीं। जीने का ढंग उसे आता नहीं। जीने का ढंग जा ही नहीं सकता। जानेगा ही नहीं तो जीयेगा कैसे? यदि आपका सम्बन्ध किसी के साथ निश्चित ही न हो तो उसके प्रति आपका ध्यान कैसे जाएगा, उसके प्रति आपका आकर्षण कैसे होगा? जब जान लेते हैं, तब नारा डग बदल जाता है और जब तम जानते नहीं, तब तक ढग नहीं बदलता। व्यवहार नहीं बदलता।

जानी कहते हैं सत्य को समझने के लिए यही जिन्दगी है, यही अवसर है, यही 'चान्स' है, यानी मात्र मनुष्य-देह। लाख चीरासी योनियों में उम देह को ऐसा मस्तिष्क कहीं मिलेगा भी नहीं। ज्ञान-सन्तु भी इतने विष्णुमित नहीं मिलेंगे; सोचने का ढग भी ऐसा नहीं मिलेगा, समझ भी इतनी नहीं मिलेगी, इतने ग्रन्थ भी नहीं मिलेंगे, सत्सग भी नहीं मिलेगा। देह-स्तर पर, शरीर-स्तर पर जीवन जीने के लिए हर जिन्दगी में साधन मिलेंगे, किन्तु स्तर के मिलेंगे, यह बात एक अलग है। दुःखात्मक मिलेंगे या सुखात्मक, यह एक अलग बात है। यदि नरक और तिर्यंच गति का योग है तो जीवन-यात्रा अधिक दुःखद होगी क्योंकि वह पाप-सग्रह का प्रतिफल होगा, और पाप-सग्रह के प्रतिफल के लिए जीव को उन्हीं योनियों में जाना पड़ेगा जहाँ दुःखात्मक वातावरण ज्यादा है, और यदि पुण्य का अवसर आयेगा तो देह और मनुष्य गति; किन्तु सब जगह जहाँ भी मिलेगा, जो भी मिलेगा, स्तर शरीर का ही रहेगा। बुद्धि शरीर में ही उलझेगी। उससे अधिक उसकी कोई चेतना नहीं है। यही तो कारण है कि जो जीव जित समय जित शरीर में जन्म लेता है, उस समय उस शरीर के प्रति ही उसकी आभक्ति होती है, वही वह रहना चाहता है, वही वह जीना चाहता है, वहाँ से टूटना वह नहीं चाहता, वहाँ से छूटना भी वह नहीं चाहता, क्योंकि उसी को स्वात्मरूप मानता है। एक चीटी भी है और वह भी यदि चल रही है, आप यदि उसकी राह बदल देंगे, आप यदि हाथ आडा लगा देंगे तो वह भी दिशा बदलना चाहेगी वह भी वचना चाहेगी, वह भी भागना चाहेगी, इसलिए कि कहीं मैं मर न जाऊँ? जिजीविषा हर जिन्दगी में होती है। एक मक्खी है वह भी वचना चाहती है। एक मकोड़ा भी वचना चाहता है। आपकी, मेरी दृष्टि में उनकी जिन्दगियाँ दुःखद हो सकती हैं, आपकी, मेरी दृष्टि में उनकी जिन्दगियों का कोई अर्थ नहीं होता, पर उनकी दृष्टि में उनका मूल्य है, और मूल्य है इसीलिए उम शरीर में वे रहना चाहते हैं, किन्तु शरीर में जाने का काम कौन करता है? हम ही करते हैं। शरीर को आमंत्रण हम ही देते हैं। इस शरीर का 'ट्रान्सफर' हम ही कराते हैं। कोई और नहीं कराता। किम आधार पर कराते हैं; अपने परिणामों के आधार पर। परिणाम किसके आधार पर है? परिणाम तादात्म्य के होते हैं। जो तादात्म्य बुद्धि है, जो 'देह में आत्म-बुद्धि' है, पर-पदार्थों में जो लगाव है, दूसरों के प्रति जो मोह

है - न सारे निमित्तों में ही यह जीव जा अपने अन्तरंग के राग-द्वेष के भाव हैं उन्हीं में हर समय जाता है। यही भाव इसकी फिर जन्म-पत्रा तैयार करते हैं। तब कृष्णता जिम किर्मी की भी बनती है पूव जीवन के आधार पर ही बनती है। बिना जीवन जीय जन्मपत्री नहीं बन सकती। जावन हमन जमा जाया है, जमा हम जायेंगे धर्मी ही जन्मपत्रा बनगी। जन्मपत्री बनाने का तावत किर्मी जीर भ नहीं है ह यत्नि यह ता स्वयं व पुण्याय भ है। हमारा हा पुण्याय कानातर भ वम मता न मभ्याधिगत हाता है। हमार हा परिणाम हमारा गति तयार करत है। हमार हा परिणाम हमारा ज़िदगी का निर्धारण करत है किन्तु आश्चर्य कि हम शरार का सँभानत है परिणाम का सँभानत है मकान का सँभानत है अधिवार का सँभानत है, परिणामा का नहीं सँभालत !!! परिणाम बिगड रह है इस बात कि हम चिन्ता नहीं है। मामान जिगड रहा है इस बात की चिन्ता है। दूध बिगड रहा है इस बात का चिन्ता हम है। यन्त्र पत्र रूड है इस बात का चिन्ता हम है। दा रागियाँ बेकार जा रही हैं, इसका चिन्ता हम है पर परिणामा का चिन्ता नहा है।

हम दूगरा का मुधारन का प्रयत्न करत हैं। पर दूगरा काँ मुधारत समय क्या हम अपन परिणाम नहीं जिगाडा? प्रश्न अपन आप न काजिय। हम दूगरों का मुधारन का बात करत है किन्तु पहल स्वयं अपन परिणामा का बिगाडन है। परिणामा का बिगाडे जिना यत्नि वादी दूगर का मुधारगाता यत् पानी है। उगव मुधारन का वाँ नग है वाँ नाम है वाँ पत्र है। हमारी स्थिति क्या है? नरागि हमार मानन का दम समपता का दम जमा है उमी आधार पर हमारा गजर दूगरा पर रहती है। हमारी दृष्टि दूगरा पर रहता है। हमारा मध्य दूगरा पर रहता है और कहीं-न-कहीं जा कर हम दूगरा व दाप-पत्रा बन जात है। दूगरा व दाप-पत्रा जात शर दूगर व दाप मिनावन के सिवा हम पहल स्वयं अपना जामा का दापा बनात है। स्वयं पत्र अपन परिणाम बिगाडत है। बिना स्थिति न क्या 'मन्नागज जब हमारा गान हमारा रहना न मान ठीक दम म यह काम न कर ता क्या हम उम जिगा न है? क्या हम उगवा मागमान न तरे? क्या उगव रागिय का जिम्मेवारा हमारी गहा है?' मैन बहा-नहा क्या? कुछ हम सब ता है। एक हम सब गभावना भा उरगा है समपता भा उरगा है। अधिभावन व गान जिम्मेवन भा उरगा है किन्तु स्वयं का समान कर, स्वयं का बिगाड कर नहा। स्वयं का गान वर हम दूगरा का समान ता हमारा पुबमान रहा नहीं हागा। पर मुप ता एमा समता है कि दूगरा का गाना वर, घात ता हम वाँ न करत है स्वयं व परिणाम किन्तु पहल बिगाडत है। स्वयं पहल प्राथ म अभिभूत हा जात है स्वयं का मा पत्र अगाय करना



हैं, स्वयं की वाणी पहले अव्यवस्थित हो जाती है, स्वयं का गरीर पहले क्रोध में प्रकम्पित हो जाता है ।

ऐसी स्थिति में जब हम दूसरो का अनुगामन करने हैं, दूसरो का मार्गदर्शन करते हैं, तो उममें ऋतुता बढ़ती है । उममें जव्दी की अव्यवस्था होती है । हमारा क्रोध उबलता है, और जब हमारा क्रोध उबलता है तो दूसरो का भी उबलता है, क्योंकि वह भी क्रोधी है, हम भी क्रोधी है । क्रोध तो क्रोध को उबालेगा ही । सामने वाला मुधरे, न मुधरे, किन्तु हमारे परिणाम तो बिगड ही गये । ' किमी ज्ञानी ने मुझे कहा कि मुधारना चाहिये, जरूर मुधारना चाहिये, किन्तु मुधारने के लिए कदम बटे उमके पहले स्वयं को सँभाल लेना चाहिये और स्वयं अपने परिणामो में कहना चाहिये कि 'देखो, तुम ठीक रहो तो मैं कहूँ । तुम बिगडो तो मैं न कहूँ । तुम शान्ति में रहो तो मैं हिम्मत करूँ । तुम अशान्त हो जाओ तो मुझे हिम्मत नहीं करनी है ।'

किसी का मार्गदर्शन करने में पहले दो मिनट स्वयं अपनी आत्मा को सँभालें और ऐसा करते हुए निर्णय ले कि तुम पहले मुझे विश्वास करा दो, तुम पहले प्रतिज्ञाबद्ध हो जाओ कि सामने वाले व्यक्ति के व्यवहार में तुम्हारा मन अशान्त नहीं होगा, इसलिए पहले तुम तैयारी करो, फिर मुँह खोलो । यदि हम इस प्रकार का चिन्तन करेगे, यदि हम इस प्रकार का प्रयत्न करेगे और यदि हमारी आत्मा कुछ निर्मल है, कपाय मन्द है, यदि हमें अपने पुरुषार्थ को जागृत करना है, अपने परिणामो को सँभालना है, स्वयं को सुधारना है तो जायद हमें सफलता मिल सकती है । चाहिये तीव्र लगन, प्रखर पुरुषार्थ ।

परन्तु हमारी स्थिति तो यह है कि हम किसी को ऋते, उमके पहले स्वयं को सम्हाले, यह बहुत मुश्किल है । स्वयं की तरफ नजर करे, बहुत मुश्किल है । एक मिनट भी रुक जाएँ, बहुत मुश्किल है । एक मिनट भी रुकने का भान नहीं आता और एक मिनट यदि रुक जाएँ और स्वयं को पहले उपदेश देने लग जाएँ, स्वयं को पहले सँभालने लग जाएँ यदि इस प्रकार की कोई भी प्रवृत्ति करेगा, कोई भी आचरण करेगा, स्वयं अपना अनुभव करेगा और उसे महसूस होगा, तो वह सँभल सकता है । पर सँभलना नहीं है, केवल सँभलने की वाते करनी है, तो उससे कोई लाभ नहीं है । जिसे बदलना है, उसे सँभलना है, और जिसे सँभलना है, उसे ही सोचना है । जिसे बदलना नहीं है, उसे सँभलना भी नहीं है, और जिसे सँभलना नहीं है, उसे सोचना कोई जरूरी नहीं है । जीवन की गाडी जैसी चल रही है, चलती जाएगी और चलते-चलते ही एक दिन जीवन का अन्त हो जाएगा । जीवन का तो अन्त हो जाएगा, किन्तु सस्कारो का सग्रह आगामी यात्रा का फिर आरक्षण (रिजर्वेशन) करा देगा । दूसरा कोई नहीं करायेगा, वह स्वयं ही करायेगा उसके स्वयं के परिणाम ही करायेगे, किन्तु परिणामो को देखने की बुद्धि इस जीव को आवेगी कब ?

चेहर का देखन की बुद्धि भी आयी है शरीर का यह देखता है वस्त्रा का देखता है मकान का देखता है दुकान का देखता है परिवार का देखता है मित्रा का देखता है आर मव का देखत हुए मव का निराक्षण-परीक्षण करता है पर स्वय व परिणामा का समालने का बात इसका निमाग म नहा आनी । जा मवय के परिणामा का समालने का बात करण, मुचे लगना है वह बात करना ही कम कर दगा । उसका बात हा कम ही जाएगा । दूसरा का डेल-मच बनन की आदत भा कम हा जाएगी । जरूरत म ज्यादा वह किमी का मागदशन भी नहीं बनगा । हर समय दाल भात म मूसरचद बनन की आदत भी उसका छूट जाएगी ।

कहावत है न बिना किसी व लिए कि इसन बिना कम काम चलगा ये ता जय हा तय लाडे की पुआ बनती है । काफी लागा की आदत हाता है । शायद मरी भी हा उमम । म भी आपका माय हू जयग नहीं हूँ । मैंन पहन हा कहा है कि उपदश दना मरा काम नहीं है । उपदश नना ही सामूहिक स्वाध्याय है । अतर अप्रिय नहीं है । ता कर्म में जागे हा मकता हूँ दा कदम आप पाछे हा सबत हूँ । ता मजता है अतरग स आप आगे हा सकत हूँ मैं पाछे हा मकता हूँ । काइ दावा नहा है काठ नही है । बिना व परिणाम बिना न देखे नहा है । स्वय व परिणामा का नियम भी यदि हम कर लें ता यह बहुत बडा बात है । दूसरा के परिणामा का नियम वग्न का मापण्ड हमार पास है नहीं आर यत्न करत ह ता यह है अनधिकृत च्छा अनाम का परिचय जह की सूचना । नहीं कर सकत बिना के परिणामा का नियम हम आर नियम करन का जरूरत भी हम क्या है ? क्या जरूरत है ?

हम अपन ही परिणामा का समालना है वहा हमारा मून पूजा है । जा अपन परिणामा का समालना वह जरूरत स ज्यादा बाल भा नहा मवगा । वह तीखा भा नहा बानगा टय भा नहा बानगा । व्यय का भापा म भी नहा बानगा । ईप्या उमक ह्यय म घघवती रह ऐसी भापा भी उसका नहा हागा क्याकि वह बाल जाएगा ।

बिनी समय श्रीकृष्ण स गापियो न कहा कि वय म हम आपका सामन ह किंतु क्या आपकी नजर हमारा तरफ उठी ? आप टकटका लगाय दयत जा रह है, हर समय दयत जा रह है किन्ती दर स हम देख रहे ह कि आपका दृष्टि जमा है वचन वाँसुरी पर । उस-हा-उस देख रहे हैं । वह जब है वह निर्जीव है वह बाप्ट का टुकटा है उमकी तरफ क्या दयत है ? हमारा तरफ क्या नहा दयत ? श्रीकृष्ण मुन्नाय आर बान-तुम्हारा कहना सही है तुम्हारा दृष्टि म यह नकडी है मरा दृष्टि म इसम बहुत गुण है । वह निर्जीव है लकडी का टुकटा है । एमम क्या गुण हा ?—गापिया न प्रतिक्रिया म कहा । श्रीकृष्ण न फिर कहा—जिमना गुणदृष्टि है वह मव जाह गुण दयगा । जिमकी दुगुण-दृष्टि है वह मव जगह दुगुण दयेगा ।

ऐसे भी लोग हंसमार में जो हजार गुणों में भी दुर्गुण खोजने की युद्ध रखते हैं, और ऐसे लोग भी हंसमार में जो हजार दुर्गुणों में भी गुण देखने की युद्ध रखते हैं। यह तो जिनकी-जैसी-दृष्टि उमकी-वैसी-सृष्टि है। यह तो स्वयं की दृष्टि होगी और स्वयं की दृष्टि का ही वह एक बहुत बड़ा प्रमाण होगा। जब गोंपियों ने कहा—'स्वामी बताइये तो मही, उममें क्या विशेषता है?' श्रीकृष्ण ने कहा—'तुम्हें ध्यान होना चाहिये कि यह हर समय मेरे साथ रहती है, किन्तु पास रहते हुए भी जब तक मेरा संकेत न हो, मेरा आदेश न हो, मैं उसे जिह्वा में न लगा लूं, हाँथों में न लगा लूं, तब तक आवाज करने की इमकी आदत नहीं है। यह बोलती है, निश्चित रूप में बोलती है, पर कब? जब मैं चाहता हूँ तब।'

— जरूरत में बोलने वाले कितने लोग हैं, और बिना जरूरत बोलने वाले कितने लोग हैं? जहाँ दो शब्द बोलने की जरूरत है, वहाँ दस शब्द बोलने वाले कितने लोग हैं, और जहाँ बीस शब्द बोलने की जरूरत है, वहाँ दो शब्द बोलने वाले कितने हैं? धन खर्चने के समय में जैसे व्यक्ति एक-एक पैसा सोच-सोच कर निहालता है, दो-चार रुपये भी देता है तो दो-चार बार विचार करता है। किसी और को नहीं देता, परिवार के सदस्यों को ही देता है, किन्तु देते समय कहता है कि देखो मैंने तुम्हें दो रुपये दिये हैं, देखो मैंने पाँच रुपये दिये हैं, भाई, बापस हिमाचल लाकर देना। और देने से पहले विचार करता है कि देने की जरूरत भी है या नहीं? यदि दो की जरूरत है तो पाँच का नोट क्यों पकड़ाऊँ? किसी और को नहीं दे रहा है, फिर भी सोच रहा है कि जरूरत दस की है तो दस ही दूँ। यदि दस की जरूरत है तो बीस क्यों दूँ?

इसी तरह जानी भी शब्दों का मूल्य कम नहीं आँकते। वे अपनी शब्द-शक्ति का उपयोग भी जितना जरूरी-में-जरूरी होता है उतना करते हैं। सोच कर करते हैं, समझ कर करते हैं, उचित करते हैं, अनुचित नहीं करते, अव्यवस्थित नहीं करते। उनके शब्द किसी पर प्रहार करे, किसी को असन्तुष्ट बनाये, ऐसा शब्द-प्रयोग जानियों का काम नहीं है। इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग यदि कोई करता है तो वह अज्ञानी ही है, क्योंकि वह न अपने परिणामों को सँभालने की बात करता है, न यह सोचता है कि दूसरों के परिणामों को ठेस लगेंगी। उसे दोनों की चिन्ता नहीं है। उसकी प्रवृत्ति तो वैसे ही चलती रहती है। श्रीकृष्ण ने कहा—'एक गुण तो मैंने तुम्हें बताया। दूसरा गुण है सरलता और सादगी। यह मुरली बिलकुल सीधी है, इसमें कहीं बॉकपन नहीं है, कहीं टेढ़ापन नहीं है। इमका तीसरा गुण है, जब-बोले-तब-मधुर। कट्टु बोलना इसे आता ही नहीं है। कट्टु नहीं बोलने वाले प्रिय होते हैं, सब के प्रिय होते हैं, क्योंकि उनकी वाणी सरस होती है।'

पानी अनामियों पर ड्रेप नहीं करना। पानी अनामिया के प्रति घृणा भा नहीं करते। उनके प्रति भी व कषाण-वामना रखते हैं। उनका प्रति भी मन्त्र भावना रखते हैं और उनका सम्बन्धिता का उत्तान म भी मन्त्र निरुद्धन शब्दा का प्रयोग करते हैं। क्योंकि व मन्त्र के परिणामा का सम्बन्धित हुए उत्तान ह। और जन्म मन्त्र के परिणामा का सम्बन्धित कर चित्त बावना तत्र उमना बाणी अगन्त नहा हागा। उमना बाणी बहुत नहा हागी। उमना बाणी म प्राय नहा हागा। हम विचार ता करें जरा कि पूरे मन्त्र म चित्तनी बाण इम प्रवाण व शब्द प्रयोग हम करते हैं त्रिभन दूगरा के हृदय का ठेक नगती है। अमू निबन्ध बाणे ह। उन्हें तन्वीक हाती है वष हाता है। आप पायद मानन ह कि यहता हमर हैं इसलिए क्या कहन है किन्तु यहाँ कौन हमारा है कौन तुम्हारा है? हम प्रारम्भ म हा कह आये हैं कि हम मय तो एन दिखें में, कम्पाटमट मं बटन बाल व्यक्तिया जैसे ह। ममम आन पर सभी का माट घानी करनी हाता है और साट घानी करन व वाण मभा अपनी अपना शिवाभा म बन जात हैं। व्यवहार-दृष्टि त भी हम जीवन ऐगा क्या न जाण, त्रिभन जान व बाद भी पाण हमार जावा का मान करें, कहें कि हम म परने भी मृजीन बाणा बडा अच्छी था, बड मधुर म्बमाय का था बडा मोटा उमका व्यवहार था, दूगरा व दुग म काम आन बाणा यह था, छिपन बाणा रहा था अपनी शक्ति का घोंटन बाणा नहीं था, किन्तु जहाँ उमरी उमरत हाती थी, यहाँ आगे जा बाणा यह था।

अपनी शक्ति और मामन्त्र का जो दूगरों के हिम म उगाता है त्रिभन म्ब स वह जगत् का प्रिय बनता है और जो दूगरा का शक्ति का भी बाधितक तन्त्रा द्वारा छिन्ना है उनका प्रति सागा का क्या दृष्टि होती है? वही भी किन्ती पुण्ड्रक म पडा कि माहित्यकार प्रेमचन्द प्रकृति म बहुत उगात थ। दूगरा के हिम म निरुद्ध। उनकी इन प्रकृति व कारण उनका पाण उनका मामन्त्री त्रिभन पाण यन् बन्त निर्भर था। एक मन्त्र उनकी पत्नी व कहा कि 'दियत नहीं, आपका बाण शिवाता पुपना है? क्या पट गया है नया क्या नहीं किना ता?' बाण-मिना ता मू पत्नी पैग दा था। हाँ ठीक है मरा त्रिभनवर। आप शिवा मात्रिय में पैमट वर दूरी। 'मै शिवा मूना, तुम मुझ पैस दना। पम द भी त्रिभन की म भी मय किन्तु उद बाणम सौं धो-पूजा पत्नी त-काट का मपना नहा काय? मै तुम्हें पैग द शिबे। य चपु हा मय मुममद हा मय। अपना बाण बताना की चाहो थ क्योंकि हम मन्त्र की शक्ति यगी रहा हागा। बाद उमरता का मन्त्र बन जाता है बाद जो पर मीठ उठता है वन्त्र बन जाता है प्राय मन्त्र है। तहाँ त्रिभन मय बाण थ।



वा प्रकृति है। ऐसी विपन्न स्थिति में जान वाला व्यक्ति कुछ अपन हाथ में कर, यह बहुत मुश्किल है।

हिन्दी के उप-सामकार-सम्राट प्रमचन्द्र न साचा कि मरा पत्नी के लिए तो यह असह्य है। और उमन एक बार, दो बार तीन बार पूछा— प्रताप क्या नहीं कि क्या किया? उन्होंने कहा कि तुमने काट के लिए मुझे पसंद दिया, मैंने तेरे लिए जार नहीं साच कर गया था कि किन्तु एक चिर-परिचित अध्यापक मुख मिल गया किन्तु सामान एक बहुत विकट समस्या थी। जब उन्होंने मुझमें कहा कि मरा नरका का विवाह है और ज़रूरी म-ज़रूरी माघन जुटाना भी मुश्किल है तो मुझे ऐसा लगा कि काम तो इस बात से भी कुछ समय तक संभव है किन्तु इसमें अधिक ज़रूरी मका काम है— मरिण मैंने स्पष्ट उमर दे दिया। कहने लगी— हाथ जाड़ता है तुम्हारे स्वभाव का। इस लगे बहुत सै समार में उतरता जिनका प्रकृति नहीं है। उदारता के महान नहीं कर सकते। कभी-कभी तो ६० ७० वर्ष का उम्र आ जाए तो भी व्यक्ति अधिकार छोड़ना नहीं चाहता। काफी राग ऐस हैं जाछा भी दत्त किन्तु कहा-कही तो व्यक्ति का मन बात का दुःख है कि बाईं पूछता है नहीं है। का आता माँगता ही नहीं है। मिनमा जाए तो मन से मित्रा के यहाँ जाए तो मन में। जाना पहचान के हाँ तयार रहता है। वह जामकित ताटता है।

एक दिन मैंने कहा था। पंचम वर्ष का उम्र के रात्रि यन्त्र उत्तरदायित्व संभालने वाला घर में हाँ ता उत्तरदायित्व ठाँ हाँ दना चाहिये, अधिकार का कुछ छोड़ दना चाहिए। अपन आप-का अलग कर देना चाहिये जार परिवार से वह देना चाहिये कि हमें तो तुम महान मानना। तुम मय अपन दृग में जीवा अपन दृग में रहे। कहा ज़रूरी म-ज़रूरी ज़रूरत पड़े तो हममें पूछो क्या कि—

मारे आ घर घाली करवानो बेला आबो सभालियो चाबी।

मारे आ घर घाला करवानो बेला आबी ॥

मुझे बन किताबें पूछा कि मार घर खानी करवाना बना जाया यह तो आपने समझाया पर चाबी किम दें यह नहीं बताया? मैंने कहा— भाई कान-मा चाबी ममम रू हा। तिसारा की चाबी पूरा तरह से देना भी यत्नरनाक हाता है किनियुग में। कमा-नभा यन् भी स्थिति हा जाता है कि मज्जनता का गन्त नाम उठा दिया जाता है और ज़रूरत जितना भी अपन पाम न रखें तो बर्षे बुपूत ऐस भी हात हैं कि उनके पाम देना दना तो कुछ नहीं है राटिया का भी ध्यान नहीं रखते इमरिण जहा परिवार के सदस्य इस प्रकार हा वहाँ पूरा चाया देना भी यत्नरना म भरा है। याटा बहुत चाबी संभाल कर भी रखना चाहिये और यन्त्र परिवार के मन्म्या पर विश्वास है तो पूरा तरह से दक्षी चाहिये किन्तु घमण्ड और गहर की चाया ज़रूर देना चाहिये। सत्ता का चाया दे दना चाहिये। घमण्ड का चाबी फिर नहीं रखनी चाहिये कि मुझे

क्यों नहीं पूछा, मुझे क्यों नहीं पूछा ? ये नारे भाव तो छोट ही देने चाहिये, क्योंकि इनके कारण व्यर्थ में सक्लेज के परिणाम होंगे, व्यर्थ में अगान्ति होंगी। उन उमर में हर व्यक्ति स्वयं अपने उचित-अनुचित का विवेक कर लेता है। जानता है, और यदि नहीं भी जानता है तो भी वह जिम ढग में जायेगा उमी ढग में जायेगा। मृत्यु के बाद कहां सँभालने आ सकोगे, इसलिए अधिकार की चाबी जीते-जी दे देनी चाहिये। पचास-नाठ वर्ष की उम्र में तो व्यक्ति को 'घर-में-ही' इस प्रकार का जीवन जीना चाहिये कि अब यह शरीर जितने दिन के लिए है, हरि-भजन के निमित्त है। प्रभु की भक्ति के लिए यह है, मत्सग के लिए यह है। जरूरी-में-जरूरी काम ममझे तो उने कर देना चाहिये, बिना किसी अधिकार-भावना के सहयोग देने की भावना में; क्योंकि काम बिलकुल छोड़ देने पर भी परिवार के लिए मुक्ति हो जाएगा, पर 'अधिकार-की-लोलुपता' छोड़ देनी चाहिये, उनकी आनक्ति छोड़ देनी चाहिये और मान लेना चाहिये कि पता नहीं 'कब मकान खाली करना पड़े।'

पर कहीं-कहीं तो व्यक्ति को इतना अधिक अहं होता है, अधिकार-मुख की इतनी लोलुपता होती है कि 'छोड़ने-की-जात' ही उमें नहीं मुहती। मैंने देखा एक बहिन को, ५५ वर्ष की उम्र, पाँच-छह बेटे, चौका-मव-का-माय, नबरे आठ बजे निकले तो माँके नाँ दम बजे तक मज्जी ले कर आये। एक दिन उमने मेरी बात हुई तो कहने लगी—'महाराज, माग-मज्जी तो मैं ही लाती हूँ'। मैंने कहा 'इम उम्र में और आप माग-मज्जी लाती हैं तो क्या घर में कोई पुरुष नहीं है ? पाँच बेटे हैं, पर उन्हे घर सँभालना नहीं आता। वे महंगी-में-महंगी चीज उठा लाते हैं। और मैं कई दुकानों पर खोज करते-करते, ढूँढते-ढूँढते, भाव कम कराते-कराने ले कर आती हूँ।' मैंने कहा—'कितना फरक पडता है ?' 'रुपये आठ आने का।' 'ममय कितना लगाती हो ?' 'दो घण्टे।' मैंने कहा—'धूल महंगी राल सस्ती। इतने समय तक, इतने कम पैसों की बचत के लिए अपनी ममूची जिन्दगी बर्बाद करना, क्या यह ममझदारी है ?'

जहाँ मृत्यु सिरहाने खड़ी है, जहाँ गाडी कब आ जाएगी इमका कोई अता-पता नहीं है, ऐसे क्षणों में भी व्यक्ति को बाहर की पड़ी है ? क्योंकि उमने शरीर-स्तर पर जीवन जीया है। शरीर-स्तर पर जीवन जीया है, इसीलिए उसकी दृष्टि में महत्त्व पैसों का है, परिवार का है, मम्बन्धों का है। 'समय की बर्बादी' यह कोई दृष्टिकोण है ? समय का उपयोग मेरी आत्मा के लिए हो, ऐसे उसके भाव नहीं हैं, क्योंकि जीवन जीने की दूसरी दिशा उमने देखी नहीं है, जानी नहीं है, अनुभव ही नहीं की है। उसका इसमें क्या दोष ? जानी कहते हैं, इसी जिन्दगी में आध्यात्मिक जिन्दगी जी सकते हो। अन्तर्प्राप्ति कर सकते हो। अन्तर्प्राप्ति के लिए वहिर्मुख वृत्ति को जो इस जीव की अनन्तकाल से है, अन्तर्मुखी बना लेना होगा।

वक्ति जतमुखा बनेगी ता ही आत्म-स्तर पर जावन जीना समग्र हागा जीर आत्म स्तर पर जीवन जान का कता यदि मायन का मचि बन जाण्ग। ता ह्ममय व्यक्ति का अपन परिणामा का सभालन की चित्ता रहगा। बह्म्वय व परिणामा का मेमानते हुए मत्र कुछ बरगा। स्वय वे परिणामा का म्त्र पर कुछ नहा बनेगा। जहा आत्मन्टि नही तत्त्वन्टि नही बनल बाह्य दष्टि है, बहा व्यक्ति शक्ति के अभाव म भा माहम बरता ह्। गलत ढग स गलत निशा म प्रथम बरता है। दूसरा व अधिकार छानता है बहा-बहा ता उमकी इतनी पापन्टि हाता ह् कि यह यह मान कर चरता ह् कि जाना है फिर चाह कम ता जीके? चित्तना भी पाप बह् कर उमक मन म काइ विवन्प हा नही हाता। अपना गति तियन या नन्व तयार कर इमका भी उम कार्द चित्ता नही है। एम नाग हा ह जिनकी दष्टि है कि पा जाऊ बिना तरह पा जाऊँ कम भी पा जाऊ चानाका म पा जाऊ, गलत ढग म पा जाऊँ। गलत ढग म भा उम बहा भी आत्मा का विवन्प नही आता।

बुछ त्ति पहले हमन मुना, अखबारा म भा हम आय दिन पढ रह है प्रचार भी हा रहा है विराध भा हा रहा है कि छावना-मन्टिर (इदौर) म चान्ट मूर्तियाँ चुरायी गया। उमक पहल मह मन्टिर का मूर्तियाँ चुराया गया। एव यप म चित्तन मन्टिर म चित्तनी भूतियाँ चारा जा रहा हैं। दा चार, या दम-माँच यपी म ता जस कार्द यह त्रम निरन्तर है जीर हम ह् कि याडा बन्त वाशिग बर क बठ जात है। और मूर्तियाँ का चारा का त्रम जारा ह्, ज्या-वा-न्या है। यदि मूर्तियाँ म प्रवार जाना रहेंगी और हम सगठित हा कर काई मन्टिर कन्म नहा उठायेग ता एव त्ति मव कुछ चाप्ट हा जाएगा इमनिए पूर। वाशिग करना चाहिये कि यह मिन्मिता बन्त हो, और हम कर तरह म सगठित हा उचित अहिमात्सक मन्टिर कन्म उठाया जाए जयवा हमारा अभावधाना जा उतामनता का गलत फायदा उठाया जाता रहगा।

विवन्पूवन जीरिय का ध्याा रखत हुए अहिमात्मक ढग म सगठित हावर अहिमा प्रेमा, धम प्रेमा लागी की इम प्रनार का आवाज उताना चाहिय सागि सरवार का माचना पढ कि नहा-न-नहा जा कर एम प्रवति का रानना ह्। बच स ऐम हा रहा ह् चित्तना ममय हा गया है जार हम दा तार त्ति आवाज करव चुप न जात हैं आर फिर बहा त्रम चानू हा जाता है। उन व्यक्तिता का बुद्धि ता बुद्धि ह् ही विन्तु जिहें पसों का लानन है व भी क्या कम बुद्धि है? चित्ता है ऐम साग त्तिना यह ध्यापार है कगानि पता हा उतका जतिम नन्म है। विन्शा म प्राचानता का मूल्य बढ़ रहा है। एम मट्टा म हम अपना सराति का अपनी बना की हाता रह है। यह कार्द भी चित्त हा विन्तु ठ तो



अन्तः भावनीय ही। और उन मनुष्य के व्यापार से कितने व्यस्तियों का उपयोग होता है, क्योंकि चौर नौ विमाँ को सुविधा से जा कर दे देता है। फिर तन्मन्त्र-मन्त्री ये बाहर भोजने से, उनका निर्गत करने से।

तो उन आत्मा की सर्तिर्भूतता की वजह से प्रगाट भिरगान्त्र उच होता है, तब वृद्धि उत्तरी दुर्बल हो जाती है कि 'मिँ समाना' यह लक्ष्य नहीं बना मात्र समाना ही लक्ष्य बना रहता है और यह उन्मिँग होता है क्योंकि उगने गरीर-न्तर से अधिक कुछ देगा ही नहीं। गरीर-न्तर ही धान ही यह गगता रहा है।

क्या कभी हम उन लक्ष्य को समझेंगे? क्या कभी हम उन मनुष्य पर विचार करेंगे? क्या कभी हमारी दृष्टि प्रलयात्मा पर जाएगी या उन गरीर-न्तर पर ही जीने-मरने रहेंगे? यह हम तो नच ही रहा है चकता ही रहेगा। यह तर चकता रहेगा, जब तक आत्मगतता प्रारम्भ नहीं होगी, अध्यात्म-यात्रा प्रारम्भ नहीं होगी। जब तक अन्तर्भूत वृत्ति नहीं होगी तब तक यह प्रवृत्ति चकता ही रहेगी, किन्तु मन्त्रग का उद्देश्य मन्त्रग का लक्ष्य एक ही है कि हम उन मनुष्य-जीवन में अन्तर्गता का सुभारम्भ करें। जाने कि इन अन्तर्गता को प्रारम्भ करने के लिए गरीर में कौन अवस्थित है, उनका स्वभाव क्या है, वह कहाँ से जाया है, उहाँ वह जाएगा, जाने के समय उनका क्या होगा; अगली जिन्दगी का आधार क्या है, यह नारा-ना-नारा उनका चिन्तन हो, लक्ष्य हो। केवल पौन, या मात मिनिट आँखे बन्द करके मनुष्य उतना ही विचार करे कि मैं जिनके लिए तर रहा हूँ, जितना कर रहा हूँ, और जैसे कर रहा हूँ, अन्तर्गतता उनमें से मेरे हृत् में क्या आयेगा? इतना भी यदि वह विचार करे जान्त परिणामो में करे एकान्त में बैठ कर करे, और विचार करे कि 'अन्तर्गतता क्या?' क्योंकि मीट तो खाली करनी पड़ेगी। मीट तो खाली हो ही जाएगी, हम चाहे, न चाहे। हमारे चाहने, न चाहने से कुछ बनता-बिगडता नहीं है। दीपक बुझ ही जाएगा चाहे कितने भी व्यक्ति चाहे कि वह जलता रहे, पर दीपक तो बुझ जाएगा, अवश्य बुझ जाएगा; उन क्षणों में, जब तेल खत्म हो जाएगा। तेल खत्म होने पर दीपक बुझेगा ही, हमारी माँस जैसे ही पूरी हुई, मनुष्य-जिन्दगी में हम नदा-नदा के लिए विदा हो जाएँगे और विदाई में हमारे सम्पर्क में रहने वाले मन्त्रन्धी या मित्र या मोहन्ले के लोग, जो भी है, थोड़ी देर के लिए जरूर हमारा नाथ देगे, किन्तु शरीर का नाथ देगे, गरीर को जला कर आयेगे, किन्तु जो अगली जीवन-यात्रा प्रारम्भ होगी, वह इसी जीवन के आधार पर होगी। जो जन्मपत्री बनेगी वह इसी जीवन के आधार पर बनेगी। जीवन परिणामो के आधार पर बनेगा। परिणाम विचारो के आधार पर बनेगे। सत्सग से नत्-असत् का विवेक आयेगा। यदि आपको, मुझे, किसी अन्य को भी यदि परिणाम सँभालने का विवेक आयेगा, तो निश्चित ही मन्त्रग का लाभ लही रूप में मिलेगा, अन्यथा हम मुट्ठी बाँधे आये ये और खाली हाथ चले जाएँगे। □

—इन्दौर : २६-१२-५१

स्वयं-पर-स्वयं का-अनुशासन समय है। मन्मथ की स्वादुति समय है। जमी अमा जा भजन हमन सुना, उसका शक्ति पर ध्यान है। धर्म बिना क्या जीना ? मुझे मार धाल, मारा शक्ति-संयोजन उदा हा प्रिय गया। बड़ा हा अच्छा गया। ऐसा महसूस हुआ कि अनन्तकाल न इस जीव न धर्म-व बिना ही जीवन जिया है। धर्म बिना भला क्या जाना ? अनन्त काल तक इस आत्मा न स्वधर्म का समय बिना ही जीवन जिया है, इसीलिए जन्म व भी भी गुणजना के पास आप जान हैं और धर्म विधि वगैरे है तब उत्तर न एक शक्ति हाता है धर्मनाम धर्म नाम अद्यान्त आपका धर्म का लाभ है। नाम शक्ति चिर परिचित है। नाम शक्ति बड़ा प्रिय है। यह जीव नाम की विद्या न ता जीवन जीता ही है। नाम शक्ति के लिए ता दाह-शौच कर ही रहा है। इसका जितना भी प्रयत्न है वह मय नाम के लिए हा है। यहाँ तब कि धर्म नाम न जिन्हें हम सम्बोधित करते हैं पीर की शरण, गुण की शरण तब ही देविता की शरण जा नत हैं वह मय भा नाम के लिए हा नते हैं। अधिवाप तैसा ही हाता है।

पर वह नाम कौन-सा ? पुत्र का धर्म का ऐश्वर्य का कीर्ति का सम्मान का धर्म के मकान का शरीर का स्वस्थता का। नाम शक्ति बहुत प्रिय है बहुत परिचित है किन्तु पानी गुरु जिसे नाम के लिए हम मकत तैसा है आशीर्वाद दत है क्या उम नाम की आर हमारी नजर कभी गया है ? धर्म का लाभ। धर्म क्या है ? यद्यत् सहायो धर्मो। वस्तु का जा ५ वाय स्वल्प है वहा उमका धर्म है। उम चतय गुण का उम आम गुण का समय बिना जान बिना यह प्राणी अनन्तकाल न नष्टनीत जा रहा है किन्तु मय धर्म क्या है ? यह आज तक भी हमने नया जाना।

धर्म करके भी धर्म का नया जाना। धर्म जान बिना हा मान लिया स्वयं का कि मैं धर्मात्मा हूँ। धर्मात्मा ता मानत है। हर व्यक्ति कहता कि धर्म का बिना क्या जी रहा है हम ? किनी-न किनी धर्म न, जुड़ हुए हा है। नाम धर्मन धर्म न जुग है का गव म। बाद कल्प की भक्ति करता है का नाम का। का शरीर का भक्ति करता है काई अन्तर्गत की ता का महावीर का नामना करता है का बुद्ध की।

गुरुओं से भी वह जुड़ा हुआ है। कोई स्थानकवामी परम्परा के मुनियों को गुरु मानता है, कोई मन्दिर-परम्परा के मुनियों को, कोई दिग्मन्त्र परम्परा के मुनियों को। देव शक्ति की भी उपासना कर रहे हैं। गुरु तत्त्व की उपासना भी कर रहे हैं। धार्मिक क्रिया करके हम धर्म की उपासना कर रहे हैं, ऐसी हमारी मान्यता है, किन्तु इसके बाद भी, यह मव करते हुए भी, जिन उद्देश्य को ले कर उपासना करना है, जिनको समझने के लिए करना है, जिसको पाने के लिए करना है, जिसको जाने बिना ही अनन्तकाल से जीवन जीया जा रहा है, उन आत्मतत्त्व को जानना, आत्मधर्म को जानना ही 'धर्म का लाभ' है। वह लाभ जब हम जीव को ही जाएगा तब फिर न डूबने का प्रश्न उठेगा, न जलने का। डूबने का प्रश्न भी नहीं और जलने का प्रश्न भी नहीं।

जीव को राग के निमित्तों में डूबकी लगाते देर नहीं लगती। द्वेष की अग्नि में जलते फिर भी देर लगती है, अर्थात् द्वेष आया यह फिर भी मालूम पड़ता है, पर राग आया यह तो मालूम ही नहीं पड़ता। किसी जानी ने कहा है कि राग-भाव में व्यक्ति अपने-आपको इतना जल्दी ले जाता है जैसे कोई तालाब में गिरने वाला क्षण-भर में डूब जाता है। द्वेष की अग्नि में फिर भी समय लगता है। रागभाव में डूबते देर नहीं लगती। जब तक यह जीव रागभाव में डूबकी लगा रहा है, द्वेषभाव में डूबकी लगा रहा है, तब तक हमने आत्मधर्म को नहीं ममजा। धर्म करके भी धर्म का लाभ हमें नहीं हुआ। धर्म तो किया, किन्तु धर्म का लाभ नहीं हुआ। धर्म का लाभ क्यों नहीं हुआ? इसलिए कि जो स्वयं का स्वभाव है, उसको इसने नहीं पाया। स्वयं का स्वभाव कैसा है? अभी इस भजन में आप सुन गये—श्रमा, मार्दव, अर्जव आदि किसके धर्म हैं? स्वयं के। धर्म क्या है? अपना स्वभाव। अनन्तकाल हमने जीवन जिया, शरीर-स्वभाव के आधार पर। शरीर के स्वभाव के आधार पर शरीर-धर्म के आधार पर जब हमने जीवन जिया तब शरीर की दृष्टि से ही हानि और लाभ की कल्पना हमारे दिमाग में चौबीसो घण्टे छायी रही। चौबीसो घण्टे हानि-लाभ, हानि-लाभ के विकल्प चलते रहे। हर समय हम प्रकार के विचार चलते हैं, क्योंकि शरीर के आधार पर अनन्तकाल से यह जीव जीवन जो रहा है, और शरीर के आधार पर जो जीवन यह जी रहा है, नाम के आधार पर जो यह मान्यता इसने बना रखी है, जाति जिसका मापदण्ड है, ऐश्वर्य जिसकी कसौटी है, तो इन सब के लाभ-अलाभ को ही यह अपनी जिन्दगी मानता है। जहाँ कहीं भी, जब कभी भी इन लाभों में अलाभ की आशंका भी हमें आती है, वही क्रोध भाव, वही ईर्ष्या भाव, वही द्वेष भाव, वही मानहानि का भाव, वही कपाय भाव हममें करवट ले लेता है। जब तक कपाय भाव है तब तक आत्म-स्वभाव का लाभ नहीं हो सकता। यही बात

सुनना है क्याकि इस सुनन के बाद ही ऐसा जवम्ब्या आयगा जव यह स्वय  
 स्वय न अनुशामित होगा। स्वय स्वय न जनुशामित नव हागा? जब जान का  
 जागरण इममें होगा। कौन न जान का? मय्य जा का मय्यव ज्ञान का  
 तव यह स्वय स्वय का जानगा। वहा न शरीर व प्रति में का जा मायता है  
 वह टूटेगी आर जब में की मायता टूटगा तव उमव मुत्र-पुत्र न जा ह्य और  
 द्वेष हाता ह वट कम हागा। ह्य आर द्वेष जा कम जाव का हा रहा ह उह  
 में का मायता के आधार पर ही ह। जम एक उच्चा रा रण है आवाज उमकी  
 भी आ रही है वह पडाम न रहन वाल किसी परिवार का उच्चा ह। उम वच्च  
 की आवाज का सुन कर आप कहत ह-वच्चा रा रहा है। आवाज ता आ रहा ह।  
 आप वापिस जराव भी द रह न कि भाई किसका वच्चा रा रहा ह? क्या रा  
 रहा है? ममाला वित्तु कुछ हा धणा न उमका अपना वच्चा रान गता है।  
 आवाज नाना का आया। अनुमति नाना का जावाज का हूँ विन्नु पगाम व  
 वच्च का रान की आवाज आन पर हमार मन न का हनचल नहा हूँ। जवाज  
 ता द दिया उत्तर ता द निया उमका मम्हालन का ज्ञात भा व न पर वहाँ  
 में नहा है ममत्व नहा ह नमलिए हूय न रागात्मन उठन-बूट नहा ह।  
 आवुनता-व्यावुनता नही है। मन न परगाना नहा है। क्या नहा है? कवि आवाज  
 ता है वच्चा भा है पर वहाँ में का मय्यध नहा है। में का मय्यध नहा है  
 इमतिण विवन्ता नही है। में का मय्यध नही है इमतिण परगानी नहा है।

हमारे में का मय्यध घन आर आर धरता रूप जार रूपय न जुण दुजा  
 है उमा व कारण हमन शरीर व नाम का अपना लाभ पुत्र व नाम का जाना  
 नाम मरान व लाभ का अपना नाम नान व लाभ का अपना नाम मान  
 निया है। जनी न नामा न समा पना है वन ज्ञा न आ आता न मान  
 भा आता है माया भी आती है राग भी आता न रूप भा जाता ह। भा  
 भा व वीन मय्यध भा टूत है। जीर-जा-आर अपना नान यति भा का  
 दवान हा जाए ता भा नृया हा जात है। आन मरा नान वना गया क्याकि  
 मरा नान मरा पाटिया न जाता ह। मरा नान उहा हाशिया है। उहूत  
 ममस्यार है। उम दवान का वट्टि व पीछ हा ता मरा व्याार नव रण है।  
 वह कहा जीर नना गया भाई व यहाँ गया पर भा ता ता म न में पहन है  
 कतिण अपन व्यापार-नाम न जम न आगवा जाया न न क्या-ना रण दुजा?  
 इय हा गया। यहाँ ता कि उमन विवित्त न भऊ निया, कि यति अपन मर नान  
 का रण ता शिगा नर व तुम्हार आर मर घन व मय्यध टूट जागा। ता  
 नान व जान न भाय उम जागा? क्या पुत्र रा प्रकृति वन नाना /  
 मुछ नहा वनगा। मन दनगा। मन वन गया जार अनाभ का आन न गया।

इस अलाभ की आशका से ही ना मालूम मन मे कितने मक्कप-विकल्प हो गये ? कितनी गलत धारणाएँ बन गयी ? सोचने का ढग कितना बदल गया ? ममझने का ढग बदल गया। राग क्षण-भर मे ट्रेप मे बदल गया। हाडो का मक्कन्ध रह गया। प्रेम सूख गया। ऐसा हुआ क्यों ? धन मेरा है, यह माना। धन के अलाभ की बात व्यक्ति पमन्द कर ले, बहुत मुश्किल हे। धन बीच मे आ जाए और फिर भी मक्कन्ध निभ जाएँ, बहुत मुश्किल हे, क्योंकि धन के लाभ को ही परम लाभ डम जीव ने माना है।

‘धरम का लाभ सबसे बडा लाभ हे’ डम ययार्य का बोध जब डमे होगा, सम्यक्त्व का बोध जब होगा और आत्मा का बोध जब होगा और आत्मधरम का लाभ जब डसे होगा, तब जीव ममझेगा कि मम्यक् दर्शन, मम्यक् ज्ञान, मम्यक् चारित्र्य ही मेरा धन है। यही शाग्वत हे। यही नडा रहने वाला हे, और यही मेरी आत्मा का गुण है। ज्ञान और दर्शन मेरी आत्मा का गुण है। पर डन गुण की डसे चिन्ता नही है। मेरा स्वभाव मे प्राप्त करूँ डसकी कोई चिन्ता नही है। वह स्वय की प्रकृति मे क्षमाभाव रखे, ऐमा प्रयत्न नही करता, स्वय का मयम नही, स्वय का दमन करता है। स्वय के दुर्गुणो का दमन करता है। क्रोध आकर सघर्ष की ज्वालाएँ भडका देता है। सघर्ष की ज्वालाएँ जहाँ है, वहाँ सयम नही है। मयम नही है, क्योंकि सयम तो मम्यक् ज्ञान की स्वीकृति हे और मम्यक् मन की जो यह स्वीकृति है डममे मयम है, अपने-आप को आमूल बदलने का प्रस्ताव हे।

डम जीव ने मोहभाव से ही जगत् को अपने साथ जोडा है और यदि मोहभाव छूट जाए तो जगत् के साथ डमका मक्कन्ध टूट जाए। जगत् रह जाएगा, जगत् मे रह जाएगा। जगत् मे रहेगा। जगत् मे भी रहेगा, किन्तु जब आत्मधरम को ममझ लेगा तब शरीर के प्रति ‘मै’ वृत्ति समाप्त हो जाएगी। ‘मै’ बुद्धि समाप्त हो जाएगी। तो ‘मै’ बुद्धि के आधार पर जो राग-ट्रेप का व्यापार चल रहा है वह भी ठण्डा पड जाएगा, क्यों ‘मै’ गायब हो गया। राग-ट्रेप के परिणाम करने वाला चला गया। कहाँ चला गया ? स्वय अपने रास्ते, अपने घर स्वगृह चला गया तो चलायेगा कौन फिर डम व्यापार को ? ड्रायवर यदि घर चला जाए तो मोटर चलायेगा कौन ? मोटर को चलाने वाला ड्राइवर-तत्त्व है। यहाँ राग-ट्रेप के परिणाम करने वाला आत्म-तत्त्व है। भले ही डमकी विभाव दशा है, भले ही डमकी अज्ञान अवस्था है, पर है वह आत्मा ही। मुर्दा कभी राग-ट्रेप नही करता। राव कभी राग-ट्रेप नही करता। गव मे अनुभूति नही, चेतना नही, स्पन्दन नही। किसी गव ने आज तक नही कहा होगा कि मेरे हाथो की कमाई हे, मेरी भुजाओ की कमाई है, और मैने स्वय अपनी कमाई के आधार पर

यह नगीना खरीद कर जंगूठी बनवायी थी तुम कौन होते हो निकालने जाने ? वहन का तावत नहा है उमम क्याकि अनुभूति नहा है। बिमा शव न यह नहा कहा कि भग हा मखमल के गद्द पर मैं लेट रहा था और तुमन जैम ही मरी स्थिति बदना, मुझे जमान पर डाल दिया। मर पनाथों स ही मुझे अलग कर दिया। मेर मवान मे ही मुझे अलग कर दिया। मर सम्बधिघया न मुझे अलग कर दिया। जम ही मच्चिदानद घन आत्मा निकला तीन घण्ट का पाहुना उतर कर कहीं आ गया ? परिवार न कहा उतार दिया ? चौक म लाकर मुना लिया। मुला ही नहा दिया यह मत्यु के क्षणा म गहा भी बदन दिया। इधर ता मरण का वेदना और इधर माह के अविबक का लिया। अर एक बिस्तर यदि रमक साथ घला भी जाणगा तो क्या हा जाणगा ? जिन्गी की मारी कमाई छाड कर जा रहा है। मारा बभव छाड कर जा रहा है। मारा सृजन उमका यती है। मत्यु क क्षणा म तक्विय को हटाना गद्दे को हटाना, आर पनग स नाच उतारना—एक ता अतर का वन्ना मरण क क्षणा का तीव्र वेदना और फिर उपर वाल काइ टाग खाचन न कोई हाथ खाचत हैं। मरा मरा मरा अब ता यह मर हा रहा ह। यह ता जा ही रहा है। गद्दे का ता बचा ला। गद्दा मखमल का है रजाई नई है। इमी वष भराइ है। इमको ता हटा टा। यह है दुनिया !!! वास्तव म नानी कहत ह कि नू तिस अपना कहता है ? किस अपना कहता है ? जा अपना है उम तून जाना ही नहा उम जिमक जान के बाद तर जीवन की यहाँ काई कीमत ही नहा ह। जिमके जान क बाद ता इम शरीर का जल्ला म-जल्ला राख म बदलन की तयारा हाता है। मवम आगे ले लगे। गार कवे डाना पर न जेग। आगे कर त्य। मवमे आग कर दग।

जान घाना शव कट रहा ह कि तुम भल हा मुझे आगे कर ना पर तुम भी पीछ नहा रहाग। तुम्हारा भा नम्बर आन वाता है। भन आज तुमन मुझे आगे कर दिया। वास्तव म मैं आग हा गया। कवल जान क लिए मैं आग हा गया। जान क लिए मैं आग हा गया। मव पाछ रह गया। तुम कब तक पीछ चनागे ? कब तक पाछ चनाग ? जितन भा तुम मरी श्मशान-यात्रा म पाछ पीछ आ रह हा, तुमम न हर यकित एक दिन 'आग होगा। जिम दिन आग हागा, यही अवस्था हागा। यही अवस्था तुम्हारी दुनिया बग्गा। भूल मत जाना। यही अवस्था हागी और कुठ नहा यहा अवस्था हागा। पर यह जीव ममपता कहीं है ? नहा ममपता। साच कर भी नही साचता। मुन कर भी नही मुनता। पन कर भी नना पनता। उपनग द कर भा उपदश नही जेता। उपनग नना जन्ना नही उपनग जेता जन्ना है। पर नम जाव का दन क ही भाव आत है। मिग्रान क ही भाव आत ह। ममसान के हा भाव आत है। दूमरा का बदनन

के ही भाव आते हैं। सब अज्ञान भाव। सिखाना, समझाना, उपदेश देना सब भाव आते हैं, क्योंकि उपदेश लेने की वस्तु है, देने की वस्तु नहीं है। मुनने की वस्तु है, मुनाने की वस्तु नहीं है। समझने की वस्तु है, समझाने की वस्तु नहीं है। समझने के क्षणों में भी हमारी अज्ञानता, हमारी कल्पना हमको स्वयं से नहीं जोड़ती और मुनने के क्षणों में भी हमारा दिमाग किसी और की याद करता है। वह व्यक्ति ऐसा है, वह व्यक्ति वैसा है, वह व्यक्ति वैसा है, यानी मैं सर्वज्ञ हूँ। जैसे मुझमें तो कोई दोष है ही नहीं। मुझमें कोई कमी है ही नहीं, इसलिए दुनिया को नजर में रख कर सुनता है, किन्तु वृद्धि में किसी और को याद करता है। उसकी आदत ही ऐसी है। उसकी आदत ही ऐसी है।

उसकी प्रकृति ही ऐसी है। सुनने के क्षणों में भी मुनने के भाव नहीं हैं। सत्सग में जहाँ अपने दुर्गुण देखने की वृद्धि होनी चाहिये, वहाँ भी यह मस्तिष्क दूसरों में घूमता है। ऐसे जीव का कल्याण निकट भविष्य में संभव नहीं है। ऐसे जीव का कल्याण हो, बहुत मुश्किल है। बहुत मुश्किल है। मुश्किल क्यों है? क्योंकि अभी तो उसे श्रवण की रुचि ही नहीं है, श्रवण के बाद स्वयं-से-स्वयं-के परिणामों से जुड़ने की रुचि ही नहीं है। कैसे बदलेगा? कैसे बदलेगा? नहीं बदलेगा तो बिना धर्म का लाभ प्राप्त किये ही जैसे अनन्त काल से जीवन जीते-जीते बदल रहा है, यहाँ भी बदल लेगा।

किसका लाभ? पैसे का लाभ। पुत्र का लाभ। जानी कहते हैं—ये सारे लाभ एक दिन तुझे यही छोड़कर जाना पड़ेगा। यदि तूने अपना लाभ स्वीकार नहीं किया, अपने लाभ को नहीं समझा। वस्तु का स्वभाव ही धर्म है, इतना-सा लाभ ही यदि तुझे मिल जाए तो तेरी जिन्दगी सार्थक हो जाए। तुझमें सयम आ जाए। सयम इस रूप में आ जाए कि अज्ञान भाव में दूसरों के व्यवहार की प्रतिक्रिया भी तू अज्ञान भाव से न करे। यह आत्मलाभ है। यह सयम है। क्रोध की प्रतिक्रिया क्रोध से न करे। मान की प्रतिक्रिया मान से न करे। माया की प्रतिक्रिया माया से न करे। ईर्ष्या की प्रतिक्रिया ईर्ष्या से न करे। यदि किसी ने नुकसान भी पहुँचा दिया, किसी ने घाटे में भी उतार दिया (यद्यपि निश्चय दृष्टि से कोई किसी को घाटे में उतारता नहीं), तो भी समभाव, तो भी शान्ति।

स्थूल दृष्टि, ससार-दृष्टि, जरीर-दृष्टि, प्रपञ्च-दृष्टि में हम यही मान लेते हैं कि इसने नुकसान दिया, इसने नुकसान दिया, इसने घाटे में उतारा, उसने घाटे में डाला। जानी कहते हैं, कोई किसी को घाटा नहीं पहुँचा सकता। कुण सुख कुण दुःख देत है, देत करम झकझोर। उलझे-मुलझे आप ही ध्वजा पवन के जोर।

मर द्वारा ही जशुभ कम बाधे गये हैं। शुभ-अशुभ कम की पिम ही मरा जिन्गा  
 म आय दिन मुख जिन्गा रहा है। आप किम नू? क्यों द? किम आत्म  
 नाम हागा उमक विचार पम हागे। जिम जात्मा का नाम हा जाग्गा वह जनाम  
 वग्न वात क प्रति भी नाम के विचार रखेगा। हमका भी भगत हा हमका भी  
 बन्धाग हा। भगवान महावीर पर छह मनीनो तव सगम न्वु न वित्तन उपमग  
 किय? अनुकून आर प्रतिकून। जब वह जान गगा तव उन मामिक क्षणा  
 म भा भगरान महावार का हम वात का मन म विवप नती आया कि हमन  
 मुप वित्तन कष्ट लिय? विवप यह आया विवार यह आया आ हा म निमित्त  
 को न कर हम जाव न वित्तन राग-द्वेष क परिणाम किय। जा हा कहीं भागगा  
 पट उहें? कम भागेगा? हमन कितन कम बाध लिय?

बाँधत हुए जानी हुमता है। बाँधत हुए अपना राता है। विना का  
 पक्षित्य शरीर मित जाता है। परिवार भी अच्छा मित जाता है। पम वात परि  
 वार म भी जम ले नता है। कही दिव्यायी नता ह कि शरार है पर चउन  
 का शक्ति नहा है। कहा जिन्गायी दता है कि शरीर पूरा ह पर बानन का ताकत  
 नहा है। कही मुनन की ताकत नहा है। कहा मस्तिष्क म ममज्ञन की ताकत  
 नहा है। किमी म पूछा ता उनर मितता है-जम स हा पमा ह। यहाँ ता कुछ  
 भा नहा किया उचार न। मग कुछ भा नहा किया। पर मद्र टुआ क्या?  
 कम बाँधत हुए ता हम बड हागियार है। कमी मजाक क मू म उपहास क उगे  
 म कमी जानिया का कभी रत कमा त्याग कमी पबक्यान का। करे नहा  
 जनग वात ह किनु करन वाता का निदा करना जाना की जिन्गा करना  
 जान क माधना का निन्गा करना त्याग जानिदा करना त्याग का मजाक करना  
 सपन्वा का मजाक करना कहा तव उचित है? हा मक्ता ह कि अप विपान  
 मुग म जम न हा मक्ता ह आपका जिन्गा उहूत अधिक है हा मक्ता है आपम  
 श्रद्धा का अभाव ह जोर श्रद्धा कविना जिन्गा धार्मिक अनुष्ठाना का मजाक बनान  
 की गम परिम्यति पमा न। गया ह परन्तु यह मजाक पता नहा कब अपन आप  
 का गता गया विना जोर का गहा म्वय का। जा जाना का ज्ञातना करता  
 है जान की जगतना करता ह जान क निमित्त की अज्ञातना करता है उम  
 अगने जनम म आवाज नहा मितनी। बानन की शक्ति नता मितनी। आ ता  
 हमका शक्ति मित ह आर कुछ मस्तिष्क आग विकसित मित है हमन वात  
 का-ज्ञान विनास्त है। श्रद्धा क अभाव म जिन्गा का दुःखपाग करा ह। नामानूम  
 कदा-बया वात नत है। पर जाना पटन है-बहुन मुक्तिन गगा उन्त मुक्तिन  
 हागा। जिन्का आवाज नहा मित। गम पूछा कि नन बानना बन्धाग करना  
 वित्तना मुक्तिन ह। मन क भाव मन म दगाय करा है। म्व का जानत वर



रहा है। मक्को मिलते देख रहा है। अपने मन के मात्र व्यक्त करते देख रहा है, पर उसके पास वह ताकत नहीं है कि बोलें। पाँच इन्द्रियों में से एक इन्द्रिय भी अनुपस्थित, या अव्यवस्थित हो गयी तो उसकी जिन्दगी मिल्की नहीं मिल्की बराबर हो गयी है। जरा उसमें पूछो कि भाई बोलने का मूल्य कितना है? हमें एक व्यक्ति मिल गयी, किन्तु हमने व्यक्ति का मूल्यांकन नहीं किया। व्यक्ति का दुरुपयोग किया। स्वच्छन्दता में, उच्चैःखलता में, अनुगामनहीनता में, मस्कृति और सस्कारों के प्रति हमारे मन में आदर भाव न होने में।

बहुत महँगा पड़ेगा यह सोदा, बहुत महँगा पड़ेगा यह व्यापार, कब? जब वह कर्म लेने आयेगा। पर आश्चर्य इस बात का है कि उस समय मालूम नहीं होगा कि कौन से कर्म का प्रतिफल यह है? क्योंकि यह पचम काल है। इस पचम काल में प्रत्यक्ष ज्ञानी नहीं है। ब्रह्मज्ञानी, केवलज्ञानी नहीं, श्रुत ज्ञानी नहीं, अवधि ज्ञानी नहीं, मन पर्यय ज्ञानी नहीं। यदि हमारे मन में मग्न भी उत्पन्न हो तो मग्न का कोई निराकरण करने वाला भी नहीं है। फिर भी कर्म का फल हमें बतल रहा है कि कहीं-न-कहीं जीवन में गलती हुई है। आज ऐसे लोग हैं, जिन्हें ज्ञान का शिक्षण बहुत है। जिन्होंने कई विधियाँ (उपलब्धियाँ) अपने मस्तिष्क के प्रशिक्षण में बटोर ली हैं। वही उनका मापदण्ड है। वह उनके सोचने-समझने का डग है। वे स्वयं को नामालूम क्या समझते हैं? किन्तु अल्पता में अधिकता का आभास भी अज्ञानता है। व्यक्ति को जो भी मिला है, अपने-आप में वह बिन्दु है और जो नहीं मिल सका है वह बिन्दु है। जब बिन्दु जितना खजाना पा गये तो बिन्दु जितना ज्ञान पा कर क्या 'अहम्' करना, क्या इतराना, और क्या बाल-की-खाल निकालना? अपनी बुद्धि को प्रमाणित करने के लिए हजारों की बुद्धि को नकाराना यह जानियों की जवर्दस्त अज्ञातना है। पर नहीं समझ आती, नहीं समझ आती। अज्ञान भाव में जीव नहीं समझता। ऐसे ही तो बाँधता है। कैसे बाँधेगा? इस जीव को यदि यह विवेक आ जाए कि कपाय भाव ही अलाभ है। राग-द्वेष के परिणाम ही अलाभ हैं। अहम् भाव ही अलाभ है, तो फिर पाने को रह ही क्या जाएगा? मक् कुछ स्वयमेव होता जाएगा। यदि आप त्याग करते हैं, तप करते हैं, दान देते हैं तो फिर उसका अहम् क्यों करते हैं? उसमें भी मन में उछल-कूद नहीं होनी चाहिये। अरे, क्या दे दिया और क्या ले लिया? देने को रखा क्या है? ससार में नामालूम कितने माई-के-लाल जनम गये। कितनों ही ने हजारों की गरीबी दूर कर दी। कितनों ही ने लाखों को रोटी दे दी? एक नहीं अनेक। भारतीय परम्परा में ऐसे लोगों की कमी नहीं रही है। जगद्गुरु, खेमादेवराणी थे वे लोग जिन्होंने एक ही जीवन-काल में नामालूम कितने काम किये। आज भी, वर्तमान में भी, इसी शहर में, कहना पड़ेगा कि सेठ हुकमचन्द ने अपने वैभव का धार्मिक स्थानों के लिए कितना उपयोग किया। जगत् में एक-से-एक बढ़ कर लोग हैं। व्यक्ति को जो भी शक्ति उपलब्ध है उसे उसका कभी अहम् नहीं होना चाहिये।

मैं क्या हूँ? मुझमें क्या ताकत है? क्या साध-समर्थ है? जान का कुठ भा  
 ता रहा है। ऐसे ऐसे विद्वान् हूँ ममार में जो एक एक शब्द की सम्भारता में आपकी  
 स्तना में जाँ स्तना में जाँ कि एक महान् तब उनका वक्तव्य ही पूरा न हो।  
 एसा ही विद्वान् है। वाक्य-व्ययस्या, उनका वाग्प्रवाह श्रुत बनता है। अपन स अधिक  
 का जो नजर में रखता है उस अपना शक्ति का कभी अहम् नही होता। यदि आप  
 त्याग भी करते हैं, तो भा, ध्यान श्रिय, आप में अधिक त्यागों समार में जनक है।  
 त्याग करना जेग चाज है और त्याग का अहम् हाना विनकुन अलग चीज है।  
 हा मरता है का मुनि उक्त त्याग है जहर वह अपन-आप में त्याग है।  
 दुनिया की दृष्टि में वह महान् है। दूसरा क त्रिण अनुमाना का कारण है। जो  
 'मम कम तपस्या' उनसे लिए प्ररणा दन वाना है कि तु यदि त्यागी स्वयं वह  
 कि मैं ऊँचा और दूसरे नाचे तो त्याग है पर वास्तव में वह है नही कयाकि उसमें  
 त्याग का अहम् है। त्याग और त्याग का अहम् लाना साथ-साथ नहीं चल सके।  
 शायद वह त्याग भी अहम् के लिए ही है। मान तीजिय आप धनवान् है और आप  
 में प्लन में उन्नत का शक्ति है। आप प्लन का मवारा कर रहे हैं। दूसरा व्यक्ति  
 टन का मवारा कर रहा है। तीसरा व्यक्ति व्रम की मवारा कर रहा है। चौथा  
 मानकिन पर मवारा है और हम व्रम पदल भी चर रहे हैं। यदि प्लन में उन्नत  
 वाना व्रम में चरने वाल की ट्रेन में चलने वाल की वाइमिकिल पर चरने वान  
 का मजाक बनाता है तो निश्चित रूप से उस अपना साधन का अहम् है। हाँ  
 दूसरे जहर कहेंगे कि भाइ शक्ति-सम्पन्न आत्मी है इसलिए प्लन में जा रहा है।  
 दूसरा का कहना तो ठाक है कि तु प्लन में वठने वाना यदि दूसरा का उपहाम कर  
 मवान् कर उह कमजोर आर स्वयं का अधिक मान तो जानिया का दृष्टि में वह  
 जानी नही है। जानिया का दृष्टि में वह तपस्वी नही है कयाकि तप का क्या  
 अहम्

खाना शरीर का धर्म है। जाना जन्मा है। जब आत्मा का आत्मधर्म का लाभ  
 हो जाएगा जब आत्मा अपना स्वरूप का समझ लगी तब विचार जायगा—जा हा  
 अनंत जान में शरीर के मयाग में मैं आय दिन आहार ल रहा हूँ जबकि मेरा आत्मा का  
 धर्म तो आहार नही है हा नहीं। यह तो शरीर का आवश्यकता है। यह तो शरीर  
 का पुनि है। पणन कार क त्रिण जहरा है। डाइवर कहाँ पीता है पट्टाल? मेरा  
 आत्मा का स्वभाव अनाहारी है। यदि मैं तप किया तो अनाहारी पण का आरा  
 धना के लिए मैं एक सामान्य प्रारम्भिक प्रिया का है इससे अधिक किया क्या  
 है मैं? यदि कोई न चार पणाय नकर जिदगा जाता है और वह विचार करता है  
 कि मैं तो दिन में दो हा द्रव्य खाता हूँ। यह हा द्रव्य खाता हूँ। मैं ही द्रव्य  
 खाता हूँ। कम करना तो कहा बहुत अच्छा है। पर मैं कम कर दिया इसका बोध

यदि मस्तिष्क में बढ़ गया और दुनिया को यही बताने की कोशिश की तो उसमें तो दस खा लेना ज्यादा अच्छा है, क्योंकि त्याग, त्याग के लिए ही होना चाहिये दिखाने के लिए नहीं। त्याग अपनी रमना इन्द्रिय के निग्रह के लिए होना चाहिये। त्याग आत्मगुद्धि के लिए होना चाहिये। त्याग प्रथमा कराने के लिए नहीं होना चाहिये। वह स्थिति तो कही-न-कही जा कर गड़बड़ है।

हमें अपनी स्थिति को सुधारना है। किसी को नहीं सुधारना, अपने-आप को सुधारना है। यदि अपने त्याग का अहम् आता है तो विचार करना चाहिये 'ओहो, मैंने आज भी समार में क्या रम छोड़ा है? आज भी मनार में ऐंसे-ऐंसे त्यागी, तपस्वी महात्मा हैं, जो पाँच-पाँच सौ आयम्विल एक साथ करते हैं। पाँच सौ आयम्विल का अर्थ क्या है? 'आयम्विल' जैन पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ है—उबला हुआ धान खाना, उसमें घी, तेल, मिरच-मसाले आदि का मयोग किये बिना, क्योंकि मिरच-मसालों के मयोग में, घी-तेल के योग में उसमें स्वाद आता है। 'आयम्विल' का अर्थ है 'अस्वाद तप'। यहाँ एक महिला है, जिसके ९६ दिन में आयम्विल चल रहे हैं। नमक-रहित आयम्विल वर्द्धमान तप की होगी। एक, दो, तीन, चार, बार-बार पारणा, बार-बार आयम्विल करना। मात्र मूग की दाल उबली हुई और दो तीन लूके फुलक खा लेना। चौबीस घण्टों में सिर्फ एक बार, वह भी नमक के बिना। बहुत बड़ी साधना है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस साधना का भी उन्हें अहम् नहीं आना चाहिये। पर हमें यदि उससे कम त्याग में अहम् आ रहा है तो इस अहम् को गलाने के लिए ऐसे व्यक्तियों का उदाहरण अपने दिमाग में रखना चाहिये। हमने क्या किया है? हमने क्या छोड़ा है? आज मुझे यह विचार आया कि मैंने माँ-बाप को छोड़ दिया। परिवार को छोड़ दिया। क्या छोड़ दिया? धना शालिभद्र ने कितना छोड़ा था? करोड़ों के वैभव को आँख उठा कर भी नहीं देखा। मुभद्राजी के एक शब्द पर। जब मुभद्राजी ने धनाजी को कहा और कहा भी क्या, उन्होंने स्वयं पूछा। क्या पूछा कि आज रानियों के बीच धनाजी की जो स्नान-क्रिया हो रही थी उसमें उनकी पीठ पर जो गरम-गरम पानी गिरा, तो उनकी आँखें ऊँची हो गयीं। आँखें ऊँची होते ही उन्होंने प्रश्न कर लिया—तुम्हारी आँखों में पानी क्यों है? मेरे जैसे घर का अनुकूल वातावरण, फिर भी तुम्हारी आँखों में पानी, क्यों? मैं तुम्हारी आँखों में पानी बर्दाश्त नहीं कर सकती। जहाँ स्नेह हो वहाँ आँसू निकल आना बहुत मुश्किल है। वह स्नेह नहीं स्नेह की विडम्बना है। वह सम्बन्ध है, किन्तु सरस नहीं है। जहाँ पारिवारिक जीवन में आये दिन आँसू निकलते हैं, आये दिन घुट-घुट कर आँसू भरनी पड़ती है, वहाँ स्पष्ट ही शान्ति नहीं हो सकती।

धमराजी न कहा—मुमद्राजा तुम्हारी बीवी में पानी क्यों? क्या रिमा न तुम्हारा अवशा का है? मुमद्राजा बोला—नहीं नहीं स्वामी ऐसा बार्क वाग्ण इस परिवार का धर्म है ही नहीं। यह परिवार तो इतना योग्य है इतना सुयोग्य है कि यहाँ तो एक-दूसरे का देख कर मुस्कराहट-मुस्कराहट है। कितना आनन्दपूर्ण है? सम्बन्ध जितने मजबूत है!। दिवाना-हा दिवाना है। हाथी का काम हा नहीं है। यदि प्रकृति का मय न हा तो पत्नी भा है परिवार भा है मुमद्राजा भा है रिमा भा है पर एक प्रकृति न मिला उमका खायातान हाता है। मय मरियामत हा जाना है। मुमद्राजी न कहा—एसा कुटुम्बी नहीं है म परिवार म ता। फिर तुम्हारा आनन्द म पाना क्या है? स्वामिन! मरा धीरा मरा बंधु मरा भाग जातिभद्र जिनका बन्धु का बाई माप आठ ठिकाना नहीं। स्वगति म पिता न प्रमत्त हाकर उमका वत्तान पतिपत्नी का त्रिएजानय जेवर भद्र व बन्धनानात थ। आज क युग न ता कराइपति भा नित नया बन्धु नहा पहा उवता। ऐसा नहा हा मक्ता कि एक जिन का बन्धु दूसरे जिन न पहना जाए, किन्तु जातिभद्रता का यहाँ की अद्वि मिद्धि का ता यह उदाहरण है कि जगत्मान का समय भन का त्याग बिना माह के बरन है कम ही आय दिन नय आभूषण का त्याग भा करन है। नय आभूषण पहिनना आठ बन का आभूषणों का त्याग एसा बभव छाह रिमा उज्ज्वल क्षण मर म छाह रिमा।

त्याग का सम्बन्ध पत्नीयों से नहीं है भावना म है। यदि त्याग भाव आ जाए तो कराडा का बन्धु छाहते भा दर न यग। त्याग भाव नहा आय, उगाय भाव नहा आय ता एक छाहडा म भी माह उमम जाए एक तिनका का त्याग भा मुनिन है। क्या त्याग विद्या हमन? उन महापुरुषों न उन मूर्खों न कितना त्याग रिमा? क्या अनाधिक त्याग रिमा? उमन कहा कि मर भाई एक-एक जिन करन एक-एक पत्नी म बिना न रह है। धमराजा का अनुमाना करन जातिपत्नी पर उमका पुत्राय पत्नी नहा ममा जगा जा उहाँ जबाब म यह कह रिमा कि मुमद्राजा मुग ता एसा समता है कि तुम्हारा पीछ, तुम्हारा भाद्र भन बरागा हा गया बरागा हा कर भी उतार बरागी नहा है। बरान नहा जा कर अभी वह बापर है दर्शन एक-एक पत्नी का त्याग हा रहा है।

यात शुभ गर्वी। मुमद्राजा का शुभ गया। पीछर-पिच का बल रिमा भी नारा का गुन का मित ता बार्क-भा बन्धनता है। और ममयत्त बराति जन्म उमका नहीं है। एसा-बाग बर का रिमा की उगी बन्धनता है। यदि बाई परिवार म पुत्र जाति चाहत है तो उमकी प्रकृति का मर परिवार का मर देना चाहत अनाता है। मुमद्राजी का बन्धु मर बन्धु म। मुमद्राजा का मर म भी निरन क्या विस्वर ता भागा का भनर है मर ता बन्धु का बाई है और

मेरा भाई इतने अधिक वैभव का त्याग कर रहा है उसके लिए ऐसे शब्द !!! धन्नाजी को जवाब दिया और जवाब दिया तो ऐसा दिया कि कहना बहुत महज है. करना, किन्तु, बहुत मुश्किल है। सुभद्राजी ने जवाब दे दिया। स्वामिन् ! कहना ही सहज है, करना बहुत मुश्किल है। त्यागियों की मजाक करना तो महज है, किन्तु एक दिन का रात्रि-भोजन त्याग मुश्किल है। एक दिन रात्रि का पानी त्यागना भी मुश्किल है। जैन जाति से हो, कुल-परम्परा से हो, किन्तु आचार में एक नव-कारसी की पचक्खान करने वाले कितने हैं? नाधु बनने वाला मैं पचक्खान लेता है एक साथ। जाति से जैन हो कुल से जैन हो, किन्तु सूर्योदय से अडतालीस मिनट तक एक छोटा-मे-छोटा पचक्खान करने वाले कितने हैं ?

कहना बहुत सहज है। दूसरो के त्याग का उपहास करना बहुत सहज है। दूसरो के त्याग को नगण्य मानना बहुत सहज है। मालूम तब पडे जब स्वयं त्याग करे त्याग को जीवन में माकार करे। सुभद्राजी ने कहा कि स्वामिन् करो तो मालूम पडे। पर उनका पुरुषार्थ ऐसा जगा, ऐसा जगा, ऐसा जगा कि उसी क्षण उठ गये और कहने लगे—यह चला, यह चला, यह चला, यह चला। करोडों के वैभव को आँख उठाकर नहीं देखा। आठ पत्नियों के आँसुओं को क्षण-भर के लिए धूम कर नहीं देखा। और जब सात दूसरी पत्नियों ने रोकने का प्रयत्न किया, विनय की, क्षमा-याचना की और कहा कि सुभद्राजी की गलती है। हम सात ने क्या विगाडा है ? धन्नाजी ने कहा कि सुभद्राजी की गलती नहीं है। सुभद्राजी ने तो मुझ पर उपकार किया है। वे परम उपकारी है। अभी तक मेरी पत्नी थी। अब मेरी गुरु हो गयी वे। अब तो गुरु के भाव से मैं उनको नमन कहूँगा कि जिसने मेरी आत्मा को जगा दिया। मेरी सोयी हुई आत्मा को जगा दिया। अनादि से पुद्गल के लाभ को मैं अपना लाभ मान रहा था। अनन्तकाल से परिवार के लाभ को मैं अपना लाभ मान रहा था। अनन्त-काल से सासारिक वैभव को मैं अपना लाभ मान रहा था। आज तक, आत्म-धर्म का क्या लाभ है, इसे मैंने समझा ही नहीं था और समझे बिना ही जीवन जी रहा था, इसलिए मैं उनका कृतज्ञ हुआ। इसे कहते हैं सम्यक् धर्मलाभ !

□□

—इन्दौर 24-12-1982

द्रव्य दया भाव दया, स्व दया, पर दया स सम्बन्धित कुछ आत्मिक चर्चा मने का है। प्रमाद-महित प्राणा का हिमा, द्रव्य हिमा है। जहाँ द्रव्य हिमा है मन् वरन व भाव हैं वहा भाव हिमा हा हा जाती है, क्याकि भाव हिमा व बिना द्रव्य हिमा मभव नहा है। हा मवता है किमा व मन म हिमा का विवल्प उठ जाए ता मन् है प्रमाद-महित । प्रमाद' शब्द के अन्तगत कई भाव आ जात हैं।

प्रमाद एव पारिभाषिक शब्द है जन परम्परा का। प्रमाद व अन्तगत पाँच इन्द्रिया के विषय व अधीन हा कर जा किमा की हिमा कर वहा हिमा है। प्राध, मान माया लोभ के वशीभूत हो कर स्व प्राण या पर प्राण की हिमा हिमा है। चार कपाय पाँच इन्द्रियाँ चार विक्रधाए-रान दश भोग भाजन प्रणय जीर निद्रा इन मारे भावा व अन्तगत जिसन स्व प्राण की और पर प्राण का हिमा का उमा व लिए सक्षिप्त शब्द दिया प्रमाद म प्राणा का व्यतिपात । इन भावो व अतिशक्ति किमी अय भाव म अद्वित किमा के प्राणा का हिमा कर ऐमा हा नहा मरता । स्व प्राण या पर प्राण की हिमा म निश्चित रूप म इन पद्रह म स काई-न-कोइ विवल्प मन म रहता ही है। काई-न-काई भाव मन म रहता ह। हो मवता हे कि हन वन पद्रह निमित्त मम किसी निमित्त व अधीन हा कर किमा की हिमा वरन व प्रयत्न करें। मामन वाल का हिमा हा या नहा, जाग यात है किन्तु हिमा क भाव आना हा स्व हिमा है क्याकि प्राध मान माया लोभ राग द्वेष काई-न-काइ भाव आय बिना किमा का नुवमान करे आमा म ऐम परिणाम जायेंग गहा और आत्मा म ऐम परिणामा का आना यही स्व हिमा है इमलिए स्व हिमा के त्रिना पर हिमा हाती नहा है।

माचिन पन्ड स्वय जलता ह फिर नवडी को उताता ह फिर मिगरट का नलाता है बाडी मुलगाता है। वह किमा का भा जलायगी किन्तु चुन् जन बिना नहा। पहले स्वय जदगी फिर दूसर का जलायगी। किसी का नुकसान वरन का भाव, किसी को अशान्ति पदुचान का भाव, किसी की मानहानि वरन का भाव किमा की

धर्म-भावना को ठेस पहुँचाने का साधन निश्चित रूप में स्व-हिमा है। स्व-हिमा के बिना पर-हिमा होती नहीं और स्व-हिमा के बिना जो पर-हिमा है उसमें पर-हिमा का पाप उतना नहीं है जैसे एक डॉक्टर है जो रोगी का रोग में मुक्त करने के लिए ऑपरेशन कर रहा है। वह नव कुछ साधना में कर रहा है बल्कि में कर रहा है, फिर भी कहीं-न-कहीं कोई-न-कोई योग ऐसा बना कि मरीज मर गया। द्रव्य-हिमा तो हो गयी, उनके प्राणों की हिमा तो हो गयी, किन्तु प्राणों की हिमा का पाप नहीं लगेगा, क्यों नहीं लगेगा? इसलिए कि उनकी अंगुणियों में प्राणों को नुकसान करने का विचार नहीं था, फायदा पहुँचाने का नकल्प था। जब भी वह भाव हिमा के बिना द्रव्य हिमा होगी तो वह इस प्रकार ही होगी। वचने के भावों में यदि किसी के प्राण निकल जाएँ तो वहाँ द्रव्य-हिमा है, किन्तु भाव हिमा नहीं है, किन्तु प्रमाद-महित जहाँ प्राणों का नाश है, प्राणों को पीड़ा पहुँचाना है, तल्लीन पहुँचाना है, उनमें मानसिक, वाचिक, कायिक तीनों यागों की प्रवृत्ति का होना हिमा है, स्व-हिमा है, पर-हिमा है। और जहाँ स्व-हिमा है, पर-हिमा है, वहाँ उत्कृष्ट धर्म की आगवना अभव है। सर्वथा अहिंसक हो जाए, यह भी बहुत मुश्किल है। विकास क्रमवर्ती ही होगा। क्रम से ही चढना होगा, किन्तु यथार्थ तो उसकी दृष्टि में आ जाए। यथार्थ का उमका निर्णय तो हो जाए।

दूसरा शब्द है—'मयम'। अहिमा और सयम तप हैं। 'सयम' शब्द की व्याख्या कई प्रकार से हो सकती है। पाँच महाव्रत बारह अंगव्रत, सब-के-सब इसके अन्तर्गत हैं। और भी कई पारिभाषिक शब्दों के माध्यम से इसकी व्याख्या हो सकती है किन्तु हम सामान्य शब्दों में ही व्याख्या करने की दृष्टि रखते हैं, क्योंकि पारिभाषिक शब्दावली का अर्थ समझना प्रायः कठिन हो जाता है। 'मयम' में दो शब्द हैं—मम् और यम। मम्, यम से सयम बना है। मम् का अर्थ 'मम्यक्' है। सयम का अर्थ है—स्वय का स्वय द्वारा अनुशासित रहना, या स्वय-पर-स्वय-का-नियमन।

आज तक समाज में जितने भी महापुरुष बने, चाहे वे राम हो, चाहे महावीर, चाहे कोई और हो (नाम अनेक हो सकते हैं, कालभेद भी संभव है); वे बने हैं, उसी स्थिति में जब उन्होंने स्वय को अनुशासित किया है। निश्चित तप से पहले उन्होंने स्वय पर अनुशासन किया। स्वय के, स्वय से अनुशासित होने की साधना का नाम सयम है। स्वय-से-स्वय अनुशासित हो, स्वय स्वय का अनुशासन करे, स्वय स्वय का अनुशासक बने, यह बहुत मुश्किल है। दूसरों का अनुशासक बनना बड़ी बात नहीं है, दूसरों को मार्गदर्शन देना भी बड़ी बात नहीं, दूसरों का मास्टर बनना भी बड़ी बात नहीं, वकील बनना भी बड़ी बात नहीं, किसी को जजमेन्ट देना भी बड़ी बात नहीं, किन्तु स्वय अपनी आत्मा के कर्पाय भावों में तटस्थ वृत्ति रख कर निर्णयात्मक दृष्टिकोण से स्वय के भावों को बदलने का प्रयास

करता बड़ी बात है। यही मयम है। समय स्वयं स्पून हाता है किमा रा यापा नहा हाता। जा निमा क द्वारा हाता है वह दमन हाता है, मयम नहा हाता।

मन और मयम म बहुत अन्तर है। समय म मन का स्वीकृति है। दमन म विनाता है नाचारा है। उमम विमी क द्वारा दसाया जाता है। तब बाद किमी के द्वारा स्वता है तो वह मयम नहा है, वह दमन है क्वाकि दमन म दुख हाता है और मयम म सुख। इम जीव न अनन्त वान म मन की अवस्थाया का बहुत धार भागा है। मन का अवस्थाया म म यह अनक वार गुारा है। दमन कहीं नहा हाता? मन विमवा नही हाता? अनन्त वान म यह आत्मा, यह जाव यह क्वित विशेष जाण्ट ना हम कहें अनन्तकाल म मया म है। नरक गति म मया कम नहा है। वहाँ शरीर है जावन भी जाए, विखर भी जाए मिन भा जाए और अना मा हा जाए। परमाधमियों के द्वारा यह वेदना कम नहा दी जाता। यह वेदना दमन है मयम नहा। इमम दुख है गुण नहा क्वाकि वही पराधीनता है विनाता है, नाचारी है।

तिर्यक गति म दमन कम नहा है। वहाँ कितना दमन है? हर समय दवे हुए रहना हर समय किमा क अधीन रहना। मन वाता कोई महत्व हा नहो है। मन का कोई दयता हा नहा है। मन क्या चाहता है काइ माचता हा नहा है। एव कृपक मि वन वाखती के काम म न रहा है क्या बन क मन क महत्त्व का यह मयमता है? क्या उसके मन का वह महत्त्व दता है? का दयानु हो नरगा वान हा जिमन अपनी आत्मा क समान क्या की आत्मा का मयमता है ऐसा क्वित जरूर धांदा बहुत दया उस पर लायगा फिर भी जहाँ स्वाथ है स्वाथ क वामूत व्यथित हा जाता है वहाँ दया भी कमजोर पड जाती है। जहाँ यह दृष्टि रहता है कि ज्याण-म-ज्याण काम तेना है वहाँ उत्पीडन होगा, शापण हागा, मन हागा दया नही नहा। बल चाहता है मुझे अत्र पुठ विधाम मिन जाए, बहुत मयम हो गया घूमते घूमते। चक्कर भा जाने लगे तो आँखा पर उमक पट्टा बांधे जा है। पाँव भा धन गय है किन्तु मन है बहन दवाव है। जा-कह-वसा करना पटना है तहा तो और मार पड। इम जाव न नामानुम कितनी बार इम प्रकार का व्यवस्थाया म अपन आथ का रया है क्वाकि अनन्त काल म जा मयार म है ता चार गतिया म म किमा एक गति म ता यह रह हा है। कम रन्ति आमा मिद्वानय म रहगा और कम-महित आत्मा रागार म। रागार म रया ता चार गतिया म किमी एक गति म रहगा हा। चार गतिया म स किमा एक म जब आत्मा है जोर यति उम मयम वाप नहा है ता यह का भी मयम नही कर मयता, क्वकि लाचारियों म म ता इम मय गुणना हा पदता है।

एव तहा जन उदाहरण हैं पशु-मिया के, पान का छान, ताक का छेन पाँव म पाव आदि गालना, मयम पर भोजन ना मिनता, मयम पर पानी का मिनता



वर्षा में अनुकूल जगह न मिलना, गर्मी में कड़ी धूप सहन करना प्यान नह न करना, ज़रूरत में ज्यादा जगह न मिलना, गर्मी में कड़ी धूप सहन करना, प्यान नह न करना, ज़रूरत से ज्यादा परिश्रम करना, रात को नींद नहीं, बारह-एक वजे, दो वजे ही उन्हें वहाँ से खाना कर देते हैं। गाड़ीवान स्वयं भी खाना होता है, किन्तु उसे तो वजन ढोना पड़ता है, चलना पड़ता है। गाड़ीवान तो लेट भी सकता है. पर उन्हें तो चलने ही रहना पड़ता है। निद्रा के समय निद्र नहीं, भोजन के समय भोजन नहीं, पानी के समय पानी नहीं, गर्मी के समय छाँव का स्थान नहीं, सर्दी के समय बन्द मकान नहीं और वर्षा के समय में कोई झोपड़ी नहीं। ऐसी स्थिति में इन जात्मा ने पाँचों इन्द्रियों के दमन का अनुभव कम नहीं किया; क्योंकि उसमें दुःखी हुआ किन्तु दुःख को व्यक्त करे, ऐसे निमित्त नहीं, ऐसे माधन नहीं, ऐसी सुविधा नहीं। आगब है, बोलने की शक्ति है, किन्तु भाषा ऐसी है जिसे मनुष्य नहीं समझ सकता। समझे भी तो करुणा कौन करे, दया कौन करे? जहाँ स्वार्थ और मोह, दो में से एक भी व्यक्ति को नष्ट तो बात अलग है, नहीं तो कौन किम की दया करता है? दमन-उत्पीडन तिर्यक गति में जीव ने बहुत सहन किया है। दमन की अवस्थाओं में से वह बहुत गुज़रा है।

मनुष्य जिन्दगी में भी दमन-शोषण कम नहीं है। दमन मनुष्य-जिन्दगी में भी बहुत है। नामालूम न चाहते हुए भी व्यक्ति को कितना कुछ करना पड़ता है। कभी वह ऋतु के अधीन है, कभी नियमों के अधीन है, कभी व्यवस्था के अधीन है, कभी पैसे की कमी के अधीन है। नामालूम कितने बन्धन हैं? इन सारे बन्धनों से वह हमेशा अपने-आप को दमित अनुभव करता है; किन्तु इस दमन का कोई लाभ नहीं है। इससे कर्म-बन्धन ही है, क्योंकि परिणामों में अज्ञान्ति है। परिणामों में सक्लेश है। परिणामों में वेदना है, दुःख है, मजबूरी है, लाचारी है, विवशता है। हाथ में काम है और आँख में आँसू है। आँसू अपने-आप में दमन की अवस्था है। दमन है, दवाव का प्रतिफल है। दवाव में दुःख है और दुःख में सक्लेश है और सक्लेश के परिणामों में आर्त्त और रौद्र ध्यान है और आर्त्त-रौद्र ध्यान फिर नरक-तिर्यक की गतियों से व्यक्ति को जोड़ते हैं।

दमन से यदि व्यक्ति बच सकता है तो वह समय के द्वारा ही बच सकता है, क्योंकि समय में मन की प्रसन्नता है। समय में मन का निग्रह है। समय पाँचों इन्द्रियों का है, पर ताडना से नहीं, तर्जना से नहीं, किसी के कहे से नहीं, लाचारी से नहीं, विवशता से नहीं। 'सम्यक्', शब्द भी इसी का प्रतीक है। जिमने जाना, जिसने स्वाध्याय के माध्यम से, चिन्तन के माध्यम से, सत्सग के माध्यम से, ईश्वर की आराधना और भक्ति के माध्यम से जाना कि इस जीव ने सम्यक् ज्ञान के बिना ही समार में परिभ्रमण किया है, सम्यक् ज्ञान के बिना ही इसने विषय और विकारों

मं मन्म-मदा अपन आपको निप्त रखा है, विषय विकार ही समार भाव है। विषय विकार की निवृत्ति ही मोक्ष है। विषय विकार की निवृत्ति किमा के बहन मे तहा उम जव यथाथ बाध हा जाएगा मम्यक दशन हा जाएगा मम्यक नान हा जाएगा तत्र उमके स्वय के मन की म्बीकृति होगी। स्वय के मन की म्वाकृति मे जा त्याग है, तप है वही समय है। समय कोई किसा के बहन मे नही कर मक्ता। किमा के बहने से मन हो सकता है समय नही हो मक्ता। यदि दबाव म, लाचारा स, विवशता मे कर भी लिया तो कितने दिन ? कितन दिन वह टिकगा ? दमन भी इन्द्रियों का करता है व्यक्ति कय ? स्वाय के अधीन होकर माह व अधीन हाकर। नही करता ऐसी रात नही है। पर उम करन मं वहा न-वहा कोई प्रलाभन है। वहा न गही कोई आनपण है। वही न-वही कोई लासता है। वहा-न वहा कुठ पान का भाव है। गरीब व मोह स भी रमना इन्द्रिय का निग्रह करता है जीव। करता है, कई बार करना पडता है। किमी का घा छाडना पडता है किमा का तन छाडना पडता है। किमी को आनु यगन छोडना पडता है शरार छाडनी पडती है इसलिए नि शरार न कह दिया कि तुम्ह डायजिटीज है। डाडता है। शरार क लिए शरार रमनः इन्द्रिय का निग्रह तो कर रहा है पर क्या कर रहा है ? मम्यक बाध है उम ? मम्यक बाध यहाँ कुठ जीर है। यहाँ तो शरीर की बात है। शरार के लिए वह निग्रह है। शरीर का स्वस्थ रखने के लिए ही किसा एक इन्द्रिय पर अनुगामन कर रहा है किनु अनुगामन मं मम्यक बाध नहीं है। अनुगामन मं त्याग का ताप नहीं है। पाँच इन्द्रिया के विषय म समार बन्ता है यह नश्य वहाँ गयी है। फिर वह क्या है ? त्याग तो है, किनु त्याग हा कर भी वह त्याग नहा है, क्यारि वह यथाय नही है मम्यक नहीं है। मम्यक का अर्थ है-जिगया जड चतन का मंद विमान हा गया है और आत्मशुद्धि के लिए जो किये कर रहा है वह मम्यक समय है।

मम्यक शब्द जहाँ वही भी गगा, आत्मशुद्धि क लिए गगा। आत्मशुद्धि की आयासा है। आत्मशुद्धि की अभिनाया है। ममार स मुस्त रोन का कामना है। उमम भी विषय विकारा की निवृत्ति करने क विशेष भाव है। न्य निग्रह इन्द्रिय निग्रह क लिए गी है गगाय निग्रह क लिए इन्द्रिय निग्रह है। कपाय विजय के लिए इन्द्रिय विजय है। यदि कगाय-विजय का नश्य नहीं है ता इन्द्रिय विजय अपन आप म अधूरी है। उम इन्द्रिय विजय नही कहेंगे वह तो दमन हा है। कपाय विजय क लिए हा इन्द्रिय विजय है। हान इन्द्रिय विजय की रात ता की कि डॉक्टर ने क निया इगतिग घी भा नहा नमन भी नही जूम भा नही। कइया का जम अम्मा-नखे पिना बजन हा जाए और उहें उम कम करना हा ता मव कुठ त्याग कर न्य है। एक कतिन कहना है महाराज इग कय मी न्य किना बजन घगाया, कतिन कना है महाराज मी एह किना बजन घटाया। घटाया है। त्याग बहुत किया

है। उवली मञ्जी नेता हैं। केवन हलका-मा फुलका ही नेता हैं। उनमें भी यह मिश्रण कम हो ऐसे फल नेता हैं। कितना विवेकी है, कितना त्याग है? रमना पर कितनी विजय है? जानी कहने हे—कह मत देना कि रमना की रमना पर विजय है। यह तो देह की आसक्ति हे, देह का ममत्व है। देह के लिए पदार्थों का त्याग है। इनमें आत्मकल्याण का तो प्रग्न ही नहीं है, क्योंकि आत्मकल्याण का भाव यहाँ है ही नहीं।

एक गच्छ दूँ आपको—यह त्याग किम श्रेणी में जाएगा—देहासक्ति। त्याग भी देह की आसक्ति है। कोई चिड मत जाना कि महाराज ने त्याग को देह की आसक्ति बता दिया। विषय की जो पूर्वापर व्याख्या हे, उसे ध्यान में रख कर विषय को ध्यान में लेना। देह-बुद्धि से पदार्थों का जो त्याग है वह जैन दर्शन की दृष्टि में त्याग नहीं है। वह आध्यात्मिक दृष्टि से त्याग नहीं हे। वह रमना-विजय की दृष्टि में त्याग नहीं है। इन्द्रिय-निग्रह हो कर भी कपाय-विजय के लिए इन्द्रिय-निग्रह नहीं है।

इम जीव ने मनुष्य-जीवन पा कर दमन तो बहुत किया। बहुत दमन किया, पर दमन कही-न-कही क्रोध के वशीभूत हो कर, लोभ के वर्गीभूत हो कर, घर छोड कर बहुत वार हुआ है। परिवार का त्याग किया है। परिवार की आसक्ति का त्याग किया है। गारीरिक आसक्ति का त्याग तो हुआ ही हे जब कोई कलकत्ता, बम्बई या दूमरी जगह दौडा है तो। कितने लोग कहते हैं कि महाराज यहाँ आये दम वर्ष हो गये और परिवार को तो कुछ ही वर्ष हुए लाया है। कोई कहता हे मैं तो बहुत पहले से आ गया, परिवार बहुत बाद में आया। तो चार-छह महीने, बारह महीने एक वर्ष में परिवार से अलग रहे। परिवार की, परिवार के साथ रहने की आसक्ति को कही-न-कही तोडा तो है, पर वह टूटी नहीं हे। भावात्मक नहीं टूटी हे। वह मजबूरी है, लाचारी है, क्योंकि परिवार के साथ रहने की जितनी आसक्ति है उससे अधिक धन कमाने की आसक्ति है, इमलिए धन कमाने के भाव से दौड कर गया है। कमाने के लिए परिवार को छोडा है। परिवार मेला है, या मिला हुआ चार दिन का झमेला है। ऐसे कोई भाव नहीं है उसके। त्याग के भाव नहीं हैं। त्याग तो किया है, त्याग किया है पर त्याग का भाव नहीं है।

त्याग करने का भाव जब तक नहीं है और भाव में जब तक कपाय-विजय का लक्ष्य नहीं है तब तक वह महत्त्वहीन और निरर्थक है। त्याग तो नामालूम कितनी वार कितना करता है यह जीव? बहुत करता है। किसी ने मुझे से कहा—‘महाराज मुझे सौगन्ध दिला दो।’ मैंने कहा—‘किम वात की सौगन्ध?’ ‘मुझे दूध नहीं पीना है।’ ‘क्यो नहीं पीना है?’ ‘मोटापा बहुत बढ गया है।’ तो फिर त्याग ही कर दूँ उसका। यह क्या है? त्याग किया नहीं है और ‘मैंने त्याग किया’ यह राग और हो गया। यह मोह और हो गया। त्याग के भाव से त्याग नहीं किया, किन्तु मन में



क्योंकि ज्ञानी कहते हैं परिणाम से बन्धन । बन्ध का मन्वन्ध परिणामो से है और परिणाम तेरे विगडेगे तो बन्ध होंगे । तेरे परिणाम नहीं विगडेगे तो बन्ध कैसा ? वह स्वय स्वय का अनुज्ञानन करे कि सामने वाले जीव ने तो अज्ञान का परिचय दिया है, सामने वाले ने अविवेक का परिचय दिया है, नामने वाले ने क्रोध का परिचय दिया है, पर उसके परिचय ने उसी का नुकसान हुआ है, मेरा कुछ विगडा नहीं है । यदि मैं अपने परिणामो को समाल कर रखूँ, तो यह स्वय वा अनुज्ञानन है । इमी का नाम आत्मानुज्ञानन है । लोभ का प्रसंग आ गया । जहाँ लोभ का प्रसंग आया वही आत्मा स्वय, स्वय मे क्या करे ? स्वय का अनुज्ञानन करे जि जीव लोभ के बसीभूत हो कर तूने अनन्त काल तक समार परिभ्रमण किया है । ओ हो ! इन मनुष्य-जीवन मे तो लोभ, त्याग का प्रसंग वही होना चाहिये । यहाँ लोभ न त्याग कर, किन्तु लोभ के त्याग के भाव ही नहीं आते, क्यों नहीं आते ? इसलिए कि लाभ का प्रसंग आ बैठता है । लाभ का प्रसंग आया नहीं कि लोभ-वृत्ति ऐसा द्वोत्रती है मानव को कि मत्य, अमत्य, उचित अनुचित, धोखा, विज्ञानघात, मन्वन्ध, परिचय, मित्रता-साग विवेक एक ओर न्द्रा रह जाता है । लोभ वृत्ति ही प्रधान हो जातो है ।

आप देखेंगे जीवन को देखने की यदि दृष्टि है तो नवरे ने गाम ता हमें मालूम पडेगा कि लोभ-वृत्ति के अधीन हम कितनी ही बार कितने ही व्यक्तियों के नाय दुर्व्यवहार करते हैं । कभी मायाचारी करते हैं, कभी धोखा देते हैं, कभी विज्ञानघात करते हैं, कभी अमानत में खयानत करते हैं कभी कुछ करते हैं तो कभी कुछ करते हैं । लोभ-वृत्ति के अधीन हो कर यदि आप कभी चिन्तन करे और लोभ के स्वरूप को समझते हुए अपने परिणामो पर, अपने आचरण पर, अपनी क्रिया पर कभी दृष्टिपात करे तो लगेगा कि लोभ मे खाली कोई कर्म नहीं है हमारा । एक ठण्डा फुलका जो थाली मे पडा है उसे छोड कर यदि गरम फुलका खाने का भाव आ रहा है तो वह भी उष्णता के लाभ का लोभ है । वह भी क्या है ? लोभ ही है । आज आप एक लडकी के साथ मगाई मन्वन्ध निश्चित करने की स्थिति मे ह, किन्तु जहाँ आपको कल एक ऐसा मन्वन्ध मिलने लगा जिन्मे और सारी वाते तो वही-की-वही मिल रही है, रग-रूप मे, शिक्षा मे और घर-घराने मे, किन्तु मम्पन्नता मे दम-वीम हजार अधिक मिलने की सभावना है । तो क्या हो जाएगा ? आपकी वात का, आपकी दृष्टि मे ही कोई महत्त्व नहीं रहेगा कि आपने कल उम व्यक्ति को क्या जवाब दिया था, क्या विज्ञान दिलाया था, और आज यह परिवर्तन ? लोभ-वृत्ति की ऐसी महिमा है कि उसके अधीन हो कर व्यक्ति अपने विचारो की पूर्वभूमिका को कुचल देता है । नियमो को कुचल देता है । सत्सग मे सुने हुए वचनो को मसल देता है, क्योंकि वह अधीन है, किसके ? लोभ-वृत्ति के । वह स्वय, स्वय से अनुज्ञानित नहीं है; जो स्वय, स्वय से अनुज्ञासित बनेगा वह स्वय के परिणामो को मँभालेगा और परिणामो को

ममानत हुए हर क्षण स्वयं पर ही अनुशासन करेगा। भोजन करने के लिए बैठे  
 भये और कोई चीज अनुकूल नहीं मिला, तो चहा या स्नैक पर अनुशासन करेगा  
 कि जीव भाव विगडने नहीं चाहिये, और नाथ त्रिगड भी गय तो भापा नहीं  
 विगडनी चाहिये। भाव त्रिगडन से तेरा ही नुबसान हुआ है। पर भापा विगडनी  
 तो पूरे परिवार का नुबसान होगा। तरे प्राध का भापा दूसरो म भी प्राध  
 उत्पन्न करन म निमित्त बनगी। जय स्वयं को दूसरा को निमित्त देना है तो यह दृष्टि  
 रखना कि मैं बिना का बयो ऐमा मौका दू? मरो भापा ऐमी क्यों हा? मर  
 विचार ऐस क्या हा? मरा व्यवहार ऐमा क्या हा? कि जित्त मुझे ता अशांति  
 हा हा किन्तु मेरे व्यवहार स, मरो वाणा म दूसरा का भी जगान्ति हा यह एक  
 दृष्टिकोण है किन्तु दूसरा की तरफ म जब हमारे प्रतिकूल व्यवहार हो तज वहाँ  
 भी स्वयं स्वयं पर अनुशासन कर इस दृष्टि स कि इमक विगाडन म मरा बुड नहा  
 विगडेगा। इमक कहन स मेरा बुछ तहा विगडेगा। मरे परिणाम त्रिगडेगे ता हा  
 मेरा त्रिगडेगा। उसका दाप न देना, स्वयं सभल जाना। जब तक हम इम तरह नहा  
 भोजेग तज तज जीवन नही चलेगा। श्रवण म जीवन तहा बदरता जय तज श्रवण  
 मनन म नही बदलता क्याकि मनन ही मा का परिवर्तन करेगा और मन का  
 परिवर्तन मनन म हागा। मनन श्रवण स हागा स्वाध्याय म भी हागा मन्मथ  
 म भी हागा, वाचन स भी हागा। हम यहाँ बिना के लिए आ कर नही बठन। हम यहा  
 बिना पर अहमान नही करे। न आप बिना पर अहमान करत है न मैं  
 किसी पर अहमान करता हूँ। मुझे भा स्वयं, स्वयं स अनुशासन हाता है। यदि  
 आत्मन्याय करना हाता आपका भा स्वयं म अनुशासन हाता है। अपन-आप का  
 सम्बन्ध क लिए ही सम्भना है। अपन-आप का सुनान क लिए हा सुनना है।  
 सुनाता है, सुनाना नहा है। यदि स्वयं उपदेश ग्रहण करन का जहरत सम्भते हुए  
 बिनी क माय स्वाध्याय करे तो बुरा नहा है पर मैं अच्छा थार दूसरा बुरा मैं  
 उपदेश दन वाता और य मव उपदेश मुनन बाल-ऐसा भाव यदि जाता है ता  
 वह विषम भाव है वह मिथ्या भाव है वह हिम भाव है। वहाँ आपका बल्याण  
 आपका पात्रता मे हाता जाणगा पर मरा नहा हो सकता। मेरा पतन हा जाणगा  
 क्याकि अहम ता व्यक्ति का मत म हा ले जाणगा। आप भा अदूर मैं भा अदूर।  
 आपका भा सीखना है मुझे भी सीखना है। स्वयं स्वयं पर जा पूरा अनुशासन पर  
 रेगा वह शमा के पद पर चना जाणगा। वह मवा बन जाणगा। वह ता परमात्म पद  
 प्रवट करेगा। परमात्म पद जा प्रवट हागा वह स्वयं का शक्ति का गुड मूल्य है।  
 वह परिपूर्णता है परन्तु अभी ता हम उमना चचा हा पूरा सम्भ मैं नहा आती।  
 उम सम्भना है। स्वयं का सम्भना है। सम्भ किमका नाम है? वह सम्भक  
 मन की स्वादृति है। सम्भ मन का स्वादृति के लिए सम्भक बोध चाहिये। सम्भक  
 बोध क लिए भै विनान चाहिये। भेद विनान के लिए शरीर धम अनज और जान

धर्म अलग ऐसा विवेक चाहिये। जहाँ ये दो दृष्टियाँ हो जाएँगी, वही मे समय जानू हो जाएगा, क्योंकि वह जानता है, वह मानता है कि इन्द्रियों के अधीन हो कर भी विषय-विकारो मे अनन्तकाल व्यतीत किया, किन्तु वार-वार, जनम-मरण की जजीर मे ही मुझे लटकना पडा। जिन निमित्तो को लेकर मे कपाय करता हूँ वे मारे यहाँ रहेंगे। वह सर्वसगह यहाँ रहेगा। आश्चर्य मात्र इम बात का है कि व्यक्ति कभी स्वय के लिए नहीं सोचता। जगत् के लिए सोचता है। जगत् के लिए बोलता है। जगत् के लिए लिखता है। जगत के लिए कण्ठाग्र करता है। मुनाने के लिए, पटाने के लिए, मिखाने के लिए, ममझाने के लिए यह जीव बहुत बुरा करता है, किन्तु समझने के लिए वह क्या करता है? स्वय को बदलने के लिए क्या करता है? जो स्वय को बदलने की क्रिया मे लग जाएगा, अध्यात्म-मार्ग मे, धर्म-क्रियाओ मे जितनी भी विधियाँ है, पच महाव्रत, या पाँच अणुव्रत, तो यह स्वय, स्वयं मे अनुत्तमित होने की कला है, किन्तु यदि उमे स्वय, स्वय मे अनुत्तमित होने का ज्ञान नहीं है, तो नमझना चाहिये कि त्याग, तप करने हुए भी कपाय-भाव के त्याग का लक्ष्य उमका नहीं है। यहाँ तो कपाय का त्याग करने के लिए ही इन्द्रिय-निग्रह है।

एक व्रत है, प्रीपधोपवास। उनमे जव्द आया है कि उपवास के साथ प्रीपध भी करे। प्रीपध क्यों करे? विषय-कपाय की प्रवृत्तियो से अलग रहने के लिए अपनी आत्मा को प्रीपधशाला मे, स्वय को प्रीपध शाला मे ले जाएँ। विषय-कपाय के निग्रह के लिए आहार का निग्रह करे। आप कहेंगे ऐसा कैसे होगा? आखिर विषय है कहाँ-पाँचो इन्द्रियो मे। इन्हे जितनी अनुकूलता मिलेगी, इनके विषय उत्तने ही उत्तजित होंगे। आज तक ऐसा कभी हुआ नहीं कि होम मे ईधन डालते जाएँ, छाणे डालते जाएँ और वही कि अग्नि तो आपोआप बृझ जाएगी। आज तक ऐसा हुआ नहीं। खाते-खाते किसी का मन ऊब जाएगा, ऐसे जानी तो बहुत कम मिलते है। खाते-खाते मन नहीं ऊबता, किन्तु कभी-कभार ज्ञान की कोई बात दिमाग मे आ जाती है तो मन ऊबता है। नहीं, मन कहाँ ऊबता है? साठ वर्ष की उम्र के बाद भी रात्रि-भोजन है, साठ वर्ष की उम्र के बाद भी दो समय का भोजन छोड़ने के भाव नहीं है कि अब तो एक ही समय भोजन कर लूँ, रात्रि मे भोजन क्यों करूँ? तो महाराज करना पडता है, क्योंकि मैं रात को ऑफिस से आता हूँ। दो जून खाते-खाते तो साठ वर्ष हो गये। यदि खाते-खाने छोड़ने के भाव आते तो आ ही जाने चाहिये। यदि खाते-खाते त्याग के भाव आते तो साठ वर्ष के बाद तो प्याज, लहसुन, आलू का त्याग हो ही जाना चाहिये था। खाते-खाते, पहिनते-पहिनते यदि हमारी तृष्णा शान्त हो जाती तो शायद जब से साडी, या जो भी पहिनने लगे है, जन्मे तभी से वस्त्र का सम्बन्ध है, ममझ कर भी पन्द्रह-सोलह वर्ष से आज तक हजार-पाँच सौ की सख्या मे तो वस्त्र पहिन ही

नियं हमें पान परिधान पहिनन क बाट ता रग का जाकपण खतम हो ही जाना चाणिय। बलर का तुपा मिष्ट हा जाना चाहिय। जिमन पाम मी-यचाम गाडिमा = या आपक पाम दो, पाच दस, पद्रह, बीस सुट ह उनक बाट ता बाजार म कमा जाख उलचना ही नही चाहिय। उसन बाट ता कुठ नार नमान ग्रहण करै, मन म एम मान जान हा उहा चाहिय कयाकि खाते-पाने बन्त या निया तो जव ता त्याग हा हा जाना चाहिय। पहिनत-पहिनत बहुत पहिन लिया ता जम ता त्याग क भाव आ हा जान चाहिय।

कितु ऐसा अभी हुआ नहीं, कभी होगा नहीं। जब कभी भी बदना है पान और वैराग्य म हा मन बन्ता है, जिम किमी का भा बन्ता ह बराग्य म हा बन्ता ह। यदि का क कि मुझे ता यहा निमित्त नही मिला उसन पहल हा मरा मन बदल गया तो निश्चित रूप म यह पूव योग का माधना ह। वहाँ उमन पान आर वैराग्य म अपन मन का अनुशामित किया हागा इसाणिए यहाँ बहु अनुशामित ह। कहा न-कही कुठ किया ता ह। स्थिति ता यह ह कि मवेर म ने कर शाम तक पाँच-छठ टुकड़ा छह-भात मुपारी क खात जात ह। अजी खात-खाते बेचार रात म कहत रहे कि भाई तुम्ह पीमत पीमत म स्वय पिम गया ह। नैत बन्ता ह कि मुपारा का पामत-पामत म घिम गया कयाकि राटी खान में ता दम-पद्रह मिनट हा में घिमाता हूँ-शाम या सवेर कितु मुपारा खान म तो मरा घिमाद पूर जिन हाता है एमनिग में ता पिसत घिसत हिन गया है जिना हा नहा खतम हा हा गया =। रात घिम गय पर तप्या नहा घिसा एमलिए दाढ़ टूटा ता भी मुपारा नहा छटो।

क्या परिणाम = ? यात-खान बराग्य कहा जाया ? खात-खाते तप्या का त्याग कहीं हुआ / गारर बना जाता ह मन बूटा नहा राता। पान और बराग्य दा म न एन जिमा का जा गया ता मालह काम बप का अन्न म ना ब गगा बन जाणगा। पच्छीम बप का उग्र म भा उस विषय विचार छाडन क भाव आ जाए। यदि त्याग क भाव जा गय यदि मस्कार बन्त गय यदि बराग्य आ गया ता। पर आश्चर्य इस बात का है कि जा स्वय बराग्य भाव प आत नही ता स्वय चिद्रिया का निग्रह बरत नहा जा स्वय अपनी तप्या का पात करत नहा क कहत = त्याग किया ? अजा मान्य किमी परिस्थिति म जिमा न त्याग कर लिया जाता। यदि नये ता फिर जाय भा क दीनिय। यदि कर्म ऐम हा त्याग कर सकता = ता उन कर हा दना चाहिय। फिर तो आपका न। कर बना चाणिय। हिम्मत करता चाणिय।

जा समय क स्वरूप का मया ममज्ञता, ता समय क भाव म रमण नहा करता जिमन समय ता महोत् नही उमका है बहु समयमा बन गेम भाव ता नहा आत चिन्तु समय यदि कोई न, ता उनट वे उमकी मज्जा बनान ह।

सयम यागी तदम। मत्र जार मयम। हेम आम नश्य म विषय तपाय में निरति क निण सयम क स्वरूप का मया आर स्वय, स्वय म अनुशामित हा यहा मरी मयन कामना =।

□□

-२०१२ २२ जनवरी १९८२



वात सयम से सम्बन्धित हो रही थी। शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दावली में हट कर 'मयम' की व्याख्या की जा रही थी कि यथार्थ मय्यक् ज्ञान के आधार पर जो स्वय, स्वय पर अनुशासन करता है, स्वय, स्वय का अनुगामक दृढता है, सच्चे अर्थों में वही सयम है। क्रोध का मयम, मान का मयम, माया का मयम, इन सारे भावों का जो मयम करता है, इन सारे भावों पर जो नियन्त्रण करता है, इन सारे भावों को, मन में उठने वाले इन विकारों को जो दबाता है नहीं बल्कि दफना देता है वही पूर्ण मयमी होता है। जिसे स्वल्प-रक्षणता, स्वल्प की स्थिरता कहा गया है, वही मय्यक् चारित्र्य है।

हमने प्रार्थना में भी उन्हीं को महत्व दिया, उन्हीं को नमस्कार किया। किसे? जिन्होंने राग-द्वेष कामादि जीते तथा जग को जान लिया है, जिन्होंने सब जीवों को मोक्ष-मार्ग का निःस्पृहता में उपदेश दिया है। किने नमन किया? करोड़ों की सम्पत्ति बटोरने वालों को नमस्कार नहीं किया। किमी दमने राष्ट्र पर अधिकार जमाने की भावना में आक्रमण में विजय पाने वाले को नमस्कार नहीं किया। नमस्कार सत्ता और सम्पत्ति को नहीं, नमस्कार सत्ता और सम्पत्ति के मोह को छोड़ने वालों को है। सत्ता और सम्पत्ति के आधार पर नमस्कार जगत् की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण हो सकता है, किन्तु अमीरी और फकीरी में जमीन आसमान का अन्तर है। अमीरी बाँधती है, फकीरी मुक्त करती है। पर कब? साधुवेश में जब साधुता आ जाए। साधुता के बिना साधुवेश भी मुक्ति दे, बहुत मुश्किल है। वह भी चार गति में से किसी-न-किसी से जाँटेगा। साधु-वेश साधुता का विकास करने के लिए बहुत ही अनुकूल वातावरण है। आत्म-साधक के लिए मुनि-जीवन बहुत जरूरी है, बहुत अच्छा है, बहुत ऊँचा है, इसलिए कि अन्य कार्य की प्रवृत्तियों से उसे सर्वथा विश्राम और आत्ममार्ग में उसकी प्रवृत्ति के लिए अनुकूल वातावरण इसमें मिलता है। यह बहुत जरूरी है। बहुत प्रशस्त भूमिका है। बहुत ऊँची भूमिका है। इसमें कोई दो मत नहीं हैं। गृहस्थ की अपेक्षा साधु का जीवन अच्छे-से-अच्छा है, फिर भी बाहर से त्याग, तप, वैराग्य करने के

वात् इस जीवन में आने के बाद यदि वह विषय विकार दफनान की साधना में प्रयत्नशील नहीं रहा तो जानिया की दृष्टि में साधुता विकसित नहीं हुई। साधुता जब तक विकसित नहीं होगी तब तक आत्म-व्यापण संभव नहीं है। आप कही भा है, जहाँ भी हैं वही मैं हम लक्ष्य बनाना है—साधुता का विकास। जितने जितने अशा में साधुता का विकास होगा, उतने-उतने अशा में समय होगा।

कल बात चला था पाँच इंद्रिया का निग्रह यह भा समय है। दमन और समय की बात थी कि पाँच इंद्रिया का दमन तो अनन्तकाल में बहुत हुआ पर मन दुःख का कारण बना। मन आत्त ध्यान का कारण बना दमन और ध्यान का कारण बना क्योंकि मम्यक मन की स्वीकृति तथा थी लाचारा विवशता थी। समय का अर्थ है—सम्यक्। मन की मम्यक स्वीकृति साच-मम्यक की स्वीकृति। जीवन बनाने का दृष्टि से अपने आपका सब तरफ से हटाया। सब तरफ से हटने के लिए नहीं हटाया अपना आप में जाने के लिए हटाया।

समय का अर्थ है आत्माभिमुखीन वृत्ति। जो आत्मशुद्धि में निरन्तर प्रयत्नशील है और स्वयं-ही-स्वयं का अनुशासन कर रहा है वह है समय। किन पर अनुशासन कर? विकार भावों पर अनुशासन करे। विकार भावा का अनुशासन करने के लिए कि विकार भाव ही संसार भाव हैं। विकार भाव जब तक रहेंगे तब तक संसार छूटगा नहीं। कोई संसार से छुड़ा दे बहुत मुश्किल है। डाक्टर दवा दे सकता है आप दवा नंबर आ सकते हैं, किन्तु तब तक भा कोई गरज करने वाला बात नहीं है जब तक भले के नीचे गाली उतर न जाए। मदा-सदा जो अनभुक्त वृत्ति रखने का प्रयत्न कर वही तो आत्मारथी है। कर्म-परसा के कायक्रम के मातृरमापता नहीं चित्र नियम थे। इस युग का प्रवृत्ति है एक विगय प्रवृत्ति है हर कायक्रम में फटा खोचन का। कल जब उपाश्रय में वे चित्र आय तब मैं भा उन्हें देखा वे कुछ और बालिकाओं ने भा उन्हें देखा। जब बालिकाएँ चित्र देख रहा था तब वे बता रही थी कि ये मेरे पापा हैं यह मेरा मम्मा है। इसमें हैं इसमें नहीं हैं। मुझे तुरन्त एक त्रिकल्प आया कि जस इस चित्र में अनवा हैं किन्तु बच्चा का नजर अन्तका पर नहीं एक पर हा है कि मेरा मम्मा कहा है मेरे पापा कहीं हैं। मन है किन्तु सब का देख कर भा मम्मा देखने में भाव नहीं है। मज दूर ही क्षण त्रिकल्प आया कि ठीक-ए-ही आत्मारथी भल है संसार में रहे और दुनिया भावे कि वह संसार में है किन्तु वह सब में रहे कर भी अपने में ही रहने का प्रयत्न करे। वह दुनिया में टूटने की कागिण करे और प्रेम से जन्म की कागिण करे। जब स्वयं स्वयं की दृष्टि में प्रिय वह बन जाएगा तब जन्म में टूटने की जरूरत नहीं रहेगा टूट जाएगा वह समय है। उन बच्चा का यह विचार नहीं कहा कि तुम इन्हें मत देखा उन्हें मत देखा, इन्हें मत पहचाना उन्हें मत पहचाना। एका तो

किसी ने नहीं कहा, किन्तु पहिचानने की जरूरत ही नहीं, पहिचानने के भाव ही नहीं। भाव क्यों नहीं है इसलिए कि हमारा उनमें रागात्मक सम्बन्ध नहीं है। पहिचानने के भाव उनके प्रति आ रहे हैं, जिनमें हमारे रागात्मक या द्वेषात्मक सम्बन्ध है। दो में से एक सम्बन्ध ही, नहीं जानने के भाव जाते हैं। जब जीव, जीव की दृष्टि में प्रिय बन जाएगा स्वयं, स्वयं की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण बन जाएगा, तब आत्मा को यह विवेक आ जाएगा कि अनन्तकाल में जग-परिचय करके ही मैंने मसार-परिश्रमण किया है।

जग-परिचय का अर्थ क्या है—रागात्मक सम्बन्ध। जग-परिचय का अर्थ यह नहीं है कि जितने व्यक्तियों को देखा उतने से मोह हो जाए। उतने व्यक्तियों में मोह नहीं होता। परिचय उनी का नाम है जिसके दुःख-सुख में हमारा मन प्रभावित होता है। जिसके दुःख-सुख से हमारा मन प्रभावित नहीं होता, वह परिचय हांकर भी परिचय नहीं है। उस परिचय की स्मृति नहीं रहती है, क्यों कि उस परिचय का महत्त्व नहीं है।

आप सब अपना-अपना घर छोड़ कर यहाँ आये हैं और यहाँ आने में नामालूम कितनी आकृतियाँ रास्ते में आपको मिली हैं। कितने लोग रास्ते में मिले हैं। कितने रोड आपने बदले हैं। लक्ष्य उन्हें पहिचानना नहीं था। लक्ष्य उन मुद्राओं को देखना नहीं था। आकृति-आकृति को देख कर भी आपने मन से देखा बहुत कम को। वह परिचय नहीं है, क्योंकि स्मरण नहीं है कि कितने लोग मिले, उतकी कैसी नाके थीं, कैसी आँखें थीं कैसा रूप था, कैसी वेशभूषा थी? हमारा उनसे कोई सम्बन्ध नहीं था। उसे परिचय कहेंगे क्या? वह कोई परिचय नहीं है।

परिचय का अर्थ है उस व्यक्ति को जानना जिसके दुःख-सुख से हमारा मन दुःखी-सुखी होता है, कब होता है? रागात्मक या द्वेषात्मक सम्बन्धों से। यहाँ परिचय है। समय का अर्थ है—जगत् का विस्मरण और स्वयं का स्मरण। ऐसी स्थिति बताने के लिए, पहले एक स्वच्छ भूमिका बनानी पड़ती है और भूमिका बनाने में जहाँ-जहाँ उमका मन फँसा है, जहाँ-जहाँ उमका मत उलझा है, जिन-जिन के विकल्प उसे आते हैं उन सबसे निवृत्त होने के लिए वह व्रत पचक्खान लेता है। व्रत पचक्खान इसलिए कि उनसे मुझे सम्बन्ध तोड़ना है। तोड़ना किनलिये है? इसलिए कि स्वयं से जुड़ा जा सके। स्वयं में स्वयं को जब जोड़ूंगा, तब दूसरों से दूँगा। जो तोड़ेगा नहीं, वह जोड़ेगा क्या? मन तो एक ही है, उसे किधर भी जोड़ दे। मन एक समय में एक ही क्रिया एक ही भाव कर सकता है, एक समय में दो भाव नहीं कर सकता। इसलिए देवचन्द्रजी महाराज ने ऋषभदेव स्वामी

नी मृति म फट्टिया-नाडे होत नाडे एह। प्राति अताग्निना विष भरा त रात ना  
करवा मम नाव। प्रीति शब्द द दिया। प्राति शब्द दिया अताग्नि ना दिया जाव  
एक ना वीच में जीवने दिया-प्रीति अताग्निना विष भरा। विष भरा दिया। कर्मा विचित्र  
वात है? जिनके प्रति हमारा स्नेह है उन्हें हम विष दन द रखा? नहीं ऐसा ता कभी  
नहा करत। ता फिर यह कान मा विष है? यह विषय का विष है यह माह का  
विष है। वह मोह का मन्त्रिा ह। माह का मन्त्रिा म हमारा परिचय गान बनता  
है। उम परिचय जगत क प्रति माह के लो पुत्र हैं गग जीव द्वय। हमन विमा  
को गग म पकटा ह जाव विमा का द्वेष म विमा का ख कर राग भाव जाता  
है ता विमा को ख कर द्वेष विमा का पान का खटा हाता ह विमो का छानन  
क। विमो म मित्रन का खटा हाता ह कार जाखा के गामन है ता उमम  
अनग हान का खटा हाता है। यह मम रखा है। यह सत्र गग-द्वय का जावृत्तिमा  
है। इन भावो क कारण हा जनम-मरण का श्रम चानू ह जिम तापन क लिए  
यह जीव पहन मत् तापना क माध्यम म मदगुरु क माध्यम म, मनग क माध्यम  
म, जिन-मुद्रा क दशन के माध्यम म, वातराग तप क माध्यम म मय क सम्पा  
स्वरूप का ममनन का प्रयाग करगा, जब मम्यक स्वरूप का गमनन का प्रयाग यह  
करेगा तब इमे अहमान होगा जि में भल ही अनाग्नि वात स ह पर जिम रूप  
में मैंन अपन जान को आप तब जाा है वट मग वास्तविक रूप नहा है वट  
कृत्रिम ह। वट सवाग मम्वध है। वह चारवार मिलता ह चारवार चिटुडना ह।  
वह जनता ह बदनता है विगडता है।

वह मैं नहा हें मैंतो गाव्यत तत्व ह मैं सदा रहन वाला तत्व ह। मैं था  
हूँ रहगा। पर जिनके बीच मैं हूँ त मना था न मना रहूँगा, हूँ जरूर। जिनके  
बीच मैं हूँ जिनका मरा परिचय है जिहें मैंन अपना माना है उनका वाच मैं मदा  
य था नहा और सदा रहूँगा नहा। आज हम जिनके भा बीच हैं आज जिनके  
बार हम त जवानु हमारे मा म जा ह भगुर हैं क जिम मना म नाप रहन  
है क्या मना म क थ? जराय मिनगा-नहा। जाव काई कहे-हैं मैं मना म  
है। ता भी कय म? तब म जम सत्र म। तम सत्र म हैं। उम पहन का  
द्विहाय ता याद हा नही। जाव जाव जिनके गाव हें कय त है? वाच का  
उम्र म जा निकटतम मम्वध व्यक्ति महतूत करता ह पट प्रति-मन्त्री का मम्वध  
है। पर कय म है? था नही। तम सत्र नही था। तम सत्र ह य का उम्र तब  
ता उम आरुति क प्रति वा विमल ही रहा जाया विमल रहा ता मम्व का  
प्रग हा पहा? बीच की उम्र म मनाग हुआ और मयाग म हमारा माह जैम  
ही मम्वध हअ मम्वध क क्षणा म माह की अधीनता का रबी आर माह क  
अधीन हन हो गय। निकटतम म्पति ता मना। पर मना म थगा था रहा। दम

जन्म में भी नहीं। पहले की तो बात ही क्या करे? उन जन्म में भी अकारण-वीर्य वर्ण की उम्र के बाद वह सम्पर्क हुआ, सम्बन्ध हुआ, जिसे निकटतम हमने मान लिया है। है, पर क्या मदा रहेगा? है, पर क्या मदा रहेगा? जरा विचार करे। मैं था, मैं हूँ, मैं रहूँगा। एक तो हमारी यह अविद्यव्यक्ति है। मैं था, मैं हूँ, मैं रहूँगा। पर जिन्हें मैंने 'मैं' रूप माना है, मैं को छोड़ कर मैं को नहीं। मैं को छोड़कर जिन्हें मैंने मेरा माना है, वे मदा ये नहीं, मदा रहेंगे नहीं। केवल वर्तमान में है। उनका नाथ वत्र छूट जाएगा, हमें पता नहीं है। नाथ छूटने के क्षणों में उन्हें रोक कर रखने का माहम और शक्ति भी नहीं है। हिम्मत तो उत्तनी भी नहीं है कि यदि बुझार आने लगे, दो डिग्री हो जाए तो यह तब दे व्यक्ति कि पाँच डिग्री तो अब मुझे नहीं होने दूँगा. तो उत्तनी हिम्मत भी नहीं है। रोग कर रखने की हिम्मत भी नहीं है। परिस्थिति बदलती है, उसे भी मन्हालने की हिम्मत नहीं है।

मृत्यु के क्षणों में प्रिय व्यक्ति कहाँ चाहता है कि मैं इन सब में अलग हो जाऊँ? वह कहाँ चाहता है कि यह मेरी गारी हरी-भरी बाटी छोड़कर चला जाए? ओह मेरी जिन्दगी-भर का पुरुषार्थ मेरी आँखों के सामने, जिसे मैंने बनाया, जिसे मैंने बनाया, जिसे देख कर मैं मुस्कराया, आज मदा-मदा के लिए अलग हो रहा है, मदा-सदा के लिए, फिर भी किनी जीवन-यात्रा में वह स्मरण भी नहीं आ सकती, स्मृति भी उसकी नहीं आ सकती। यदि देह नरक गति में जाए तो बात अलग है। आज आप यहाँ बैठे हैं। पिछले जीवन में भी किनी के नाथ रहे होंगे। वहाँ भी मकान रहा होगा। वहाँ भी दुकान रही होगी। वहाँ भी परिवार रहा होगा। वहाँ भी सम्बन्ध रहे होंगे। वहाँ भी कुछ-न-कुछ छोड़ कर तो आप आये ही होंगे। जीवन रहा, शरीर रहा तो कही-न-कही उसका सम्पर्क भी रहा होगा, सम्बन्ध भी रहा होगा, परिचय भी रहा होगा। पैसा भी रहा होगा। मकान, और दुकान, जो कुछ भी हो, रहा होगा। तिर्यक गति में रहे होंगे तो कही-न-कही घासला रहा होगा। कोई पक्षी रहे होंगे। कोई पेड़ आपका रहा होगा। यदि कीड़े-मकौड़े बने होंगे तो कोई विल रहा होगा। यदि मिट्टी, हाथी, शेर, चीते बने होंगे तो किसी वन की किसी गुफा में ममय गुजारा होगा। यदि पृथ्वी काय के रूप में रहे होंगे तो किसी पहाड़ की स्थिति में रहे होंगे।

क्या हमें स्मृति है? क्या हमें स्मृति है कि पिछला जीवन हमारा कहाँ था? आज जिन्हें इतना ममत्व दे रहे हों, जिन्हें इतना अपनत्व दे रहे हों, जिन्हें मोह कर रहे हों, इस जन्म में, उस जन्म में भी सबके साथ उत्तना ही रागात्मक सम्बन्ध जोड़ा होगा। वहाँ भी 'मैं, मैं' कर के इतने ही मुस्कराये होंगे। पर मृत्यु के क्षणों में सब बदल गया, सब बदल गया। स्थान बदल गये, पदार्थ बदल गये, सम्बन्ध बदल गये, सयोग बदल गये, शरीर बदल गया, सब बदल गया। सब बदल कर भी

आत्मा बड़ा-स-बड़ा आ कर नहीं बदली। आत्मा 'मी', आत्मा है आत्मा रहगा। शरीर बना है शरीर बदल रहा है और शरीर ही बिगडगा। एक दिन इसी शरीर को जा लोग शव-यात्रा में शामिल होंगे जब भी कभी आयुष्म कम पूरा हागा राख के रूप में भी दखेंगे। वह भी इसका एक अवस्था होगी। परमाणु नित्य है। स्वयं अनित्य है। यह पुद्गल पिण्ड उम राज मिट्टी के रूप में रहेगा, पर आज जिम रूप में हमने मैं का माना है क्या वह सदा रहगा? नहीं रहेगा। क्या मल था? नहीं था। बबल वतमान में है। उस हमने 'मैं' माना। उस ही 'मैं' मानकर हमने राग-द्वेष किया।

मम्ब-घ बदलत है सत्ता बदलती है मम्पति बदलती है पर उन सब के निमित्त में जो मोह भाव होता है, जो राग भाव है जा द्वेष भाव है वह राग और द्वेष फिर अगली जित्गी की व्यवस्था करत हैं, इसलिए त्रेवच-द्रजा महाराज ने कहा कि अनादिनाल स कर्म-मयागी आत्मा पर-पदायों में, पर-सयागो में जा राग द्वेष का भाव करता है कहा विष है। उम विष का परिणाम-स्वरूप इसका समार न टूट सका है और न टूट पायेगा। टूट कर भा नहीं टूटेगा। छूट कर भा नहा छूटेगा। छूट कर भी वहाँ छूटेगा? मृत्यु का क्षणा में छूटता है और जन्म का क्षणा में फिर जुड जाता है। प्राति अनादिना विष भरी है जो टूटत ही नय निर स जाट देती है। प्रभु परमात्मा सबज्ञ का चरणा में भक्ति कौन करेगा? आमममपण कौन करेगा? जा विषय विवारा का विष का फहन छाडन का प्रयत्न करेगा वह। विषय विवारा का जब तक वह समझेगा ही नहा तब तक छाडेगा कन? वह श्राध भाव मान भाव माया भाव लाभ भाव, इसा का तो छाडना है और निम छाडना है? हैं छोडन का प्रयत्न में जा आशिक रूप में भी मफल है वह माधन है, पाँच इन्द्रिया का विषया में जा अपन मन का अनुगामित रखना है वह सयमा है। किसी भा अश में हा क्योंकि वह राख रहा है अपन जाप का वह नचाय नाच नहा रहा है। हर समय आत्मा नाच रहा है। कभी जिह्वा नचा रहा है कभी घ्राणन्द्रिय नचा रही है।

हम कहते हैं इन्द्रियाँ नचा रहा है। जाना बहुत है-इन्द्रियाँ वहाँ नचा रहा है? इन्द्रियाँ नहीं नचा रहा है। इन्द्रियाँ ता पुद्गल पिण्ड है। मन, उचन नामा का योग ता पीतगलिक व्यवस्थाए है। प्रेरक तत्त्व ता आत्मा है। यदि आत्मा प्रेरक तत्त्व न हा ता कौन नचायेगा? माटर में पेट्रान भा है चलन का शक्ति भी है किन्तु जब तक ड्रायवर नहा हागा माटर चरायेगा कौन? शीघ्र न चेतन प्रेरणा कौन प्रहे ते क्षम? यदि चेतन का प्रेरणा न हा यदि मरा शक्तिने का मन न हा तो क्षयिगा कौन? यदि दखन का मन न हा ता दखेगा कान? देख कर भी नहीं देखते। कौन शत्रु सामन आ जाए आँखें दख रहा हैं पर मन में दखन

के भाव नहीं है तो आँखें क्या करेगी? कानों में सुनने की शक्ति है, पर हमारे सुनने के भाव ही न हों तो कान क्या करेगा। जिह्वा इन्द्रिय तो है, किन्तु हमारा रस लेने का भाव ही नहीं है, तो वह क्या करेगी? क्या करेगी वह? खाने के पदार्थ तो पडे हैं, पर हमारा खाने का भाव ही नहीं है तो पदार्थ हमारा क्या करेगे? उपवास का पचक्खान जिस रोज ले ले, घर में खाने के पदार्थ तो बहुत पडे होते हैं (पदार्थ कोई घर से बाहर थोडे ही चले जाते हैं) पर खाने का मन नहीं होता तो पदार्थ क्या करते हैं? कुछ भी नहीं करते; क्योंकि हमने उम रोज खाद्य पदार्थों से मन को तोड लिया है। पचक्खाण का अर्थ क्या है— 'प्रतिज्ञा'। 'प्रतिज्ञा' का अर्थ क्या है— 'सकल्प'। सकल्प का अर्थ क्या— 'विकल्प में न लाना'।

मनुष्य का मन दुर्बल है, निर्बल है। कभी पदार्थों के आकर्षण से मन बदलता है, तो कभी परिचय के आग्रह से मन बदलता है। बदलते हुए मन को संभालने के लिए ही तो सकल्प है।

बहुत से लोग प्रत्याख्यान शब्द से विडते हैं। बहुत से लोग प्रत्याख्यान इसलिए नहीं लेते कि अपने-आपको कमजोर क्यों मानें? यदि हमें मानना है तो हम स्वयं ही मान जाएँ। हमें त्याग करना है तो हम हाँ कर देंगे। हमें त्याग करना है तो हम कर ही देंगे। किसी के हाथ जोड कर क्यों सकल्प करें? मैंने कहा ऐसा आपका मन है तो बहुत अच्छी बात है। यदि आपको विश्वास है अपने मन पर इतना विश्वास है कि जिन्दगी में मेरा मन कभी नहीं बदल सकता। ऐसी ताकत यदि आपकी है तो कोई जहरत ही नहीं वह तो पचक्खाण ही है। पर ऐसी बात करने वालो का भी मन बदलते देखा है मैंने। नैतिकता की बात व्यक्ति वही तक करता है जहाँ तक उसे कहीं प्रलोभन न मिले। शादी में दहेज लेना अच्छा नहीं है किन्तु व्यक्ति वही तक सोचता है जब तक उसे दहेज देने वाला कोई न मिले। मुझे गलत ढग से नहीं कमना है व्यक्ति तब तक सोचता है जब तक उसे कोई गलत ढग से फायदे का चान्स न आ जाए। यदि ऐसे मन बदल जाना हो तो ससार में जितने लोग धर्मी कहलाने वाले हैं जो सैद्धान्तिक चर्चा करने वाले हैं— सूत्र-स्वाध्याय करने वाले हैं स्थानक और मन्दिर में आ कर आये दिन बैठने वाले हैं फिर तो वे सब धर्मात्मा हो जाते हैं। फिर तो दुनिया को इतना विश्वास हो जाता है कि यह व्यक्ति कभी गलत नहीं हो सकता। पर यह मनुष्य का मन है। कितना बदलता है कितनी बार बदलता है कैसे बदलता है, कब बदलता है, वही जानता है जो इसको बदलना चाहता है। बदलते हुए मन को भी वही जानता है जो अपने मन को बदलना चाहता है। जो मन को बदलना चाहता है वह बदलते हुए मन को जान कर भी नहीं जानता है। मन तो बदलता ही है

क्षपिल को यह मालूम था कि राजा, प्रातःकाल जो आशीर्वाद सबसे पहले  
 जाकर देता है, उसा को दा मासा सोना देते हैं। पत्नी ने कहा कि इतने परेशान  
 क्या हो इतने हैरान क्या हो? तुम्हारी गरीबी दूर करने के लिए दरिद्रता दूर  
 करने के लिए तुम जाओ, राजा को आशीर्वाद दो सब से पहले। उसके लिए मंगल  
 कामना करा। तुम्हें दो मासे सोना मिल जाएगा। उस सोन के लाम से कि मुझ  
 से पहले कोई और आशीर्वाद देने न पहुँच जाए उसकी निद्रा हराम हो गया।  
 नींद ही नहीं लगी। तब आसक्ति के क्षणा में व्यक्ति निद्रा नहीं ले सकता।  
 कई लोग कहते हैं कि ट्रेन तान बज की है। दस बज साय पर नींद आयी नहीं।  
 ऐसा लगता है जब तीन बज जाएँ जब तान बज जाएँ, जब तीन बज जाएँ।  
 पत्नी-पति व्यक्ति सोचता है कि आज मुझे टुककाल पर बात करनी है। दो-तीन  
 बजे टक्काल आन वाला है उसकी चारह बज से ही नींद टूट गयी है। चार-चार  
 टूट रहा है। जब आ जाए, जब आ जाए जब आ जाए। एक ता असक्ति है  
 जिससे परिचय है उससे बात करने की। एक आसक्ति है व्यापार के भाव जानने  
 को। एक आसक्ति है कि कही टक्काल आ जाए और चला जाए, वापस जब  
 मिले, जो पैस लगने हैं वे बेकार न लग जाएँ। जगता है, चार-चार जगता है।  
 चार-चार नींद टूटती है। इतनी जल्दी उसकी नींद टूटती है, तोड़ना नहीं पड़ती।  
 तीव्र विकल्पा में नींद नहीं आती। चाहे बस भी हो, अधिक नींद लेने वाला  
 अधिक काय नहीं करता। बल्कि ज्यादा काम करने वाला बहुत कम सोता है,  
 क्योंकि काय-क्षेत्र उसके लगन के ही रहे तीव्रता हान से उन्हें निद्रा गहरी लम्बे  
 समय तक की नहीं आता। वहाँ प्रलाभन था, लाभ था, कि मेरे से पहले कोई  
 और आशीर्वाद न दे दे। और मेरे से पहले कोई स्तुति-मठ राजा के समक्ष  
 न कर दे इसलिए अद्विनिद्रा में ही अद्विरात्रि में ही वह रवाना हो गया। वह  
 बहुत जल्दा चला गया। पहरेदार ने पकड़ लिया। कहा आ गया? तुम कौन हो?  
 इस रात्रि में क्या आय? उसे बठा लिया। सबेरे राजा से कहा कि ऐसा-ऐसा एक  
 व्यक्ति आया है। एक चार पक्का है। राजा ने कहा—उसे मेरे सामन लाओ। देखा  
 उसकी प्रवृत्ति से, उसकी धवर-हट से, उसके शब्दा की सरनता से राजा ने साचा  
 यह चोर है पर प्रवृत्ति से चोर नहीं है परिस्थिति से चार हो सकता है। राजा  
 ने पूछा—कहा क्या बात है? तुम इतनी जल्दा किसलिए आये। स्वमिन, मेरे मत  
 में और ता कोई भाव नहा थे, मेरी पत्नी ने कहा था कि राजा माहव को  
 जो पहली बार आशीर्वाद देता है उसे दा मासे माना मिलता है। इसा दो मासे  
 सोने को लेन की धल्पना से डोडा। मुझ रात्रि में भी रात्रि महसूस नहा हुई।  
 तीव्र लगन थी इसलिए साचा सूर्योदय हान ही जाना हागा। अभा पाँच बज के  
 समय में भी देखा ता ऐसा ही लगता है कि खूब रात है। और कोई नारण



नहीं है। वस इतना ही प्रयोजन था। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, तुम जितना चाहो उतना सोना मुझ से ले लो। मुझ से ले लो जितना चाहो उतना। मैं थोड़ी देर विचार करके आता हूँ। विचार करके आता हूँ, कह कर वह बैठ गया कहीं एकान्त में। और विचार कर रहा है। ओ हो राजा, राजा दे रहा है। राजा का आशीर्वाद। राजा खुश हो गया। दो मासे से तो दो दिन भी नहीं निकलेगे, तो क्या दस मासे माँगूँ? ओर, राजा दे रहा है तो फिर माँगने में कजूमि किस बात की बीस मासे, तीस मासे, पचास मासे, सौ मासे। विचार बदलते ही जा रहे हैं। क्षण-क्षण में मन बदल रहा है। घर से मात्र अर्द्धरात्रि में दो मासे सोना लेने निकला है। वठ-वैठ विचार करता जा रहा है। लहरें आती जा रही हैं। लहरो में लोभ-भाव टपकता जा रहा है। वह लोभ-भाव बढ़ते-बढ़ते इतना बढ़ गया कि उसने सोचा कि राजा मान गया तो कमी किस बात की। मैं माँगूँ, माँगूँ। इतना माँगूँ कि कम-से-कम मेरी जिन्दगी तो सुख-शान्ति से निकल जाए। सोच रहा है कि मैं तो एक करोड़ मासे माँगूँ। बदलते-बदलते मन कितना बदला। फिर भी सोच रहा है कि एक जिन्दगी निकलेगी, दो जिन्दगियाँ निकलेगी तो फिर मेरे बेटे-पोतो का क्या होगा? जब माँग रहा हूँ तो इससे ज्यादा ही माँगूँ। जहाँ लाहो तहाँ लोहो, लाहो लोहोप गड्डई। लाभ के क्षणों में लोभ बढ़ता है। जैसे-जैसे लाभ बढ़ेगा वैसे-वैसे लोभ बढ़ेगा। व्यक्ति यदि 'है' में सन्तोष कर ले तो अशान्ति का प्रश्न ही कहाँ है? हर परिस्थिति में यदि 'है' में सन्तोष कर ले तो अशान्ति का प्रश्न ही नहीं है, किन्तु आकर्षण सदा 'चाहिये' में है, 'है' में नहीं। भाग्य और पुरुषार्थ के योग से यदि 'चाहिये' 'है' में भी आ गया तो भी 'चाहिये' ज्यो-का-त्यो फिर आगे जा कर खिसक गया। जीवन में कितनी बार 'चाहिये' 'है' में बदला होगा।

आज से बीस वर्ष पहले सोचा होगा कि मुझे पाँच सौ रुपये महीना चाहिये। फिर सोचा होगा मुझे हजार रुपये महीना चाहिये। फिर सोचा होगा कि मुझे किराये के चार अच्छे कमरे चाहिये। फिर सोचा होगा कि मुझे तीन खण्ड का मकान चाहिये। फिर सोचा होगा कि मुझे वगला चाहिये। अर्जी 'है' कितनी बार 'चाहिये' बन गया। जिन्दगी में कितनी बार 'चाहिये' 'है' बन गया। मुझे अमेरिकन साडी चाहिये। वह भी 'है' में आ गयी। अब दूसरी चाहिये। दस आ गयी तो बीस चाहिये। मुझे सोने का सेट चाहिये। वह भी 'है' में आ गया। 'है', पर 'है' में सन्तोष नहीं। अब मीने का चाहिये। फिर मीने का बन गया। तो फिर 'चाहिये' शब्द 'है' में चला गया। यह मनुष्य का मन है, कितनी जल्दी बदलता है, कितनी बार बदलता है। इस मन पर जो नियन्त्रण करता है, वहीं सयमी है। बदलते हुए मन पर जो ज्ञान से अकुश, वैराग्य से अकुश, नियम से

अबुश लगाता है वही तो सयमी है। धाडा देर बाद उमने सोचा अपन बदलते हुए मन का देखा। उसन देखा। ओ हा, मेरा माह। एवदम चन्ता चडता वापिस उतर गया। उतर कर साचन लगा केवल दा मासे सोन के प्रयोजन से मैं इतनी अद्वरानि म ही दौड कर आधा कार राजा न जैसे ही मुये जाशीवान दिया वसे ही मेरा मन इतना बदलता गया इतना बदलता गया और कराड मासा माग्ने के क्षणा म भी तृष्णा शान्त नही हुई? आगे मन कह रहा है कि आधा राज्य ही क्या न ले लू? राजा ही दे रहा है तो आधा राज्य क्या न ले लू? आधा राज्य लेन मे भी राजा ता बहुत उदार है किन्तु आगे कहा वेटा गद्दीदार हाशियार आ जाएगा। ता मधप हागा इमनिए पूरा ही क्या न मागू?

यह स्थिति है हमारे मन का। कपिल को कपिल के मन का मुनन के लिए नहीं मुनना है अपन मन की चाह लेन के लिए मुनना है। अपन मन को नापना है। अपनी इच्छाआ को देपना है। व्रत और पक्वखाण नियम लिय बिना मन कसे अनुशासित होगा? कहा त्याग के भाव आयेंगे? कहा परिग्रह-परिमाण हागा? मयम म आने क भाव ही नहा हैं क्योकि मन की उछल-कूद है। मन की उछल-कूद क्या है? क्योकि उसने स्वय पर अनुशासन नहीं किया। स्वय पर अनुशासन क्या नहा किया कि शरार भिन्न है और आत्मा भिन्न है ऐसा उमन नहा जाना। भौतिक पदार्थों के प्रति चा उसका आकषण है जा उमका ममत्व है वह ममत्व किमा क्षण उसस छूटता नहा है। अनन्तवाल की याना इम जीव ने इसी प्रकार जमख्य वार का है। अनन्त पदार्थों का अनन्त सम्प्रघा का सभी तरह छाडा ह। श्रीमद राजचद्र न एव वाक्य ता अजब-नजब का दिया है—जहा! इम ससार को नमस्कार है। जिम आत्मा का हजारा वार मा के रूप म स्वाकार किया उसी आत्मा का आज मैं पला क रूप म स्वकार कर रहा हूँ। वराम्य का इमसे क्या जीव क्या कारण हागा? क्योकि सगार म हम जनत वान से हैं। अनन्त आत्माएँ भी इसी ममान म हैं। घूम कर कहा घमग? जा कर कहा जागगे? मिल कर किन स मिलेंगे। एक इन्दार म रहन वाला। इंदार की किमा भा गली म घूम आखिर मिन कर उन्ही म मिनगा जा पार-पार मिलत ह। चार गति म घूम कर भी उन्हा म मिलेगा। श्रीमद्वराजचद्र न कहा ह यदि वराम्य न आता हो यदि अपना मन विषय विवारा स नहा हूटता हा ता त्वचा बिनाना वनिताना स्वल्प त्रिचारजे। क्या वाक्य निया ह? माक्षाविया क लिए। यह ता अध्यात्म ममा ह भाद अध्यात्म-ममा म अध्यात्म की दृष्टि से बात हागा। श्रीमद्वराजचद्र न कहा कि यदि अपन मन म अबुश लान क भाव नहा आत हा, अपन मन का बदलन के भाव नहा आत हा म्पश इन्द्रिय रस इन्द्रिय प्राण चार चक्षु इन्द्रिय का स्वाद वम न हाता हा और ब्रह्मचय-जावन म अपन मन को म्द करन क भाव

न आते ही तो वनिता नो विचार करजे। त्वचा वगरनी वनिता नो स्वरूप विचारज चमडी हटने के बाद फिर कितना मोह होगा? फिर वह क्लेवर कैसा लगेगा? फिर वह मास का लोहा कैसा दीखेगा, कब? जब चमडी की चादर हट जाएगी। यदि अपना मन ऐसे अकुण मे ना आये तो श्रीमद्गजचन्द्र ने यह कहा कि तुम शरीर के वास्तविक स्वरूप का विचार करना और वास्तविक स्वरूप विचार इस रूप मे करना कि चमडी हट जाए और मात्र अन्दर का क्लेवर रह जाए।

जगल मे देखा होगा—किसी गाय, भैंस, बैल को देखा होगा। हम पदयात्री होने के नाते अनेक वार देखते हे कि कोई जानवर गाय, बैल मर जाता हे और जब खींच कर उसको जगल मे फेंक दिया जाता हे, आये दिन चील, कीए आदि उन पर चोच लगा-लगा कर चमडी को जब अलग कर देते हे, मात्र मास का पिण्ड वह रह जाता हे। उसे देख कर कै आती हे, दुर्गन्ध आती हे, घृणा के भाव आते हे। अपने मन को बदलने के लिए, विषयो से मन को हटाने के लिए श्रीमद्गजचन्द्र ने कहा—शरीर के स्वरूप का विचार करना, पर शरीर के स्वरूप का विचार करेगा कौन? जो आत्मस्वरूप को समझेगा। मैं आत्मा हूँ। मैं सदा थ। सदा रहूँगा। यह मेरे सारे सम्बन्ध, भोग के सम्बन्ध हे। रागात्मक सम्बन्ध हे। इनमे मोह का विष हे। उस मोह के विष को यदि व्यक्ति छोड दे तो बन्धन का कोई कारण नही हे। आप, मेरे बन्धन का कारण नही। मैं, आपके बन्धन का कारण नही। यदि राग और द्वेष के परिणाम मे दो मे एक भी न हो तो। किसी और को नही समझाना हे। अपने-आप को समझाना हे। इसी जीव को समझाना हे। मैं आपको समझाने के लिए नही कह रही हूँ, मुझ भी समझना हे। जिसको समझना हे, उसी की चर्चा, उसी का चिन्तन, उसी की लगन हे कि बडे व्यापारी से मिलना हे, मिलो से सम्पर्क करना हे, टंककॉल करना हे, माल खरीदना हे, माल बेचना हे, माल बनवाना हे। जिसे जो कमाना हे, वह उसी की चर्चा करेगा। व्यापारी से बात करेगा। मैंने किसी से पूछा कि आप उन्हे जानते हे क्या जो सोने-चाँदी के व्यापारी हे? उसने कहा—महाराज हूँ नही। मेरा सम्बन्ध तो कपडे के व्यापारियो से हे, क्योकि मैं कपडे का व्यापारी हूँ। आप दाल मिल वाले हे तो दाल की मिलो के जो व्यापारी हे, उनसे, सम्बन्ध होगा। कौन खरीदेगा, कौन बेचेगा? कहाँ से माल आयेगा, कहाँ माल जाएगा। उनसे सम्बन्ध हे। इन्दोर मे व्यापारी तो हजारो हे, उनसे आपका प्रयोजन नही हे, उनसे कोई प्रयोजन नही हे।

वैसे ही हमे जब आत्मशुद्धि करनी हे, आत्मतत्त्व को समझना हे तो आत्मा की ही चर्चा, आत्मा की ही सारी बात, आत्मा से सबन्धित ही सारा प्रयोजन। 'सयम'—सम्यक् मन की स्वीकृति सयम हे। हम त्याग और वैराग्य से अपनी आत्मा को जोडे। कैसे जोडेगे? सासारिक मोह को तोड कर। सासारिक मोह जब तक

टूटेगा नहा, तब तक वह जुड़ नहा भवता। हो सकता है कोई कह कि ठाडने से होगा क्या? वह टूटेगा तभी सहा माना जाएगा। एक भूमिका वह भी है। हर प्रारम्भिक स्थिति में आज तक ऐसा हुआ नहीं। मन जितन साधा है उमी का मन साधा है। मन बदलने का जिसने प्रयत्न किया है, मन उमी का बनता है। मूल में जान वाला बच्चा गया उमी दिन मही अक्षर निखने बहुत मुश्किल है। एक वष तक तो उसने माल मन्दिर में केवल अक्षरा का पहिचानन की वाशिश की है। उन्हें बनाने की वाशिश की है। चार छह महीने तक तो उमको अ आ, ई भी लिखना नहीं आता है। पर क्या उसका परिश्रम बेकार है? नहीं। मन साधने के लिए ही मन को बनाना है। मन का बदलने के लिए ही मयम में आना है। मयम में आने के लिए ही सकल्प करना है। नहा तो मन बनता ही रहेगा। कितन ऐसे लोग हैं जिनमें मैं मिलता हूँ, पचास-साठ वष का उम्र में भी वे ससारी जावन जा रहे हैं। गहस्थ जीवन में रहे कर वानप्रस्थ आश्रम नहा आ रहा। साधु बनने का स्थिति है नहा। साधु बनने के भाव हैं नहीं। कोई बात नहीं। पर गहस्थ में रहे कर तो वानप्रस्थ आश्रम आ जाना चाहिये। गहस्थ में रहे कर तो सयाग-मन्वन्त्रा का माह कम हो जाना चाहिये। गहस्थ जीवन में रहते हुए व्यक्ति की जो माह दृष्टि है वह तो कम होनी चाहिये। क्या नहीं हुई? मन का बदलने का प्रयत्न ही नहीं किया।

जिसने जितनी भर मन का बदलने का प्रयत्न नहा किया वह अन्त समय में मन का बदलने में बहुत मुश्किल है। बहुत मुश्किल है। वह बात कर सकता है बदलने नहीं सकता। बदलेगा कहा जा सकेगा। सफलता यही जा अपने मन का अकुश में लेगा। अकुश में मन के क्षण में प्रारम्भ में मन हो सकता है, राय, चिन्ताय। मन नियंत्रण पसन्द नहीं करेगा क्योंकि मन का आदत पड़ गया है। यह बच्चा कर चुपचाप बठना पसन्द करेगा। जा पूरे दिन खेतता रहा है। जा पूरे दिन खेत का गान में छात्र लिया मरर स शाम तक बच्चा के साथ खेत रहा है और उस एकदम बन्द करने की बात करे तो उस अच्छी बस लगेगा? पहले उसका खेतना कम करना पड़ेगा। बच्चा का माथ कम कराना पड़ेगा। वानप्रस्थ घर बनाना पड़ेगा। तब उसकी आदत छूटेगा। ऐसी एकदम नहा छूटेगा। पहले बन्द नहा हागा। पहले मरर हागा। मरर करने का प्रयत्न ही सफल है। मरर करने का प्रयत्न ही पचकषाण है। मरर करने के लिए ही अपने मन का बार-बार बनाने की वाशिश करता है। सयम है—मन्वन्त्र मन की स्वीकृति प्राय के क्षण में प्राय के भावा का जा बनने का वाशिश नहीं करेगा जितनी भर उसका प्राय कम नहीं हागा। यदि उम्र हो सकता है कि प्राय की कामत नहीं हागी। उमर प्राय की कामत नहीं हागा दुःख में जवाना में तो

क्रोध की कीमत हो सकती है। कीमत का अर्थ यहाँ क्रोध का व्यवहार-पक्ष है। दस हजार, पाँच हजार, दो हजार रुपये महीना कमा कर परिवार को पालना है तो दुधार गाय की लात खाने वाली बात होती है। क्रोध, क्रोध करायेगा। क्रोध का बन्धन भी होगा। दुर्गति, वह सब बात तो अलग है। पर व्यवहार में भी माठ-मत्तर वर्ष की उम्र में यदि आप क्रोध करे तो कुत्ते जितनी कीमत होगी, इसमें ज्यादा, नहीं होगी। भौ-भौ करते रहेंगे। कहा जाएगा—आदत पड़ गयी है इनको तो। क्रोध की कीमत नहीं है। क्रोध कोई पसन्द नहीं करता है। क्रोध से आप अप्रिय बन रहे हैं। क्रोध से आप परिवार से टूट रहे हैं। प्रीति का नाश हो रहा है। सन्ध शिथिल हो रहे हैं। सेवा की भावना परिवार में नहीं रहती है। परिजन कहने लगते हैं कि उनसे तो जब भी पूछने जाओ तब जैसे कोई कुत्ता काटे, ऐसे काटते हैं, ऐसा बोलते हैं। मैंने एक घर में सुना। आहार के लिए गयी थी। किमी बहिन ने कहा—दादा साहब से पूछ कर आओ। मैं पूछने नहीं जाऊँगी। वे तो जब जाओ तब लड कर बोलते हैं।

कहने का तात्पर्य यह कि आप स्वयं महसूस करते हैं कि मेरे क्रोध की कोई कीमत नहीं है। फिर भी वृद्धावस्था में क्रोध कम नहीं होता, क्रोध कम करने की कोशिश नहीं की जितनी मैं। क्रोध व्यवहार-पक्ष में व्यक्ति को असफल बनाता है। परिवार में उसकी प्रीति भी टूटती है। मित्रताएँ भी छूटती हैं। सब कुछ होता है, किन्तु क्रोध वहीं छोड़ पाता है, जिम्मे छोड़ने का व्रत लिया है। वस्तुतः अपने मन को वहीं बदल सकता है, जिम्मे उसे बदलने का अभ्यास किया है। □□

### तप का स्वरूप समझें

तप आत्म शुद्धि में प्रमुख है। तप के भाव से होने वाला त्याग है। तप है। टाक्टर के रहने में स्वस्थ लाभ के लिए घं शक्कर और नमक छानने वाले घम-घम, वह मने हैं मेरे घ, का त्याग है, मरे शक्कर का त्याग है मरे नमक का त्याग है। मुझे वाले त्याग कराने वल उसक त्याग का अनुमादन करते हैं दिन्तु यह अनुमादन का शक्त मुन तर भ, वह जपन रहस्य को नहीं खानता अपन त्याग का कारण नहीं बताते। उम स्पष्ट कहना चाहिये कि मेरे त्याग है पर त्याग भाव से नहीं वह तो मात्र शरार लाभ के लिए है अत इम त्याग के भाव नहीं हैं ता अनमोक्षा का गवाल ही नहीं। यदि इम प्रकार वह अपने त्याग के प्रयोजन को स्पष्ट नहीं करता तो छल है उमक भावों में मिय्या प्रयासा के भाव हैं जिन्हें पान, पापभाव बताने हैं दिन्तु व्यक्ति माचना है कि मैं तप-माधना अपने बच के जावन में कमी कर चुगा, आगिर कब? जत्र यह इभागत बला पड जाएगी तब? हाड हिमने नगे तब? गाठ कप का हां कर लखडान लगगा तब? पन्द्रह वर्ष तप यह जीव नालान रहता है अत नर नहीं कर पाता और जब समझ जाती है तब भविष्य मार्गों बुदापे पर छोड देना है अत तन बदन मस पून हम अपने मन का दिग्ग पान और प्रयास से प्रवना चाहिये तम। हमारा जावन मफन हागा तम गलग में जाना मायत कहनायगा।

-इन्दौर ५ नुमासि १९५२

### ससार, परिवार, दिनचर्या/सभी प्रयोगशालाएँ

यदि जिम का आता-त्याग मरत है ता उमके लिए यत्र समार कुटम्ब मय का लिपया महत्वपूर्ण प्रयागा-मार्ग हैं। उन प्रयागा-सभा में जात्म विरामण का हागा स्वयं का प-या हाग। क्याणि नहीं मावन न पटी विपमत। बविष्य और विचित्रता अवय है। तम, स्वाम्य का विरमत है मभा का याव का परेमा, है मभा कुटम्ब-नवाल का मगना है मभा घन का मपसा है ता मभी

कोई सामाजिक मुश्किल है। परिस्थितियों का कोई छोर मिले यह मुश्किल है; परिस्थिति बदलने के लिए भाग्य और पुरुषार्थ चाहिये। पुरुषार्थ में भी यह आवश्यक नहीं है कि परिस्थिति बदल ही जाए। दूसरो के, मन और रख को हम अपने अनुसार ढाल लें यह भी मुश्किल है। हम प्रायः दूसरो को परिस्थितियों को बदलने का प्रयत्न करते हैं और जब इस तरह का परिवर्तन संभव नहीं होता है तब अशान्त हो जाते हैं। यहाँ मैं यह नहीं कह रही हूँ कि हम पुरुषार्थ न करें, परिस्थिति को दास न बनाये, साधनों को न अपनाये बल्कि कह रही हूँ कि जो भी करे शान्त भाव से करे, वस्तु-स्वरूप का ध्यान रख कर करे।”

—इन्दौर ८ जुलाई १९८२

## सत्य को जीवन में उतारें

“हमें विषम भाव में रहते हुए अनन्त काल हो गया है। जब तक हम इस विषम भाव को समभाव में बदलने का प्रयत्न नहीं करेंगे, तब तक तीन काल/तीन लोक में भी उसे प्राप्त नहीं कर सकेंगे। वास्तव में समभाव के बिना मुक्ति नहीं है। मुक्ति के लिए हमें सविवेक प्रयास करना होगा। हम महापुरुषों की जय-जयकार बहुत करते हैं, उन्हें धन्य-धन्य भी बहुत करते/कहते हैं, उन्हें नमस्कार कर प्रसन्न होते हैं, किन्तु केवल प्रशस्ति से न तो हम धन्य ही होंगे और न ही महान्। सत्य को जीवन में उतार कर ही हम धन्य हो सकते हैं।”

—इन्दौर ८ जुलाई १९८२

## शरीर में आत्मबुद्धि छोड़ें

“नशा तो नशा है, फिर वह किसी का भी हो। जीव को शरीर में आत्म-बुद्धि का नशा चढ़ा हुआ है। उसका यह मद अनदिवाल में नहीं उतरा है, यदि उतर जाता तो उसके विचार ही बदल जाते, भाव ही बदल जाते। तब सत्कार में रह कर भी उसे मत्तार का आवर्षण नहीं रहता। वह मन्थान को मन्थान, और मालिक को मालिक मानता। . . . हम अपना मुखड़ा दर्पण में देख कर मुस्कराते हैं, लेकिन हमें यह प्रतीति नहीं होती कि हम अरुपी, शाश्वत, अजन्मा, सच्चिदानन्दधन आत्मद्रव्य हैं, हममें रूप, रस, गंध, वर्ण आदि कहाँ हैं? यह तो मात्र नामकर्म प्रकृति की व्यवस्था है।”

—इन्दौर १० जुलाई १९८२

## पिंजरा आखिर पिंजरा है

“हमने पुण्य को धर्म माना और उसी में अटक गये, उसी को सर्वस्व मान बैठे, उसी को सवर-निर्जरा कह बैठे, पर वह सवर नहीं है, पुण्य है, हाँ, पाप का संवर वहाँ है अर्थात् पाप की अपेक्षा सवर है; परन्तु शुद्धत्व की अपेक्षा तो वह भी

आसन्न हा है। वेडी ता वेडा है फिर वह सोने की ही या लोहे की। तोन के लिए पिजरा पिजरा है फिर चाहे वह रत्नजडित हा क्या न हो?"

-इन्दौर १२ जुलाई १९२२

## शरीर एक विश्वविद्यालय

हमें जा काया मिली है, वह स्वयं म एक बहुत बड़ा यंत्र है हम चाहें ता इसे एक यूनिवर्सिटी भी कह सकत हैं। कितने विभाग होत हैं विश्वविद्यालय म - हिन्दा, अंग्रेजी, दशन, रसायन भौतिकी, प्राणिकी आदि। सब जुदा-जुदा हैं। ठाक ऐसे ही विभाग हैं देह म-दशन, स्वाद स्पर्शन श्रवण, गंध। पाच इन्द्रियां पाच विषय। इन पांच इन्द्रियां का जा जाता है वही है गुरु। इन्द्रियां तो माध्यम हैं, झराखा हैं किन्तु इनम से बाँकने वाला कौन है? चरोखा स्वयं नहीं देखता, खिडकियां खुल नहीं देखती-उनम से दखा जाता है काई उनम स देखता है। बाजार किस दिखायी देता है? उसे जो खिडका म से देखता है। खिडकी माध्यम है। बल्य म स प्रकाश आता है किन्तु बल्य प्रकाश नहीं है वह माध्यम है इसी प्रकार वटन (स्विच) है जब तक वह त्रिजलाघर स जुडा है, तब तक जावित है, अन्यथा हम उस एक सी जाठ बार भा दवायेंग ता भा कुछ हागा नहा क्या नहीं हागा? कारण साफ है, विजर्लाघर स उमका सम्बन्ध कट गया है। इसी तरह इन्द्रियां सक्रिय हैं कब तक? जब तक इसका आत्मा स सम्बन्ध है। आत्मा निकल जाने के बाद देह मात्र देह है श्मशान का धराहर, उसके बाद तो यह मिट्टी म मिलने की ही है।'

-इन्दौर १८ जुलाई १९२२

## सम्यक्त्व से साक्षात्कार

'अस्थिर, चपल उनलत पानी म कभी चहरा साफ नहा दिनाया देता। वहा लहरें है कम्पन हैं जिनम चेहरा बन कर बिखर जाता है, वह दिखाया नहा देता। वसा तरह कपाय की लहरा म, विषय-वासना की लहरा म मलिनता का लहरा म उत्पन्नित व्यक्ति सम्यक्त्व स दूर रहता है। सम्यक्त्व-मन्मुख जीव चित्त को बाह्य पदार्थों म दूर रखता है। यह चित्त समारा प्राणियां म भी दखी जाती है। उनम इक्तरफा पुरपाय जागृत हा जाता है। जम किमा छात्र को पराशा देनी है बहिन की गान्गी भी उन्हा दिना है घर म मनारजन/ज्ञान-द-उल्लाम का वातावरण है सभी इम समाराह म सम्मिन्न है वह किन्तु शामिल हा कर भा तटस्थ है। वह इन्तहान का तयारा के लिए किसा मित्र के पाम चला जाता है और दत्तचित्त पबना है। यद्यपि उसके घर का प्रमग उमके मन का खीच सकता है पर उसका लक्ष्य पराशा म अच्छे अक प्राप्त करन का है। यदि वह परीशा प्रथम



श्रेणी में उत्तीर्ण करना चाहता है, और वहिन की शादी में भी पूरी तरह सम्मिलित होना चाहता है तो ये दोनों काम एक साथ उनके लिए संभव नहीं हैं। ऐसे ही यदि कोई चाहे कि एक साथ, विषय-वासना में भी लिप्त रहे और आत्मज्ञान भी प्राप्त कर ले तो ऐसा न कभी हुआ है, और न होगा। एक म्यान में दो तलवारें कैसे समा पायेंगी ?”

—इन्दौर २३ जुलाई १९८२

## स्वाधीनता : हमारा लक्ष्य

“हमारा लक्ष्य क्या है ? आत्म स्वाधीनता। जिस दिन हमारी आत्मा कर्म-संयोग में मुक्त हो जाएगी, हमारा स्वतन्त्रता/स्वाधीनता-दिवस तभी होगा। जब जो जीव मोक्ष गया तब वह दिन उसके लिए स्वाधीनता-दिन हुआ। मोक्ष-दिवस यानी स्वतन्त्रता-दिवस। भगवान् महावीर का स्वाधीनता-दिन है— कार्तिक वदी अमावस्या। उस दिन वे कर्मसत्ता से मुक्त हुए, जब यदि अनन्तकाल तक पडद्रव्य-व्यवस्था होने पर भी वे समस्त प्रभावों में मुक्त अपने शुद्ध स्वरूप में रमण करते रहेंगे। ऐसा शुभ दिन हमारे लिए कब आयेगा ?”

—इन्दौर : १५ अगस्त १९८२

## जीवन-निर्माण /जीवन-निर्वाह

“सोचने पर लगता है हमारे मन-मस्तिष्क अन्धानुकरण में लग गये हैं। प्रश्न यह है कि जिसे जीवन बनाना है, उसे जीवन-निर्वाह के समय में कटीती करनी होगी। जो जीवन-निर्वाह के समय में कटीती करेगा, उसके साधन भी घटेंगे। उसे स्वाद का मोह कम करना होगा, सामान्य खाद्य सामग्री से सन्तुष्ट होना होगा, गिन्तु मूँसे लगता है मनुष्य के पास समय की कोई कमी नहीं है, उसका कोई मूल्य नहीं है। वह मनुष्य-जीवन का मूल्य, उसकी महत्ता धायद समझ नहीं पा रहा है, इसीलिए वह चय-नाशते, गपशप जैसे महत्त्वहीन कामों में अपना वक्त गँवाता है, किन्तु इसके विपरीत कोई ज्ञानी, स्वाध्यायी व्यक्ति, कोई आत्मचिन्तक, साधनावान् व्यक्ति मनुष्य-जन्म का मूल्य समझता है और अपना जीवन सार्थक करने का प्रयत्न करता है। वह अपने समय का समुचित/सतुलित विभाजन करता है और जीवन-निर्वाह के क्षणों में से आत्मसाधना के लिए समय निकालता है। जो जीवन का अर्थ जानते हैं, उसका वर्णमाला जानते हैं, वे ही उसे सार्थक कर सकते हैं।”

—इन्दौर १८ अक्टूबर १९८१

## आवश्यकता है पुरुषार्थ की

“जैन दर्शन, आध्यात्मिक साहित्य उस सुख को सुख नहीं मानते, जो परावलम्बीय धन-क्षण-भगुर है। वह कालजयी सुख को ही सुख कहते हैं। सहजानन्द तो स्वयं में हैं,

वह वही बहर म आने वाला जानन्द नहीं है। जा आनन्द मिट्टा म है वह, हम म है आवश्यकता है प्रयत्न क, पुरुषार्थ क, उम आनन्द के अनुसंधान क।

## शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न

‘जहाँ जय हमार स्वाय का आच आता है हमारे मित्रता क भाव काफूर हा जात है। हमार स्वय के वाधित हात ह हमारी दोस्त दुश्मनों म बल्ल जता है। हमारा अत्मियता तभी तब विस्त, ह जय त० हमारा स्वाय मप्रता है। समार क सार नात रिष्ठ स्वय क, भित्त, पर टिफ हुए हैं। कारण है हमारा देहात्म-बुद्धि जो शरीर और उसमे म्दद व्यक्तिया य। पन्थों म हम अटकाय रखत है। आज आत्मा को पहिचान क निग मनुष्य के पाम समय ह नगी है किन्तु जिन सन्तो ने शरीर और जात्मा के भेद का भल भाँति समझ लिया है शरीर म उनक, ममत्व-बुद्धि का अन्त हा गया है। ममत्व-बुद्धि का अन्त मनुष्य म आध्यात्म के मवेर का शुभारम्भ है। प्रत्येक जीव म अपन-सा जात्मा रखत म ‘मेरे’ का घेरा टूटना है और समार म ममत्व का नात जुडता ह। ममत्व आर ममत्व म पक है ममत्व मोक्ष की ओर ल जाता है आर ममत्व बध क आर।

## भक्तान सब बनाते हैं, किन्तु धमशाला ?

जान कहत है ज्ञान म व्यक्ति का कर्म, सत्ताप नहीं जाना चाहिये। देते रहना चाहिये किन्तु यह मैंन दिया है ऐसा भाव कल्पि नहीं आना चाहिये। हमार पूजना न कितना दिया कितन खच किया? जानू क मन्त्रि देखें जेमलमेर के मन्त्रि देखें जितना तथ हैं उन्हें देखें हमार पुख्या न वहाँ इतना खच किया है जितना, उन्होंने अपन शरीर पर खच नहा दिया। हम जिन्दगी म शर्त हा क्या है? मगन मत्र यनात ह किन्तु धमशाला, बनान का न कितन ह? यदि दग हवाए रूपय खच क हमार पाम ह ता एक हजार दूमरा क, सुख-सुविधा पर खच करें ऐम भाव नहीं जात ह? आयें ऐसा काई रचनात्मक श्रान्ति हम करें तमा धन न। नथका आर महता है।

## आत्मोपता का विस्तार

पहना विचार क्या है क्या हाना चाहिये? मित्ती मे सव्यमूएसु। नव प्राणिया क प्रति मित्रता का भावना। इमक वाक विचार आयगा—मन बचन गया के जाग म जिमा का का गष्ट न पञ्च। हम गावें आज हमारी स्थिति क्या है? सार जगत् क जावा क प्रति यदि हमारी आत्मयता विस्तृत हा जाण ना फिर कहता ही क्या है? जमी ता बह एक गाव एक परिवार एक भाहल्लन जयवा एक माँ क पत्न म तमे भाइयों तक भा ठाए न विस्तृत नहीं है। यदि जाज

किसी के प्रति हमारी आत्मीयता है तो वह स्वार्थ या मोह के कारण है। अब वह समय है जब हमे अपनी कमीटियों को बदल डालना चाहिये और आत्मीयता को पूरी उदारता के साथ विस्तृत कर लेना चाहिये।”

## अवगुण में गुण

“प्रश्न उठ सकता है कि यदि कोई अवगुणी है तो उसमें गुण देखना कैसे संभव है? अवगुणी में तो अवगुण ही होंगे। यह हमारे कहने का व्यवस्था है, क्योंकि हम वस्तु में जिनका अधिगता होते हैं, वही उसे कह देते हैं। जब किसी में गुण अधिगता होते हैं, तब उसे गुणी, और जब किसी में अवगुण अधिगता होते हैं, तब उसे अवगुणी कह देते हैं, लेकिन वास्तविकता अलग है, क्योंकि गुणी में भी अवगुण होते हैं और अवगुणी में भी गुण। धन्तूरों होते हैं ‘गल’ है, पर मुगन्ध का गुण उसमें होता है, कायल होता काला है, किन्तु उसका स्वर-माधुर्य तो अपना अलग ही महत्त्व रखता है। गरज यह है कि हमें गुणी में गुण तो देखना ही है अवगुणी में भी गुण देखना है। गुण में ही मुदित हाना है, उदित होना है।”

## अन्तर्यात्रा का शुभारंभ

“यह निश्चित है कि अपना स्वरूप जाने बिना अन्तर्यात्रा का प्रारम्भ संभव नहीं है। इस अन्तर्यात्रा का सूत्रपात वस्तुतः तब होगा जब हम रुचिपूर्वक निज-स्वरूप का वत को मुनेंगे-समझेगे। अत्माभिरुचि के जागृत होने पर अन्तर्यात्रा को उतना ही अनन्द होता है जितना धन पा कर धनिक को। अन्तर्यात्रा का धन आत्मकल्याण की चर्चा ही है। वह एकान्त में बैठ कर वारवार आत्मकल्याणकारी तथ्यों का मनन करता है, तथा विपमता और प्रतिकूलता के क्षणों में भी स्वयं को सन्तुलित करने के प्रयत्न करता है।”

## दीपक तो प्रतिक्षण बुझ रहा है

“वय तो क्षण-प्रति-क्षण नष्ट हो रही है। जिस तरह घट की एक-एक बूंद गिर कर उसे जल में खालों कर देती है, वैसे ही उम्र का घट रीत जाता है। तैल जलते-जलते पूरा हो जाता है तो दीपक बुझ जाता है, ठीक इसी लय में हमारा जीवन जा रहा है, जा रहा है वह, किन्तु जानी इस बहती धारा को भी पकड़ रहे हैं। यहाँ ‘पकड़ने’ का अर्थ मुट्ठी में या अल्मारी में बन्द कर लेना नहीं है वरन् उसका ‘सदुपयोग’ करना, उसे सार्थक करना। सन्त कहते हैं : अभी भी संवचेत हो जा। जो गया, सो गया, आगे संभाल।”

## पुद्गल में पागल

“विजातीय तत्त्व के सयाग से जो आत्मभ्रान्ति है वही कर्मबन्ध का मूल कारण है। यह विजातीय तत्त्व क्या है? पुद्गल अजाव। अनन्त काल से यह जाव आत्मतत्त्व के बुद्धि न हाने से पुद्गल के सयाग में राग-द्वेष रूप परिणमन करता है। जड जग को ले कर यह जब ध्राघ, भान भाया, लोभ करता है। जड का पा कर हँसता है, जड का खा कर राता है जड पर मोह दगता है जड से द्वेष करता है। जिस भापा पर मोह करता है जिस पर द्वेष। भापा भी अन्तत पुद्गल वगणा है। उस पर रीक्षना भी पुद्गल पर राग करना है। किसी के मुन्दर मुडोल, सुघड शरार का देखकर मुस्कराना उमक। प्रशंसा करना उम पर बहुमान के भाव आना पुद्गल के प्रति आक्षेपण का परिचय ही है। यह सब क्या? इसलिए कि इम जीव ने अपने मय्यक स्वरूप को अब तक समझा नहीं है और एक बहुत बड़ी गलतफहमी में पडा रहा है।’

□ □ □ □

“जब बरसात के दिनों में नदी पूर आती है, तब वह किनारे का सारा कूड़ा-करकट बहा कर ले जाती है। हमारे अन्दर भी स्नेह की धारा सूख गयी है, जिससे हम में निन्दा का, आलोचना का, द्वेष का, घृणा का, एक-दूसरे को पराया समझने का कचरा डकट्टा हो गया है। आप प्रेम की ऐसी गंगा बहादे कि यह सब कचरा धुल जाए।”

—विचक्षण श्री

